भाई के पत्र

लेखक
श्रीरामनाथ 'सुमन'

"मेरा वस चले तो आजकल पाठशालाओं में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनमें से अधिकांश को नष्ट कर दूँ और ऐसी पुस्तकें लिखवाऊँ जिनका गृह-जीवन से निकट सम्बन्ध हो।"

—गांधीजी

साधना-सदन
इलाहाबाद

तीन रुपये

मार्च १९३१ : १०००
जनवरी, १९३२ : १०००
जुलाई, १९३३ : २०००
सितंबर, १९३८ : २०००
सितंबर, १९४१ : ११००
अक्टूबर, १९४३ : २०००
दिसम्बर, १९४४ : १०००
मार्च, १९४६ : २०००
अप्रैल, १९४८ : २०००

प्रकाशक
साधना-सदन,
इलाहाबाद

मुद्रक
जगतन लाल हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग।

बहिन भागीरथी को-

'भैया-दूज' की भेंट

हाहाकारभरी गृहस्थियों को स्वर्ग
बनाने वाली
'सुमन' जी की लिखी अन्य पुस्तकें

१. आनन्द-निकेतन २॥)
२. घर की रानी १।)
३. कन्या १।)
४. नारी : गृहलक्ष्मी और कल्याणी २।)

साधना-सदन को लिखिए

पुस्तक की रामकहानी

इस पुस्तक की रामकहानी बड़ी विचित्र है। १९३० का सत्याग्रह आन्दोलन शुरू होने के पहले, जब मैं कुछ दिनों के लिए छुट्टी पर, काशी जाने लगा तो मैंने अपनी एक बहिन से पूछा कि तुम्हारे लिए काशी से क्या लाऊँ ? उसने सोचकर कहा—"मेरे योग्य, स्त्रियोपयोगी पुस्तकें ले आना।" आते समय मैंने, काशी में कई बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं से तलाश कराया; प्रकाशित स्त्रियोपयोगी पुस्तकें देखीं पर मेरा मन किसी से न भरा। उधर अपनी छोटी बहिन भगवती को भी मैं उसके भावी जीवन के लिए, दूर बैठे-बैठे, तैयार करना चाहता था; और बहुत दिनों से मेरी इच्छा भी स्त्रियों के विषय में एक पुस्तक लिखने की थी। स्त्रियोपयोगी पुस्तकों का हिन्दी में अभाव देख इस इच्छा को उत्तेजना मिली। बिहार की एक पढ़ी-लिखी बहिन से भी कुछ दिन पहले, स्त्री-समस्या पर पत्र-व्यवहार हुआ था जिसकी बहुतेरी स्मृतियाँ हृदय में बनी हुई थीं। इसलिए दिन-दिन पुस्तक लिखने की इच्छा प्रबल होती गई पर मेरे लिए भाई से भी अधिक हरिभाऊजी के जेल चले जाने पर 'त्यागभूमि' का बोझ बढ़ जाने एवं घरेलू कठिनाइयाँ अधिक हो जाने के कारण समय न मिल सका और वह इच्छा मन में ही दबी रही।

इस बार भैयादूज के कुछ दिन पहले मैंने भगवती को इस विषय में कुछ पत्र लिखने का विचार किया। इसी समय स्वास्थ्य खराब हो जाने से मुझे प्रयाग होते हुए काशी जाना पड़ा। वहाँ मैंने अपने प्रिय मित्र श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' (ओझाबन्धु आश्रम, प्रयाग) को दस-बीस पन्ने, जो पत्र-रूप में लिखे हुए थे, दिखाये। उन्हें और उनके पूज्य पिता साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री को वे बहुत पसन्द आये और उन्होंने उसे अपने यहाँ से प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया। मैंने यह भी सोचा कि इस बार भैयादूज के समय बहिन भागीरथी को यही पुस्तक उपहार में देनी चाहिए। उस समय भैयादूज को केवल पन्द्रह दिन रह गये थे। मैंने 'मुक्त' जी से कहा : आप आठ-दस दिन में पुस्तक जैसे हो छपवा दीजिए। उन्होंने इसे भी स्वीकार कर लिया। इस समय तक पुस्तक की केवल ३ फार्म की कापी तैयार थी। अजमेर पहुँचते ही रात-दिन परिश्रम कर ४ दिन में सब

कापी मेज देने का वादा कर मैं लौटा, पर मुश्किल से ७ फार्म की कापी तैयार हुई थी कि मेरे दाहिने हाथ में फोड़ा निकल आया जिससे लिखना एकदम बन्द हो गया। ७ फार्म वहाँ छपकर पड़े रहे। भैयादूज बीत जाने पर मेरा उत्साह भी ठंडा पड़ गया।

उधर सस्ता-साहित्य-मण्डल ने पुस्तक पसन्द करके अपने यहाँ से निकालने का आग्रह किया तथा मुझे भी कई कठिनाइयों के कारण यह प्रस्ताव पसन्द आ गया। 'मुक्तजी' इस पुस्तक का विज्ञापन तक कर चुके थे। इस पुस्तक के प्रति उनकी ममता थी किन्तु मेरी कठिनाई पर और उससे भी अधिक हम लोगों में जो निजी बन्धु-भाव चला आया है, उस पर ध्यान देकर उन्होंने तथा उनसे भी अधिक प्रेमपूर्वक उनके पिता श्री शास्त्री जी ने मुझे आज्ञा दे दी। फलस्वरूप आज यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अनुज श्री० श्यामलाल, श्रीमती अंजना बहिन, भागीरथी बहिन इत्यादि से बड़ा उत्साह प्राप्त हुआ है और समय-समय पर अनेक विषयों पर अपनी राय देकर उन्होंने मेरी सहायता की है, जिसके लिए उन्हें धन्यवाद है।

गांधी-आश्रम, हटुण्डी (अजमेर)
२८-२-१९३१

विनीत
श्री रामनाथ 'सुमन'

चतुर्थ संस्करण की भूमिका

इस संस्करण में काफ़ी काट-छाँट की गई है। 'कन्या' वाला खण्ड बढ़ा दिया गया है—कन्याओं की शिक्षा के विषय में अनेक उपयोगी सूचनाएँ इसमें जोड़ी गई हैं और उनके शिक्षणक्रम की एक रूपरेखा भी इसमें देने की चेष्टा की गई है। 'मातृत्व' वाले खण्ड में कई जगह वैज्ञानिक विस्तार में कमी करके व्यावहारिक एवं उपयोगी बातें बढ़ा दी गई हैं। अन्त में जो कहानी तथा औषधि-उपचार की बातें थी वे निकाल दी गई हैं क्योंकि प्रत्येक

आदमी की प्रकृति भिन्न होने के कारण योग्य वैद्य, डाक्टर या चिकित्सक की सलाह लेना ही मैं अधिक उपयोगी समझता हूँ।

—श्रीरामनाथ 'सुमन'

पंचम संस्करण

'भाई के पत्र' का यह पञ्चम संस्करण पाठकों के हाथ में जा रहा है। चौथे संस्करण में प्रूफ़ ठीक तरह से न देखे जाने के कारण बहुत-सी ग़लतियाँ रह गई थीं, वे सब यथासम्भव इस संस्करण में ठीक कर दी गई हैं। कहीं-कहीं विषय को सुबोध और स्पष्ट करने के लिए घटाया बढ़ाया भी गया है। आशा है, इससे बहिनें लाभ उठायेंगी।

साधना सदन,
६६ लूकरगंज, इलाहाबाद

श्रीरामनाथ 'सुमन'

छठा संस्करण

इधर कुछ दिनों से 'भाई के पत्र' पुस्तक मूल प्रकाशक (सस्ता साहित्य मंडल) के यहाँ समाप्त हो जाने के कारण बाज़ार में अप्राप्य थी। पुस्तक की माँग बराबर बनी रहने तथा छपवाने में प्रकाशक के सामने कुछ कठिनाइयाँ आ जाने के कारण इसका वर्तमान संस्करण साधना-सदन प्रकाशित कर रहा है। मंडल ने इसके लिए उदारतापूर्वक आज्ञा दी है, जिसके लिए मैं उसका कृतज्ञ हूँ। इस संस्करण में भी यत्र-तत्र संशोधन किया गया है।

श्रीरामनाथ 'सुमन'

सातवाँ संस्करण

यह हर्ष की बात है कि दिन-दिन इस पुस्तक का प्रचार बढ़ रहा है। इससे भी अधिक प्रसन्नता हमें इस बात की है कि पढ़ी-लिखी बहिनों में पाश्चात्य सभ्यता की चमक-दमक के प्रति, उसके अवाञ्छनीय सामाजिक मानों और मूल्यों के प्रति, एक प्रतिक्रिया होने लगी है। वे अपनी ओर, अपने लक्ष्य की ओर देखने लगी हैं। लेखक को इससे अधिक और क्या चाहिए!

श्रीरामनाथ 'सुमन'

विषय-सूची

प्रस्तावना १०

हमारी अवस्था १८

[खण्ड १ : कन्या]

१. शिशु जीवन २४

२. कन्या की शिक्षा २६

[खण्ड २ : नारी]

१. विवाह के पहले ४४

२. विवाह और उसका उद्देश्य ४७

३. सुखमय दाम्पत्य जीवन ५३

४. पुरुष-हृदय का रहस्य ६२

५. स्त्री-हृदय का रहस्य ७०

६. गृह-जीवन ७८

७. विवाह के बाद—एक सप्ताह ७६

८. प्रेम बनाम अधिकार ६५

९. स्त्री-हृदय का हीरा १०६

१०. कुछ साधारण बातें ११७

११. गृहस्थ-जीवन के रहस्य १२६

[खण्ड ३ : माता]

१. जगज्जननी ! १७०

२. यह अविराम श्रम ! १७१

३. स्त्रीत्व से मातृत्व तक १७४

४. नवजात शिशु ! १६७

५. पालन-पोषण २००

६. बच्चे का भविष्य २०७

७. मातृत्व का गौरव २०८

[खण्ड ४ : कुछ सच्चे पत्र]

कुछ सच्चे पत्र २११

भाई के पत्र

[विवाह-समस्या, स्त्री-जीवन और मातृत्व]

"विरोध और खण्डन करने के लिए इसे मत पढ़ो; न इस पर विश्वास करके इसे ज्यों का त्यों मान लेने के लिए पढ़ो; विवाद एवं बहस-मुबाहिसे के लिए भी इसे मत पढ़ो; सिर्फ तौलने और गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिए इसे पढ़ो।"

—बेकन

प्रस्तावना

दुनिया सुख का रास्ता खोजने में विकल है। वह धीरे-धीरे चलती है; वह दौड़ती है; वह ठहर कर सोचती है; वह रोती और अट्टहास करती है। वह सागर की छाती चीर कर पृथ्वी को नापती है; वह पहाड़ लाँघ कर आकाश को छूती है! वह दूसरों से लड़ती है; वह दूसरों को गुलाम बनाती है; वह मनुष्य को पशु होना सिखाती है! वह दूसरों से मेल करती है; वह दूसरों की सहायता करती है और दूसरों को मित्र बनाती है; वह पशु को मनुष्य मनुष्य को मनुष्य बनाती है! ये सुख की खोज के साधन हैं—वह सुख के लिए विकल है; वह अधीर होकर *शान्ति* के लिए छटपटा रही है पर वह *शान्त* होकर ही शान्ति पा सकती है, यह बात उसे भूल गई है!

समाज का मूल व्यक्ति है और इसलिए समाज के व्यक्तित्व का मूल भी मनुष्य का व्यक्तित्व है। इस बात पर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि आत्म-शोध और आत्म-निरीक्षण की भावना उदय होने से व्यक्ति का विकास होता है और व्यक्ति का विकास होने से समाज का कल्याण होता है। समाज व्यक्ति का एक विकसित रूप है। भारतीय संस्कृति में सदा आत्म-सुधार पर ज़ोर दिया गया, इसका कारण यही ज्ञान था, और यही ज्ञान था कि भारतीय संस्कृति आजतक, अपने घुने हुए रूप में सही, मौजूद है। ग्रीक या यूरोपीय संस्कृति में समाज-सुधार पर, सामूहिक विकास पर, ज़ोर दिया गया। इसका कारण क्या था, हम नहीं कह सकते—शायद नहीं जानते। पर उसमें भ्रम अवश्य था और उसी भ्रम के कारण आज वह संस्कृति दिखाई नहीं देती या दिखाई देती है तो बड़े ही बदले हुए और भयङ्कर रूप में!

लोग ये बातें भूल गये हैं, या देखकर भी देखना नहीं चाहते। प्रवाह का, भीड़ का, धक्का बड़ा ज़बरदस्त होता है। न चाहने पर भी वह जिधर धकेल दे उधर जाना पड़ता है। पर यही मानसिक गुलामी का आरम्भ है—यह व्यक्ति के पतन की पहली सीढ़ी है। यह विवेक को गिरवी रखकर लोकप्रियता खरीदने का प्रयत्न है:—यह हृदय को बेचकर बदले में शरीर लेने का उद्योग

है। यह विष है; यह हमारी साधना के विरुद्ध है। हम कहते हैं, इससे सँभलो; यह हमारा नाश कर देगा।

जीवन भावनाओं में उड़ने का नाम नहीं है; जीवन प्रतिक्रिया में बहने का नाम नहीं है; जीवन लोकप्रियता प्राप्त करने का नाम भी नहीं है। *जीवन सिद्धान्तों एवं भावों के संग्रथन और साधनाओं एवं विधियों के समझौते का नाम है।*

इसलिए राष्ट्र के पुनर्जीवन के इस अवसर पर, भारतीय संस्कृति के उद्धार की चेष्टा की पहली एवं अस्पष्ट साधना के समय, मैं कहना चाहता हूँ कि हमारी संस्कृति आत्म-सुधार के सिद्धान्त पर व्यक्ति को लेकर, बनी थी और कुटुम्ब इस व्यक्ति के विकास की पहली पूर्ण इकाई—'यूनिट' है। उस प्रयत्न से बढ़कर श्रेयस्कर कुछ नहीं है जिससे व्यक्ति और कुटुम्ब का सच्चा विकास हो; जिससे हमारा गृहजीवन शान्तिमय, संयममय और प्रकाशमय हो।

इस गृह-निर्माण में नारी का प्रधान हाथ है। वह सुकन्या होकर व्यक्ति के 'सत्यम्' को प्रकट करती है; वह नारी होकर व्यक्ति के 'सुन्दरम्' को प्रकाशित करती है; वह माता होकर व्यक्ति के 'शिवम्' को रूप देती है। कन्या से नारी होने में व्यक्ति से कुटुम्ब में विलीन होने की साधना है। नारी रूप में वह व्यक्ति के अन्दर कुटुम्ब का विकास और प्रसार करती है। माता होकर वह कुटुम्ब के व्यक्तित्व में आत्म-विसर्जन की, त्याग और निवृत्ति की, समाज के विकास की भावना जगाती है। यह नारी का रहस्य है और यह हमारी संस्कृति के विकासक्रम में उसकी साधना है।

इसीलिए यदि भारत फिर दुनिया को अपनी आत्मा का दिव्य सन्देश देना चाहे तो उसे पहले अपने नारी वर्ग का उत्थान करना पड़ेगा; पहले उसे देश में सुकन्याएँ, सच्ची नारियाँ और सच्ची माताएँ उत्पन्न करनी पड़ेंगी और तब उनके द्वारा, उनकी साधना, सहायता और तपस्या से व्यक्तिगत एवं गृह-जीवन को ऊँचा उठाकर सच्चे सुख एवं शान्तिमय जीवन में समाज का, संस्कृति का उचित निर्माण हो सकेगा।

इन बातों का ध्यान रखकर ही यह पुस्तक लिखी गई है। इसे लिखने में

मैंने समाज एवं समय की छोटी-छोटी आवश्यकताओं पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया है। शुरू से अन्त तक मैंने केवल यह ध्यान रखा है कि मेरी बहिनें किस प्रकार ऐसी बन सकती हैं जिनमें हमारी संस्कृति का यह आदर्श पूरा हो। इसे लिखते समय मैंने यह ध्यान नहीं रक्खा है कि वे विदुषी बनें और अपने तेजस्वी व्याख्यानों से हजारों श्रोताओं को चकित एवं स्तम्भित कर दें; मैंने इसका ध्यान नहीं रक्खा है कि वे देश और समाज की नेता बनकर उसका उद्धार करनेवाली हों और अपने उपदेशों एवं मौलिक त्याग के दृश्यों से लाखों युवकों को लज्जित और उत्साहित करें! मैंने सिर्फ यह ध्यान रखकर इसे लिखा है कि वे दीन-हीन कन्याएँ नहीं, भविष्य की आशा से भरी हुई, अपने अन्दर विश्वास रखनेवाली कन्या बनें। मैंने इसमें यह ध्यान रक्खा है कि वे लज्जित, संकुचित अबलाएँ नहीं, नारीत्व की कोमलता और प्रकाश से पूर्ण नारी बनें; मैंने इसमें यह ध्यान रखने की कोशिश की है कि वे कुण्ठित, मृतप्राय और प्राणहीन माताएं नहीं, आत्म-विसर्जन की प्रतिमा और अपने हृदय के अमृत से भविष्य को—भावी सन्तति को सींचनेवाली माता बनें।

मैं उस त्याग का उपासक हूँ जो बोलता नहीं! जो देश के प्लेटफार्मों पर नहीं उछलता, गाँवों की झोपड़ियों में टिमटिमाता है! मैं उस विद्या को ज्ञान नहीं कहता जो बुद्धकाल की मूर्तियों की तिथि निश्चित करने के गौरव से गौरवान्वित है या शेक्सपियर के चरित्र-चित्रण की मीमांसा कर सकती है। मैं उस विद्या को ज्ञान कहता हूँ जो मनुष्य के अन्दर मनुष्यता विकसित करती, और उसे अन्दर की पशुता पर विजय प्राप्त करने के योग्य बनाती है। मैं उस यश का भक्त नहीं हूँ जो दुनिया के बाजारों में चाँदी के चन्द टुकड़े लुटा देने से, प्रतियोगिता के व्याख्यानों में लाखों की तालियाँ बज उठने से या साहसिक कार्यों से दुनिया को चक्कर में डाल देने से प्राप्त होती है। मैं उसको यश कहता हूँ जो एक दीन-दुखिया के कलेजे में सुख का श्वास उत्पन्न करती और कृतज्ञ मनुष्यता की उस स्मृति को जगाती है जिसमें आनन्दातिरेक से, स्नेह से आँखों में आँसू भर आते हैं, मुँह से बोली नहीं निकलती और हृदय अनुभव करता है कि दुनिया में मनुष्य भी है—मनुष्यता भी है!

इसलिए मैंने ऐसे ही *त्याग*, ऐसी ही *विद्या* और ऐसे ही *यश* का ध्यान रखकर इस पुस्तक के द्वारा बहिनों के *अन्दर वात्सल्य, स्त्रीत्व* और *मातृत्व* को जगाने की कोशिश की है।

मैं जानता हूँ कि बहुत से उग्र *सुधारक* इसे पढ़कर चिढ़ेंगे, असन्तुष्ट होंगे। कहेंगे—देखो "आखिर तो पुरुष ही है न!" मैं जानता हूँ कि पुरानी लकीर के फ़कीर कहेंगे कि "वेद-शास्त्रों का कचूमर निकालकर यह अपनी मनमानी कर रहा है।" मैं जानता हूँ कि मेरी छोटी-सी योग्यता और उससे भी छोटे अनुभव को जाननेवाले मित्र कहेंगे कि "यह बुजुर्गों की तरह बोलता है—'पैट्रोनाइज़िंग टोन' में बातें करता है; बहुत ऊँचा उठना चाहता है यद्यपि स्वयं इसमें एक फुट ऊँचा उठने की शक्ति नहीं है।" मैं इन बातों को सिर झुकाकर गुरुजनों के आशीर्वाद की भाँति, स्वीकार कर लेता हूँ। इसमें कोई संन्देह नहीं कि मैं पुरुष हूँ, मैंने पुरुष का शरीर पाया है। इसमें भी कोई शक नहीं कि मैं प्राचीन ग्रन्थों का आदर करते हुए, उनका अपनी बुद्धि के अनुकूल ही अर्थ ग्रहण करने में समर्थ हूँ। और इस बात में तो बहस की गुंजाइश ही नहीं कि मैं बहुत ही दुर्बल और बहुत ही छोटी बुद्धि का आदमी हूँ। मेरे मित्र जितना जानते हैं, उससे मेरी कमज़ोरियाँ अधिक और मेरी शक्ति कम है पर इसके साथ ही मैं अपनी सारी दीनता के बल पर यह कह सकता हूँ कि मेरा हृदय *स्त्री हृदय* है; मुझे अपने पतन पर, कमज़ोरियों पर लज्जा आती है पर किसी बहिन को गिरते—ग़लत रास्ते पर जाते देखकर मेरा हृदय, मेरा मन और मेरा शरीर कराह उठता है! इसलिए नहीं कि मैं पुरुषों की बुराइयों की उपेक्षा करता हूँ; इसलिए कि मैं *सचाई* से स्त्री को पुरुष से तोल में नहीं पर मोल में ज़्यादा क़ीमती चीज़ समझता हूँ; इसलिए कि मेरे नज़दीक पुरुष *समर्थ* हैं पर स्त्रियाँ *पवित्र* हैं, *महान्* हैं!

इसलिए और सिर्फ़ इसलिए मुझे अधिकार है कि मैं जिन्हें भक्ति करता हूँ, उनके सामने अपना हृदय खोलकर रख दूँ जिससे वे देख लें कि एक *भक्त* का हृदय अपने *देवता* से क्या चाहता है!

आज स्त्रियों की समस्या बड़ी जटिल होती जा रही है। स्त्री-सुधार के नाम पर एक तहलका मचा हुआ है! दलबन्दियाँ हो रही हैं। गर्मागर्म व्याख्यान दिये जा रहे हैं; छोटे-छोटे स्कूलों से लेकर बड़े-बड़े अखबारों और पुस्तकों तक में बहस चल रही है। इन उपायों से लोग समाज-निर्माण की समस्याओं को हल करना चाहते हैं पर इस शब्द-जाल में मानसिक गुत्थियाँ और भी उलझती जाती हैं। हिन्दू-मुसलमान यह भूल गये हैं कि उन्हें इसी देश में रहना है। इसीलिए उन्हें लड़ते देखकर सुधारकों और नेताओं को आश्चर्य होता है पर क्या इससे भी आश्चर्य की बात यह नहीं है कि पुरुषों और स्त्रियों की दलबन्दियाँ अलग-अलग स्वार्थों को लेकर हों—उन पुरुष-स्त्रियों की, जिन्हें न केवल इस देश में, वरं *सारी दुनिया में सदा* एक साथ रहना है।

यह दुःख की बात है। और इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि हम दुःख की उत्तेजना में ग़लत मार्ग पर चल रहे हैं; उस ग़लत रास्ते की दौड़ में ही होड़ हो रही है। पुरुष अपना सुधार करने और अपनी उन ग़लतियों एवं बुराइयों को दूर करने का, जिनके कारण स्त्रियों में बदले की भावना जगती जा रही है, यत्न छोड़ कर स्त्रियों के उद्धार में लग गये हैं और स्त्रियाँ पुरुषों के जुल्मों और अत्याचारों का रजिस्टर खोले बैठी हैं! इससे कुछ होने का नहीं; इससे कटुता और दोनों के बीच का अन्तर और बढ़ेगा।

इसका सीधा हल तो यह है कि पुरुष अपनी ओर—अपने कर्तव्य और आदर्शों की ओर देखे, स्त्रियाँ अपने कर्तव्य और आदर्श की ओर देखें। पुरुष सच्चा पुरुष बने, स्त्री सच्ची स्त्री बने। पुरुष राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, चैतन्य को अपना आदर्श बनायें; स्त्रियाँ सीता, रुक्मिणी, सावित्री सती, दमयन्ती, मीरा इत्यादि को आदर्श बनावें। तभी काम चलेगा। साहस, धैर्य, क्षमा, वीरता, गाम्भीर्य, ज्ञान, बल-पराक्रम इत्यादि पुरुष के सद्गुण हैं और दया, करुणा, स्नेह, ममता, शील, लज्जा, मधुरता, विनय, सरलता, सन्तोष, सेवा इत्यादि स्त्री के सद्गुण हैं। दोनों अपने-अपने गुणों को अपनायें और एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रखकर, एक-दूसरे में मिलकर, ऊँचा उठें। बस यही इसका सीधा उपाय है।

परन्तु अभी तक बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग इसी पर बहस करते जा रहे हैं कि स्त्री स्वभावतः छोटे दर्जे की और प्रकृति-द्वारा ही पुरुष के आधीन रहने के लिए बनाई गई है। इसमें पुराने ख्याल के लोगों का बहुमत है—पुराने ख़याल के लोगों से मेरा मतलब सिर्फ बड़े-बूढ़ों से नहीं है वरं बहुत से नव-युवकों से भी है, जो समाज के लाभ, जाति के विकास के नाम पर स्त्रियों को पुरुषों से छोटा समझते हैं—यद्यपि इसमें कट्टर पुराने धर्मवादियों की संख्या ज्यादा है। इसका कारण यह है कि पुरुष-हृदय स्वभावतः अधिकार-प्रिय, स्वार्थी, प्रवृत्तिमय और सन्देहशील है, नहीं वेद, महाभारत[1] से लेकर संसार के प्रत्येक महापुरुष ने स्त्री का दर्जा पुरुष से श्रेष्ठ बताया है और उसे विश्वास एवं पूजा के योग्य[2] माना है।

हिन्दू नारी जन्म से ही त्याग करना सीखती है। वह निवृत्तिमयी है। पर अब हम नारी को पुरुष—बालिका को बालक बनना सिखाने लगे हैं; यह हमारी झूटी सहानुभूति और भ्रान्ति है। जैसे खूब भोग-विलास से रहने और खाने-पीनेवाला आदमी जरा सा शाक-पात खाकर रहने एवं शरीर की चिन्ता न करनेवाले सच्चे तपस्वियों एवं महात्माओं को देखकर उन्हें दुखी मानकर उनपर तरस खाता है वैसे ही हम सोचने लगे हैं कि इस संयम में रहना हिन्दू नारी के लिए बड़ा दुःखदायी है। नहीं, संयम में रहना उसने जन्म से सीखा

---

[1] "हे स्त्री तू घर की मालिक बनकर जा। वहाँ जितने पुरुष हों सब के साथ रानी की तरह बात-चीत कर।" —ऋग्वेद

"कोई कहता है माँ बड़ी है, कोई कहता है बाप बड़ा है। पर असल में माँ बड़ी है, क्योंकि वह सन्तान-पालन जैसा कठिन कार्य करती है और फिर भी प्रसन्न दिखाई देती है।" —महाभारत

[2] "स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है; उसकी सबसे बड़ी मित्र है। धर्म, अर्थ और काम की जड़ है। जो उसका अपमान करता है, काल उसका नाश करता है। वह घर का धन और शोभा है इसलिए सदा उसकी रक्षा करनी चाहिए। वह माता के समान पूज्य है।" —महाभारत

था पर अब हम पुरुष अपने भोगमय, अधिकारमय, असंयत जीवन से उसके मन में क्षोभ उत्पन्न करने लगे हैं। स्त्रियों के संयम से हमारे भोगों में बाधा पड़ती है इसलिए हम नक़ली सहानुभूति के द्वारा उन्हें उत्तेजित करके उनके संयम की बाँध तोड़ देना चाहते हैं। आजकल समाज-सुधारक और स्त्रियों का उद्धारकर्ता वह है जो अच्छे अच्छे वस्त्राभूषणों से सजाकर, नये फैशन के साथ स्त्री को गाड़ियों पर लेकर निकले; उसके साथ सिनेमा जाय; चाय की पार्टियों में शामिल हो। मनोवृत्ति यह नहीं है कि स्त्री ऊँचा उठे; उसे आराम मिले; वह अधिकार लेकर मनुष्य-जाति के लिए सेवा और गौरव की वस्तु बने; मनोवृत्ति यह है कि उसे अधिकार मिल जायँ और हमारी तरह वह भी भोगमयी, प्रवृत्तिमयी हो जाय तो हमारे भोग-विलास में सहायता मिले, उसमें सरलता हो जाय!

इसका फल यह हुआ है कि समाज में स्नेहमूर्ति और पतिप्राणा कुलवधुओं एवं त्यागी और तपस्विनी माताओं की संख्या दिन-दिन कम होती जाती है और चञ्चल रमणियों की संख्या बढ़ती जाती है! जीवन की ऊपरी बातों और सुविधाओं पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है और उन्हीं को लेकर लोग अस्थिर, चञ्चल हो रहे हैं। स्त्री-पुरुष के गुणों पर से, उनका जो सत्व है, उसपर से लोगों का ध्यान उठता जा रहा है।

परन्तु स्त्रियों के मुख की ओर देखकर फिर भी आशा होती है। मन कहता है—*"हिन्दू नारी! तेरी वह शिक्षा एक दिन की शिक्षा नहीं है, एक भाव की भी शिक्षा नहीं है, तेरी वह शिक्षा सहज ही विलुप्त नहीं होगी।"*§

इसलिए एक ओर तो मैं स्त्रियों से कहता हूँ कि तुम अपने आदर्श की ओर देखो और दूसरी ओर पुरुषों से कहता हूँ कि अपना सुधार करो!

इस पुस्तक में इसी प्रेरणा की प्रबलता है जिससे पुरुष-स्त्री का अन्तर मिटे और दोनों एक-दूसरे के अधिकाधिक निकट पहुँचें!

---

§ बंगला से (नारी-उपदेश)

निश्चय ही इस पुस्तक में अपूर्णताएँ होंगी—मनुष्य की प्रत्येक कृति में अपूर्णता होती है। कोई इसे देखकर कहेगा कि इसमें अमुक-अमुक बातें और होनी चाहिए थीं, कोई इसे देखकर कहेगा कि इसमें ये-ये बातें न लिखनी चाहिए थीं। मैं जानता हूँ इसमें अभाव हैं—वे अभाव मेरी अयोग्यता के कारण भी रह गये हैं और इसलिए भी कि पुस्तक, आशा से अधिक बढ़ने लग गई—जो न तो प्रकाशक को और न मुझे प्रिय था क्योंकि बड़ी पुस्तकों के प्रसार एवं प्रचार में बड़ी बाधाएँ आ जाती हैं। सन्तोष इसी बात का है कि चाहे मैंने अपनी योग्यता से बड़ा काम ले लिया हो पर उसे सचाई के साथ करने की चेष्टा की है और मेरी सम्मति में दुनिया में, और विशेषतः स्त्रियों की दुनिया में, योग्यता की अपेक्षा सचाई ज्यादा अच्छी चीज़ है।

सचाई के सम्बन्ध में तो इसी से जाना जा सकता है कि मैंने इस पुस्तक का अधिकांश अपनी छोटी बहिन भगवती को लिखा है जो विवाह के योग्य हो गई है। अपनी सगी बहिन को जैसा मैं बनाना चाहता हूँ वैसा ही मैंने लिखा है। इसलिए इसे पढ़कर कोई मुझपर ईर्ष्या-द्वेष का, झूठाई का इलज़ाम नहीं लगा सकता।

मुझे आशा है कि इस पुस्तक से बहिनों का उपकार होगा और यदि मेरी आशा पूरी हुई तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

बहिनों से एक प्रार्थना है और वह यह कि *इस पुस्तक को पढ़ते समय इसका विरोध करने और इसका जवाब देने का ध्यान भुलादें; न इसकी बातों को बिना विचारे मान लें; वे इसे केवल गम्भीरता-पूर्वक विचार करने के ख्याल से, इसमें कोई अच्छाई हो तो उसे लेने के लिए ही पढ़ें।*

गांधी-आश्रम, हटुण्डी
अजमेर
२८-२-३१

श्रीरामनाथ 'सुमन'

हमारी अवस्था

हमारे पतन की नींव उससे कहीं ज्यादा गहरी है, जितना हममें से अधिकांश समझ रहे हैं। यह केवल हमारी स्थूल परिस्थिति तक ही सीमित नहीं है, हमारे मानस में इसकी जड़ें पनप रही हैं। इसने हमारे सम्पूर्ण मानसिक नैतिक आधार को हिला दिया है। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र में बाहरी सुधारों के लिए जो आवाज़ उठाई जा रही है, उससे काम न चलेगा। जब जड़ में घुन लग रहा हो तब डालियों की काट-छाँट व्यर्थ सिद्ध होगी।

यह सत्य है कि राजनीतिक दृष्टि से हम गुलाम रहे हैं; हमारा अपना देश हमारा नहीं था। हम स्वाधीनतापूर्वक उस देश में भी अपने विचार प्रकट करने के अधिकार से वञ्चित थे, जिसकी मिट्टी में हमारे पूर्वजों की हड्डियाँ गड़ी हैं और जिसकी कहानियों में हमारी कितनी ही बहिनों और माताओं के रक्त की स्मृतियाँ जल रही हैं! स्वदेश-प्रेम ने उस भीषण अपराध का रूप धारण किया, जिसके लिए कितनी ही माताएँ पुत्रहीन हो गईं; कितनी ही बहिनें भाइयों की याद में रोती हैं और कितनी ही बहुएँ वैधव्य के रूप में गुलामी की पीड़ा जगाये हुए आँसू बहा रही हैं। साधारण प्रारम्भिक अधिकारों से भी हम वञ्चित रहे हैं।

राजनीतिक

यह भी सत्य है कि आर्थिक दृष्टि से हमारा अस्तित्व शून्य-सा है। व्यापार-व्यवसाय विध्वंस हो गया है; खेती को दुर्भाग्य के पशु ने चर लिया है। जहाँ घी-दूध की नदियाँ बहती थीं, वहाँ आज विदेशी 'घास का घी' और जमाया दूध भी खुशहालों को ही नसीब है! जहाँ के कपड़े से यूरोप की रमणियों का शृङ्गार होता था, वहाँ के बच्चों के शरीर पर कपड़ा नाममात्र को ही दिखाई पड़ता है! मैंने अपनी आँखों से एक ही फटी-गु थी सुहाग की साड़ी पहनकर काम चलाने को मजबूर होने वाली बहुओं को देखा है। स्नान के समय

आर्थिक

इन्हें आधी साड़ी भिगोकर करुणा की सजीव मूर्ति की तरह तालाबों से 'घर' लौटते देखा है। बम्बई और कलकत्ता की सड़कों पर पाँव और सिर को मिलाकर भगवान की छत्रछाया में सड़क पर खड़े रहने वाले कितने ही भाइयों को देखा है और उन माँओं को भी देखा है, जिनके कलेजे के टुकड़े दो-दो दिन की भूख से व्याकुल होकर उनका स्तन चूसते हैं, पर कुछ नहीं मिलता! *वमन किये हुए अन्न को तथा पशुओं की लीद से निकले दानों को खाकर जिन्दगी बिताने वालों का हमारे देश में अभाव नहीं है।* भूख की यन्त्रणा के कारण अभी कुछ ही दिन पूर्व कलकत्ता में एक शिक्षित पति-पत्नी एक साथ ज़हर खाकर मर गये और एक माँ से जब अपने बच्चे का तड़पना न देखा गया तो उसे उसने विष देकर मार डाला! ये उदाहरण एकाकी नहीं हैं। प्रत्येक स्थान से ऐसे अनेक उदाहरण एकत्र किये जा सकते हैं। हमारा सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचा ही गिर गया है। जो धनवान हैं वे भी मानसिक दृष्टि से निकम्मे, आर्थिक दृष्टि से केवल विदेशियों के दलाल, शारीरिक दृष्टि से जीते मुर्दे और सामाजिक दृष्टि से प्रतिगामी हैं। जो ग़रीब हैं, उनका तो बस राम मालिक है। कैसे वे जी रहे हैं, यह भी समझ में नहीं आता।

फिर हमारे शरीर की ही क्या अवस्था है? पचीस वर्ष के बाद हमारे घरों की स्त्रियों की गिनती युवतियों की जगह बड़ी-बूढ़ियों में होने लगती है। दो सन्तान हुईं कि कहीं प्रसूति-ज्वर धर दबाता है; कहीं क्षय हो जाता है; कहीं कमर-दर्द शुरू हो जाता है। और हमारे युवक? ये तो जीते हुए मुर्दे हैं। मलेरिया से घुनी हुई छातियाँ, बैठी हुई आँखें, टूटे हुए बाजू, सूखे हुए निस्तेज चेहरे, ये हमारे भावी समाज के निर्माता युवक हैं? ये, जिनका हृदय मलिन है, जिन्हें अभी से वासना की साँपिन ने डँस लिया है; जो किसी सुन्दरी बहिन को सामने से जाते देखते हैं तो ग़ैरत को धो-बहाकर लोलुप आँखों से उसको निगल जाना चाहते हैं। हमारे बच्चों को देखो और अंगरेज़ों के बच्चों से उनको मिला लो! ये डरे, सहमे, अधभूखे और वे निर्भय, हँसमुख, हृष्ट-पुष्ट।

शारीरिक

बुद्धि और विवेक का हाल यह है कि जिन्होंने असभ्य संसार को सच्चे

ज्ञान के रास्ते पर चलाया; जिन्होंने अनेक नई विद्याओं का आविष्कार किया; जिन्होंने संसार को चिरन्तन सुख का मार्ग बताया. आज उनके बच्चे 'मार्टेन' और 'स्मिथ' साहब की बातों को वेदवाक्य समझते हैं। आज उनकी बौद्धिक गुलामी इतनी बढ़ गई है कि जब तक यूरोपवाले कह न दें, हमारे बड़े-बड़े विद्वान् किसी बात को प्रामाणिक मानने के लिए तैयार नहीं।

बौद्धिक

और सामाजिक क्षेत्र में? मैं क्या बताऊँ, हिन्दू नारी इसे पुरुषों से कहीं ज्यादा अच्छी तरह समझती है। युद्ध में निकलकर लड़नेवाली स्त्रियाँ आज परदे के अन्दर विलास की पुतलियाँ बन गई हैं। इस खिलौने को देखकर हँसी आती है! कहीं कान छिदे हुए, कहीं नाक में नथ लटकती हुई, गले गहनों से कसे हुए, पाँवों की अँगुलियाँ बिछिया के बन्धन में खून की गति रुक जाने से सूख गई हैं; पाँव गहनों के बोझ एवं रगड़ से काले पड़ गये हैं। गहनों के लिए शरीर छिदाने को तैयार ये स्त्रियाँ, और उन्हें इस तरह कामुक दृष्टि से देखकर वासना-रञ्जन करनेवाले पुरुष, दुनिया में क्या करेंगे? फिर कहीं माता गोदमें लेकर 'बच्ची' का ब्याह करा रही है, कहीं बुड्ढा नकली दाँत लगाये ज़रा-सी लड़की को अपनी हठधर्मी के हवन-कुण्ड में ढकेलकर संसार से पार उतरने को तैयार है! कहीं सास बहू को नाड़ दिखा रही है, कहीं बहू अपने पति को सास के विरुद्ध भड़का रही है। कहीं स्त्री को श्मशान पर फूँक कर लौटते ही सगाई की बात-चीत चल रही है और कहीं एक युवती विधवा, गृहस्थ के अभिशाप की भाँति, अपने जीवन से ऊबकर आत्म-हत्या की चेष्टा में है।

सामाजिक

पर यह तो ऊपर की अवस्था मात्र है, यह तो तफ़सील है! यह पौधे के सूखे हुए फूलों, मुरझाती हुई टहनियों और सूख कर गिरती हुई पत्तियों की कहानी है। असली रोग तो दूसरा ही है। कौन कहता है कि ये बुराइयाँ दूर न हों या इनकी उपेक्षा की जाय? ये बहुत भयंकर बुराइयाँ हैं, इन्हें दूर करने का यत्न श्रेयस्कर है; पर परदे के अन्दर, जड़ के नीचे, क्या हो रहा है इसे देखना क्या सबसे

मूल रोग

जरूरी नहीं ? जिस नींव पर पौधा खड़ा किया गया है, जिससे उसके सब अङ्गों का जन्म हुआ है, उसके रोग का निदान क्यों न किया जाय ? समाज के, राष्ट्र के जीवन का जो मूल सोता है, उसमें जब तक जल न रहेगा, हम भी पनप नहीं सकते। मनुष्य के जीवन की जो नींव है उसमें आज घुन लग गया है। हर चीज़ को अपने-अपने स्थान पर ठीक-ठीक रखकर उससे काम लेने, उसका उचित उपयोग करने की कला हम भूल गये हैं, जीवन का सन्तुलन—बैलेंस—झुक गया है। सहानुभूति, जो प्रत्येक प्रकार की सामाजिक भावना की जननी है, नष्ट हो गई है। आत्म-वंचना ने उसका स्थान ले लिया है। इसका फल यह हुआ है कि व्यक्तिगत सदाचार से मनुष्य गिर गया है और इसीलिए आज घरों में स्त्री पुरुष को, पुरुष स्त्री को दोष देता है। कुटुम्ब भारतीय समाज की इकाई (यूनिट) है और व्यक्ति कुटुम्ब की इकाई है; इसलिए समाज की शान्ति और पवित्रता के लिए कौटुम्बिक शान्ति और घरेलू तथा व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता आवश्यक है। जबतक प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने कर्तव्य की ओर ध्यान न देगा और अपने कर्तव्य का पालन करते हुए भी दूसरों के प्रति अपनापन, सहानुभूति, उदारता और स्नेह का अनुभव न करेगा, राजनीतिक या सामाजिक किसी भी क्षेत्र में सच्ची उन्नति नहीं हो सकती। थोड़े में इसका मतलब यह है कि व्यक्तिगत सदाचार और कौटुम्बिक शान्ति के बिना समाज का सच्चा कल्याण सम्भव नहीं है।

जब हम कुटुम्ब को समाज की इकाई कहकर पुकारते हैं तो कुटुम्ब शब्द से हमारा अभिप्राय साधारणतः 'माता-पिता एवं सन्तान' (या पति-पत्नी और सन्तान) से होता है। इन तीनों पर ही समाज का भविष्य और हिन्दू संस्कृति का निर्माण निर्भर करता है। इसलिए मैं पुस्तक में इस बात पर विचार करना चाहता हूँ कि लड़की और लड़के का जीवन किसी तरह ऐसा बन सकता है कि विवाह की वेदी पर वे एक-दूसरे के लिए त्याग करना, एक-दूसरे के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझना सीखें; क्योंकि विवाह ही वह सूत्र है, जो उन्हें सुन्दर और कल्पनामय पर गैरज़िम्मेदार जीवन से अलग हटाकर माता-पिता के कर्त्तव्य, त्याग, सेवा और ज़िम्मेदारी के जीवन

में बदल देता है। आज शिक्षित स्त्री-पुरुषों में अधिकार के लिए जो होड़ चल रही है और इससे गृहस्थ की सुख-शान्ति नष्ट होने का जो भय है, उससे हम कैसे बच सकते हैं और दोनों का जीवन दोनों के लिए कैसे परस्पर अवलम्ब का जीवन हो सकता है, इसपर विचार करना आवश्यक है।

खण्ड १ : कन्या

"जब मैं किसी देवी को देखता हूं तो ऐसा मालूम होता है जैसे ईश्वर के सामने खड़ा हूँ ! तू उसकी अन्तिम कारीगरी है । तू हृदय की शान्ति है । प्यारी लड़की ! तू आज ऐसी है, बड़ी होकर पता नहीं क्या होगी ?"

—अलेक्ज़ेण्डर स्मिथ

: १ :

शिशु-जीवन

शिशु सृष्टि की एक बड़ी मनोहर विभूति है। बच्चों से अधिक पवित्र, कोमल, आशापूर्ण और निरीह पदार्थ और क्या हो सकता है? जब किसी छोटे बच्चे को धूल में बड़ी गम्भीरता के साथ घर उठाते

वह निर्दोष शिशु!

और भोजन बनाते देखता हूँ; जब उसे बड़े सरल और निर्दोष भाव से ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछते देखता हूँ, जिन्हें कहने में हम बड़ों को लज्जा आ दबाती है, जब एक बच्चे को अपनी माँ से ही विवाह के लिए हठ करते देखता हूँ या जब एक छोटे बच्चे को साँप से लेकर चन्द्रमा तक सबको हाथ से पकड़ कर गोद में ले लेने को उत्सुक पाता हूँ तो इस कलहपूर्ण संसार की अशान्ति से भागकर इन बच्चों में ही मिल जाने की इच्छा होती है। ऐसा मालूम होता है मानों इस स्वार्थ और द्वेष की दुनिया में, जब जीव जीव की हत्या और विनाश में आनन्द अनुभव करता है, आश्रय का एक मात्र स्थान बचपन का क्रीड़ा स्थल ही है। इनमें शत्रु-मित्र का, जात-पाँति का भेदभाव नहीं; ये देशकाल से परे हैं। इन्हें संसार की हवा नहीं लगी, मानो स्वर्ग से खेलते-खेलते सजीव खिलौने पृथ्वी पर उतर आये हों!

निश्चय ही बच्चों से बढ़कर निर्दोष हृदय और कहाँ मिल सकता है? तभी तो ईसा ने बड़े व्यग्रातुर शब्दों में भगवान् से हाथ जोड़कर कहा था—"पिता! तू मेरा सारा महत्व, शक्ति, पवित्रता और यश ले ले और बदले में मुझे एक छोटा बच्चा बना दे।"

किन्तु यह एक आश्चर्य और दुःख की बात है कि जो शिशु इतना पवित्र है और जिसके समाज में स्वतः कोई ईर्ष्या, द्वेष तथा भेदबुद्धि नहीं

यह भेद भाव!

उसके जीवन को भी अपने अविचार, स्वार्थपरता एवं आदर्शहीन व्यावहारिकता के कारण हमने ज़हरीला बना दिया है। बच्चों में स्वतः बालक-बालिका के प्रति सम-भाव और सम-बुद्धि होती है। एक बच्चा जब दूसरे बच्चे को प्यार करते

लगता है तब यह नहीं देखता कि वह लड़का है या लड़की। वह तो उस निर्मल प्रेम की अज्ञात भावना से आकर्षित होता है, जो मनुष्य में मनुष्यता को खोजती है, और कुछ नहीं। पर दुनिया तो स्वार्थ की तराजू पर हर चीज़ तौलती है। इसीलिए समाज में लड़की की आज दुर्दशा है। उसके महत्व का ध्यान लोगों को नहीं रह गया है। इसका कारण माता-पिता एवं कुटुम्ब वालों की भेद-बुद्धि मात्र है। वे लड़की होते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। इतना ही हो तो भी गनीमत है, पर लड़कियों के पालन-पोषण में भी लड़कों की अपेक्षा भेद रक्खा जाता है। ज़रा भी रोने पर, ज़रा भी मचलने पर, उसे माता तक झिड़क देती है। लोग समझते हैं कि बच्चे कुछ नहीं समझते, पर यह विचार सर्वथा भ्रमपूर्ण है। यह ठीक है कि वे भाषा और शब्दों का पूरा-पूरा अर्थ नहीं जानते, पर वे भाव और कुभाव को, चेहरे पर उदित होने वाले परिवर्तनों को, पहचानने में बहुत तेज़ होते हैं। आश्रय देनेवालों के भावों की नक़ल करने की शक्ति बच्चों में बहुत बड़ी मात्रा में मौजूद रहती है। उनपर उनके पालकों के व्यवहार और मनोभावों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। भविष्य में वे जो कुछ हो सकते हैं उसका बीज इसी कोमल अवस्था में पड़ता है। इसीलिए लड़कियों के प्रति अवज्ञा का भाव प्रकट करके न केवल हम उनके साथ अन्याय करते हैं, बल्कि अपनी सन्तान के हृदय में भी अवज्ञा और उपेक्षा का बीज बोकर इस दुःसह और अवाञ्छनीय परिस्थिति को सदा के लिए दृढ़ और स्थायी कर जाते हैं। यह ठीक है कि वर्तमान समाज में लड़कियों के प्रति उदासीनता का जो भाव पाया जाता है, उसका कारण आर्थिक स्वार्थपरता है। हम सोचते हैं कि लड़का तो बड़ा होकर हमें खिलाये-पिलायेगा, हमारी सेवा करेगा; उसके द्वारा कुटुम्ब की वृद्धि होगी और उसका यश अपना यश होगा। लड़की कुछ दिनों बाद पराये घर की हो जायगी। पर इस स्वार्थपरता के मूल में बुद्धि और विवेक तो ज़रा भी नहीं है। पुरुष ही ऐसी भूल करें, सो नहीं; माताएँ भी भूल जाती हैं कि वे अपनी माताओं के पेट से लड़की के रूप में ही जन्मी थीं और यदि लड़कियाँ न होंगी तो लड़के कहाँ से होंगे?

यह हर्ष की बात है कि पिछले बीस वर्षों में स्त्रियों की और हमारे सामाजिक व्यवहार में काफ़ी परिवर्तन हुआ है। स्त्री-शिक्षा की ओर समाज का ध्यान सामूहिक रूप से आकृष्ट हुआ है। जो माता-पिता कुछ दिनों पूर्व तक लड़कियों को पढ़ाना अधर्म समझते थे, वे भी अपनी कन्याओं को स्कूल भेजने लगे हैं—कम-से-कम किसी-न-किसी प्रकार उनको अक्षर-ज्ञान कराने का भाव प्रबल होता जा रहा है। साधारणतः पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में जागरण के चिह्न अधिक तेज़ी से फैलते जा रहे हैं और वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पदार्पण कर रही हैं या करने को उत्सुक हैं। राजनीति के आघात-प्रत्याघात के कारण हमारा सामाजिक जीवन नई-नई शक्तियों और विचारधाराओं से भर रहा है। इसका असर, अनजान में ही सही, सर्वत्र हो रहा है और आज समाज में सुशिक्षिता, गुणवती कन्याओं की आवश्यकता लोग अनुभव करने लगे हैं और कम-से-कम नगरों में विवाहित जीवन के लिए उनकी माँग बढ़ती जा रही है। समाज की वृद्धि और विकास के कार्य में आज नारी का महत्व पुरुष से भी अधिक है और समाज का भविष्य बहुत करके उसके व्यवहार पर निर्भर है।

इसलिए, यदि हम ज़रा भी विचार से काम लें तो हमको मालूम होगा कि समाज के सञ्चालन में और उसे ऊँचा उठाने में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं का महत्व अधिक है। एक बालिका के अच्छी, गुणवती और सहृदया होने पर सैकड़ों प्राणियों का भविष्य और सुख-दुःख निर्भर करता है, क्योंकि बालिका ही आगे जाकर गृहणी और फिर माता होती है तथा उसके विचार और आचरण का कुटुम्ब और समाज की शान्ति, उन्नति और निर्माण पर बड़ा गहरा असर पड़ता है। एक लड़के के बिगड़ जाने पर, ख़राब निकल जाने और अशिक्षित एवं गुणहीन हो जाने से, समाज की उतनी हानि नहीं हो सकती, जितनी एक लड़की के कलहप्रिय, असहिष्णु और ख़राब निकल जाने से हो सकती है। इसलिए हमारे धर्मशास्त्रों में लड़कियों का स्थान बहुत महत्व का माना गया है। अब भी विशेष अवसरों पर कुमारी कन्याओं की पूजा की जाती है। वे देवी और लक्ष्मी-रूप मानी जाती हैं।

बालिकाओं का सामाजिक महत्व

फिर आजकल जब शिक्षित और विचारवान युवक अपने लिए योग्य गृहणियों तथा सच्ची सहधर्मिणियों की आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं, अच्छी लड़कियों का महत्व दिन-दिन बढ़ता जाता है। अब लड़कियों के माता-पिताओं को अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। और यदि स्वार्थ की दृष्टि से भी देखें, तो लड़की के विनम्र, सुशील आज्ञाकारिणी, सेवापरायण, और वफ़ादार होने से पति-गृह तो सुघरता और स्वर्ग बन ही जाता है, किन्तु पितृ-गृह का भी यश और आदर बढ़ता है। लड़की पराये घर जानेवाली है, इस विचार से हमें लड़कों की अपेक्षा उसके लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। अन्यथा लड़की का जीवन नष्ट होगा, पति के गृह में अशान्ति बढ़ेगी और लड़की के पिता की बदनामी भी कुछ कम न होगी। स्वार्थ या परार्थ, जिस दृष्टि से देखें, भावी गृहणी और माता होने के कारण लड़कों की अपेक्षा कुटुम्ब और समाज दोनों की रचना में, लड़कियों का महत्व और मूल्य अधिक है। वे समाज की माताएँ हैं, बालक कितना ही गुणी हो, माता-रूपी बालिका का शिशु है और जीवन में बिना उसके सहयोग के वह अपूर्ण—निकम्मा—रह जाता है। यदि तुम अपने देश का पिछला इतिहास देखो तो मालूम होगा कि त्याग, बलिदान, श्रद्धा और वफ़ादारी में स्त्रियाँ सदा पुरुषों से आगे रही हैं। सती, सावित्री, सीता, विदुला, दमयन्ती, चिन्ता इत्यादि सती नारियाँ हिन्दू जाति के इतिहास में हीरे की तरह चमक रही हैं। जब हम राम का ध्यान करते हैं तब सती और तेजस्विनी सीता की याद तुरन्त आ जाती है। जब हम शिव का स्मरण करते हैं तब सती का तेज से चमकता हुआ चेहरा आँखों में नाचने लगता है। इसलिए प्रत्येक माता-पिता को लड़की होने पर न केवल प्रसन्न होना चाहिए, बल्कि उन्हें अत्यधिक गौरव का अनुभव करना चाहिए। जैसे कली खिले हुए फूल-फल का संक्षिप्त रूप है, वैसे ही लड़की माता का संक्षिप्त संस्करण है और जैसे कली फल का अविकसित रूप है वैसे ही लड़की सन्तान की आदि प्रतिमा है। इस प्रकार एक लड़की के अन्दर स्त्रीत्व, मातृत्व तथा शिशुत्व तीनों बीज रूप में वर्तमान रहते हैं।

लड़कियों के प्रति यह अवज्ञा एवं उदासीनता हमारी सभ्यता के मूल पर

कुठाराघात है। इससे धर्म्म का कोई सम्बन्ध नहीं। समाज में ग़रीबी और बेकारी की बाढ़ ने इस प्रश्न को और विकट कर दिया है। लड़की पराई चीज़ मानी जाने लगी है। और मजदूर-पेशा लोगों में स्त्रियों की मजूरी कम होने और अनेक जातियों में दहेज की भयङ्कर बुराई के कारण इस भाव को बड़ा बल मिला है। उत्तर भारत में कायस्थ आदि शिक्षित जातियों में तो लड़की का अवतार पाप के उदय के समान हो गया है क्योंकि दहेज की प्रथा के कारण साधारण और मध्यम श्रेणी का आदमी इनके विवाह की व्यवस्था करने में पिस जाता है।

परन्तु इसके कारण सामजिक जीवन में लड़की के प्रति किसी प्रकार की उपेक्षा का भाव रखना किसी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। इसका सीधा हल तो यह है कि लोग आन्दोलन और संगठन करके समाज का सुधार एवं परिष्कार करें और उसकी बुराइयों तथा कुप्रथाओं को दूर करके एक श्रेष्ठ और कल्याणकारी सतह पर उसका निर्माण करें, न कि अपनी दुर्बलताओं का क्रोध बेचारी लड़कियों पर निकालें।

इस अनैतिक और अवाञ्छनीय व्यवहार ने समाज में एक अप्राकृतिक वातावरण पैदा कर दिया है। लड़कियों में अपनी ही हीनता और असमर्थता का भाव पैदा हो गया है जिसकी प्रतिक्रिया विवाहित जीवन में बड़ी भयानक हो रही है।

इसलिए बहिनो! यदि तुम संसार में अपने बाद योग्य प्रतिनिधि छोड़ जाना चाहती हो, जो अपने जीवन को सार्थक करें, श्रद्धा-भक्ति से गुरुजनों की सेवा करें, सच्ची सहधर्मिणी होकर पति के कार्यों में हाथ बटावें और सच्ची माता के रूप में समाज को योग्य, सदाचारी एवं आदर्श सन्तति भेंट करें तो तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम न केवल अपने मन से लड़कियों के प्रति अवज्ञा के भाव दूर कर दो, वरं यदि कन्या उत्पन्न हो तो भगवान् की विशेष कृपा और देन समझकर उन्हें सब प्रकार भावी जीवन के योग्य बनाओ।

लालन-पालन और शिक्षा

कन्या की शिक्षा

हमारे देश की अवस्था ऐसी गिर गई है कि हम प्रत्येक क्षेत्र में अपना ठीक रास्ता भूल गये हैं या भूलते जा रहे हैं। सैकड़ों वर्षों की गुलामी ने हमारी मौलिक प्रतिभा और चिन्ताशीलता नष्ट कर दी है और हमें बिना सोचे-समझे सिर्फ़ नक़ल करने का आदी बना दिया है। इससे सबसे बड़ी हानि तो यह हुई है कि हमारी संस्कृति का आदर्श ही लुप्त होता जाता है। इमारत तो ढह गई है; साथ ही नींव में भी, जिस पर कभी हम फिर भविष्य का महल उठा सकते थे, घुन एवं कीड़े लग गये हैं। जो कुछ हमारा अपना था, वह सब हम भूलते जा रहे हैं। आज कल मानवजीवन का उद्देश्य ही कुछ अस्थिर-सा हो रहा है। हमारे जीवन का, हमारी सभ्यता का उद्देश्य और आदर्श यह था कि विवेक एवं संयम के सहारे मनुष्य के अन्दर की पशुता को दूर करके उसमें देवत्व का विकास किया जाय और क्षणस्थायी शारीरिक सुविधाओं की अपेक्षा मानसिक और आध्यात्मिक विकास के ऊपर ज्यादा ध्यान देकर निरतिशय—सर्वाधिक—आनन्द की खोज एवं प्राप्ति की जाय। इसलिए प्राचीन समय में हमारी शिक्षा के उद्देश्य और प्रकार भी भिन्न थे। ब्रह्मचारी विद्यार्थी जंगलों में, पशुओं के साथ घूम-घूम कर विश्वप्रेम का पाठ पढ़ते और संसारिक क्षुद्र महत्वाकांक्षाओं से दूर, विवेक एवं शुद्ध बुद्धि के विकास के लिए त्यागी और विचारक गुरुओं से विद्या प्राप्त करते थे। उनके जीवन का उद्देश्य दूसरा था, इसलिए शिक्षा भी उसी के अनुकूल थी। आज वर्तमान सभ्यता ने शरीर को, सांसारिक एवं भौतिक समृद्धि को, इतना महत्व दे दिया है कि मानव-जीवन का आध्यात्मिक आदर्श लुप्त हो गया है। सभ्यता के शरीर की रक्षा ज़रूरी थी, पर इसकी रक्षा में दुनिया ऐसी चिमटी कि शरीर के अन्दर शरीर का राजा प्राण भी है, जो भूख-प्यास से छटपटा रहा है, इसका ध्यान ही किसी को नहीं रहा। शरीर की रक्षा में प्राण और

मृगतृष्णा के पीछे !

आत्मा की ऐसी उपेक्षा हुई कि शरीर की भी रक्षा न हो सकी। दुनिया में रहने वाले साधारण प्राणियों को धन-धाम की आवश्यकता अवश्य है, पर इस धन धाम का भी एक महान् उद्देश्य है, इसे जैसे नशे में सब भूल गये हैं। हमने चमक-दमक, चटक-मटक, भोग-विलास को जीवन का एकमात्र कार्य-क्रम बना लिया है। इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी के हृदय में, अपने चरित्र के उत्थान और समाज की सेवा के बदले, जिस प्रकार से भी हो, ज्यादा कमाने का विषैला धुआँ आरम्भ से ही भर जाता है। सुन्दर बँगला हो, ५००)-६००) रु० की नौकरी हो, ऐसा पद मिले कि हुकूमत की प्यास बुझाई जा सके और लोगों को दिखाया जा सके कि हमारी शान क्या है। सुन्दरी कमल सी आँखों और चन्द्रमा-से मुखवाली, कल्पना के समान नशा करने वाली पत्नी हो, मोटर पर घूमें, भिखमंगों को दुरदुरायें, सम्भेदवारों को अकर्मण्यता के लम्बे-चौड़े उपदेश दें और कभी सिनेमा, कभी थियेटर, कभी क्लब में, मित्रों,—और यदि सम्भव हो तो विशेषतः स्त्री 'मित्रों'—के साथ हा-हा ही-ही करते, सिगरेट के चक्करदार धुएँ और बढ़िया विलायती शराब के—गालों पर गुलाब की पंखड़ियों की लाली की तरह खिलने वाले—नशे के बीच, हँसी-खुशी से जिन्दगी बीतती रहे। समाज, देश, सब इनके लिए त्रास हैं। यह आजकल का सभ्य जीवन-क्रम है; यह आजकल की शिक्षा है!

जब लड़कों की शिक्षा ही इतनी हो रही है कि नैतिक आदर्शों का उनसे लोप होता जाता है, तब लड़कियों को कौन पूछता है! भारतवर्ष की मिट्टी में पलने वाले युवक, जिनके सिर में, जीवन को अत्यन्त कोमल प्रभावयोग्य अवस्था में, शेक्सपियर की जूलियट और बर्नर्डशा की 'मिसेज़ वारेन'

वे और ये!

के स्वप्न चक्कर काटने लगते हैं; जब ये सीता-सावित्री को भूलने लगते हैं और पीछे जब इन सतियों की वर्तमान छायारूप, अपनी पुरानी ढङ्गवाली (Old Fashioned) पत्नियों में उन्हें वे चंचल, दिल गुद-गुदानेवाली स्त्रियाँ, जिनके अतिरिक्त दूसरों को उन्होंने कभी न जाना और जो कालेज की अवस्था से ही किताबों के परदे में उनके साथ हो जाती हैं, उन्हें नहीं मिलतीं तो क्लबों, वेश्याओं और दूषित

मित्र-मण्डलियों के शिकार हो जाते हैं; शराब-कबाब का दौरा चलने लगता है। इन युवकों के साथ, इनकी जैसी शिक्षा पाकर कालेजों की अधिकांश लड़कियाँ 'स्त्रीत्व' के आदर्श से गिरती जा रही हैं। उनके हृदय में शील, लज्जा, नम्रता की जगह अधिकार, भोग और कठोरता का उदय हो रहा है। एक ओर शिक्षित रमणियों का यह हाल है, दूसरी ओर गाँव की सीधी-सादी स्त्रियाँ दुनियाँ की वर्तमान अवस्था से बिल्कुल अनजान हैं। पर यदि स्त्री-शिक्षा का वही आदर्श हो, जो आजकल हम कालेजों की लड़कियों में देखते हैं, तो ईश्वर हमारी इन ग्रामीण अशिक्षित बहिनों को सलामत रक्खे, जिनके मक्खन से कोमल हृदय में अब भी सतीत्व की सच्ची आभा और त्याग की ऊँची भावना चिनगारी की तरह चमक रही है।

मेरा यह तात्पर्य नहीं कि कन्या को अशिक्षित रखा जाय। शिक्षा तो प्रत्येक मानव प्राणी का, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, जन्मसिद्ध अधिकार है। जो मैं कहना चाहता हूँ, वह इतना ही है कि कन्या की शिक्षा का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है—उससे भी अधिक जितना लड़कों की शिक्षा का प्रश्न है। मेरा मानना है कि उचित ढङ्ग पर शिक्षित की हुई कन्या श्रेष्ठ समाज की माता है। उसपर गृह-जीवन के सुख, मानव-जीवन के विकास, और समाज, देश तथा विश्व के सुख की उठान निर्भर है। इसलिए समाज-जीवन में उनका स्थान एवं फलतः उनकी ज़िम्मेदारी बड़ी है। इस ज़िम्मेदारी के भाव का जागरण एवं उसे उठा लेने और भलीभाँति निबाह ले जाने की शक्ति का विकास जिस शिक्षा से हो, वही उचित और कल्याणकारी शिक्षा है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि 'हमारे अन्दर जो देवत्व, जो महती शक्ति प्रसुप्त एवं प्रच्छन्न है उसके प्रति जो चीज हमें जाग्रत कर देती है, वही शिक्षा है।' शिक्षा का तात्पर्य अक्षर-ज्ञान नहीं है। अक्षर-ज्ञान तो एक साधन-मात्र है। बहुत अधिक पढ़कर भी आदमी अशिक्षित और मूढ़ हो सकता है और निरक्षर व्यक्ति भी ज्ञानी होता देखा गया है। मुख्य बात जीवन को संस्कारवान् बनाना, सच्चाई के प्रति उसे जाग्रत करना है। होना यह चाहिए कि शिक्षा के साथ-साथ मनुष्य अधिक उदार हो; उसके गुणों

और आन्तरिक शक्ति का विकास हो और उसका दृष्टिकोण विशद, उदार, प्रेमल एवं उत्सर्ग-मय होता जाय।

इस दृष्टि से शिक्षा का स्थूल उद्देश्य पुरुष को सच्चा पुरुष और स्त्री को सच्ची स्त्री बनाना है। इसलिए बालिकाओं को जो शिक्षा दी जाय, उससे उनके अन्दर सच्चे स्त्रीत्व एवं मातृत्व का विकास होना चाहिए।

यह स्त्रीत्व और मातृत्व क्या है?

इस बात का तो विरोध नहीं हो सकता कि स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य स्त्री में सच्चे 'स्त्रीत्व' का विकास होना चाहिए। पर इस विषय में लोगों में बड़ा मतभेद दीख पड़ता है कि सच्चा 'स्त्रीत्व' क्या है? कोई वीर, साहसी, अपने पैर पर खड़ा होने के लिए अधिकार माँगने और पुरुष से उसके अनुचित व्यवहारों के लिए जवाब तलब करनेवाली नारियों में 'स्त्रीत्व' का आदर्श पूरा होता देखता है; कोई लज्जा और सङ्कोच के आवरण से ढकी, मन ही मन दीपशिखा-सी घुलनेवाली पर कभी मुँह न खोलनेवाली हुई-मुई को 'स्त्रीत्व' का आदर्श मानता है। समाज और साहित्य में एक ऐसा दल भी पैदा हो गया है। जो स्त्री-पुरुष के विवाह-सम्बन्ध को एक शारीरिक आवश्यकता की वस्तु मानकर उसमें पवित्रता तथा धार्मिकता देखनेवालों की हँसी उड़ाने में व्यस्त है। उसकी दृष्टि से या तो विवाह की प्रथा की वर्तमान रूप में बिल्कुल आवश्यकता नहीं है और यदि है तो वैवाहिक सम्बन्ध में सतीत्व और शारीरिक पवित्रता की भावना केवल पुरुषों—पतियों—के स्त्री को निजी सम्पत्ति समझने के अधिकार का बहाना मात्र है। इन विचार-धाराओं और प्रवृत्तियों के बीच 'स्त्रीत्व' का आदर्श डाँवाडोल हो रहा है।

परन्तु जब इन प्रवृत्तियों और विचार-धाराओं के मूल में पैठते हैं तब स्त्रीत्व का एक आदर्श स्थापित करने में विशेष कठिनाई का अनुभव नहीं करना पड़ता। पहले तो गृहजीवन की पवित्रता तथा समाज से उसके सम्बन्ध को कायम रखने के लिए यह मान लेना चाहिए कि पुरुष-स्त्री का सम्बन्ध कुछ स्थायी प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए है और यह सम्बन्ध एक ओर जितना ही मधुर, उदार तथा स्वतन्त्र प्रवृत्तियों पर आश्रित होना

चाहिए, दूसरी ओर उतना ही दृढ़, अन्योन्याश्रयी, व्यापक एवं परस्पर आत्म-समर्पणशील होना चाहिए। यदि इतनी बातें मान ली जायँ और स्त्रियाँ जहाँ अपने दृष्टिकोण को थोड़ा विशद बनावें, वहाँ पुरुष ज्यादा उदार बनें और स्त्री को अपनी सम्पत्ति समझने की अधिकार-भावना पर विजय प्राप्त करके थोड़ा नम्र और आत्मार्पणशील बन जायँ तो स्त्री-पुरुष-युद्ध अपने आप समाप्त हो जायगा। क्योंकि इन सब वाग्युद्धों के बीच भी दोनों को किसी न किसी रूप में एक-दूसरे का सहयोग प्राप्त करना ही पड़ता है।

इसलिए यदि स्त्री-पुरुष के परस्पर सम्बन्ध की वर्तमान अवाञ्छनीय दशा का विचार छोड़कर देखें, यदि पुरुष के पतन और हर हालत में नारी को अपनी सम्पत्ति और भोग्य वस्तु समझने से वर्तमान नारी के हृदय में प्रति-क्रिया रूप होड़ की जो आँधी चल रही है, उसे एक स्थायी समस्या न समझ स्त्री-पुरुष के साधारण सम्बन्ध को लेकर ही देखें तो नारी का अपना आदर्श क्या है, इसका विचार करके ही हमें नारीत्व का निश्चय करना पड़ेगा। अपनी अपूर्णता को लेकर प्राणी में जो आकुलता है उसी के सहारे नारी उसमें व्यवस्थित, सुन्दर और पूर्णतर जीवन का निर्माण करती है। पुरुष में सृजन की जो शक्ति है उसे जहाँ वह एक ओर मृदुल और सुन्दर बनाकर उसको एक आध्यात्मिक रूप देती है, वहाँ पुरुष के साथ अपने सहयोग से वह जिस नवीन जीवन की सृष्टि करती है, उसकी रक्षा, लालन-पालन भी करती है। इस नवीन प्राणी के तुच्छ मांस-पिण्ड में दया, ममता, प्रेम और सुन्दर चेतना का विकास करना उसी का काम है।

नारी के इस आध्यात्मिक रहस्य की ओर जब हम ध्यान देते हैं तो यह मानना पड़ता है कि ममता, दया, क्षमा, प्रेम, सहिष्णुता नारी के लिए अधिक आवश्यक हैं क्योंकि इनके बिना वह न तो पुरुष की पशुता को सुन्दर और उपयोगी रूप दे सकती है, न नवीन जीवन की वृद्धि और विकास की जिम्मे-दारी को सँभाल सकती है। स्त्री को इन्हीं गुणों का विकास करनेवाली शिक्षा देनी चाहिए।

माता का कर्त्तव्य है कि अपने कमरे में सती, सीता, सावित्री इत्यादि के

चित्र लगा रक्खे और लड़की (या लड़के) को बचपन से इन्हें प्रणाम करना सिखावे। तीन वर्ष की अवस्था से ही सतियों की, वीराङ्गनाओं की कहानियाँ मनोरञ्जक और सरल ढङ्ग से उन्हें सुनाने का क्रम डालना चाहिए। इससे मातृत्व का गौरवमय भाव लड़कपन से उनके अन्दर पैदा हो जायगा और बड़ी होने पर वे कभी स्त्री-योनि में जन्म पाने के कारण अपने को हीन नहीं समझेंगी। शिशु को पालने में जो शिक्षा मिलती है, उसका असर जन्म-भर रहता है। दूसरी बात यह है कि गोद की अवस्था से ही लड़की (या लड़के) में सफ़ाई की आदत डालनी चाहिए। इसके लिए माता का सदा स्वच्छ रहना एवं उसमें बच्चे के पास ज़रा भी गन्दगी होते ही उसे तुरन्त दूर कर देने की आतुरता होना ज़रूरी है। इससे सफ़ाई की आदत पड़ेगी और बच्चों का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा।

पहले पाँच वर्ष

सफ़ाई

तीसरी बात, जो लड़के की भाँति ही लड़की को ३-४ वर्ष की अवस्था से सिखानी चाहिए, सदा सच बोलने और किसी जीव को कष्ट न पहुँचाने की बात है। सच बोलने का अभ्यास कराने वाली माता को उचित है कि वह स्वयं सदा सच बोले और बच्चे के सामने कभी दो तरह की परस्पर-विरोधी बातें न करे। यदि आरम्भ से चेष्टा की जाय तो बच्चों के अन्दर सत्य-भाषण की आदत बड़ी सरलता से डाली जा सकती है। किसी को दुःख न पहुँचाने की भावना बच्चों में फैलाना जितना सरल है, उतना और कुछ नहीं। वे सहज ही कोमल, भेद-भाव-रहित और सबको अपनाने वाले होते हैं। ज़रा-से अभ्यास से उनमें यह भाव बहुत दूर तक बढ़ाया जा सकता है।

पाँच वर्ष की अवस्था में कन्या का विद्यारम्भ संस्कार होना चाहिए। पहले गिनती, सती स्त्रियों की कहानियाँ और महापुरुषों के नाम याद कराने चाहिएँ। साथ ही गुरुजनों एवं माता-पिता तथा बड़े भाई-बहिनों को नित्य उठकर प्रणाम करने का अभ्यास कराना चाहिए। गिनती इत्यादि याद हो जाने पर उन्हें अक्षरों का ज्ञान कराना ठीक होगा। ज्यों-ज्यों अक्षरों का ज्ञान होता जाय,

पाँच से साढ़े छः

उनसे महापुरुषों एवं प्राचीन सतियों के नाम पट्टी या स्लेट पर लिखाने चाहिएँ। इनके नाम का अभ्यास होने से उनमें स्वयं यह पूछने की उत्कण्ठा जाग्रत होगी कि ये लोग कौन थे? अपना नाम, पता और माता-पिता का नाम भी लिखाना चाहिए और साथ ही यह भी बताना चाहिए कि हमारा देश भारतवर्ष है, हम हिन्दू हैं, हमारी भाषा हिन्दी है और सदा सच बोलना और दूसरों की भलाई करना ही हमारा धर्म है। कभी-कभी सूर्य, चन्द्रमा, बादल, फूल, पेड़-पत्ते दिखाकर उन्हें इनका उपयोग बताना चाहिए। इससे बहुत शीघ्र बच्चे की प्रतिभा बढ़ेगी। लड़कियों को जो कहानियाँ बताई जायँ, उनमें स्त्रियों की वफ़ादारी, साहस, सत्कर्म और वीरता की कहानियाँ ज्यादा होनी चाहिएँ। आठ-नौ वर्ष की अवस्था तक लड़के-लड़कियों की शिक्षा में इसके सिवा और भेद नहीं होना चाहिए और जहाँ कहीं सम्भव हो ८-९ वर्ष तक लड़की-लड़कों को एक साथ ही पढ़ाना चाहिए। यदि सुशील माताएँ इस उम्र तक स्वयं शिक्षा दें तो और भी ज्यादा अच्छा प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि बच्चे पुरुष की अपेक्षा, मातृभाव की प्रधानता के कारण, स्त्री के पास अधिक प्रेम और मनोयोगपूर्वक पढ़ते और सीखते हैं।

मेरी समझ से जितनी बात मैंने ऊपर बताई है, वे पाँच वर्ष की अवस्था से लेकर साढ़े छः वर्ष की अवस्था तक—डेढ़ वर्ष में अच्छी तरह सिखाई जा सकती हैं। इतने दिनों तक इससे ज्यादा सिखाने की ज़रूरत नहीं; क्योंकि इस अवस्था के बच्चों को साधारणतः दो-ढाई घंटे रोज़ से अधिक पढ़ाना ठीक नहीं, इससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। साथ ही इस अवस्था में रटने की प्रवृत्ति पर कभी ज़ोर न देना चाहिए। देखना यह चाहिए कि कन्या उन शिक्षाओं को दैनिक जीवन में कहाँ तक कार्यान्वित कर रही है। कोई भूल करे तो उसे प्रेम से समझाना चाहिए और उसे पुचकार कर ही उससे उसकी भूलों का पता लगाते रहना चाहिए। कभी मारना-पीटना नहीं चाहिए। इससे बच्चों को लड़कपन से ही पशु-बल के सामने दब जाने की आदत पड़ जाती है और माता या शिक्षक की सारी शिक्षाएँ व्यर्थ होती हैं। जब माता या शिक्षक ने यह बताया हो कि क्रोध

कभी नहीं करना चाहिए और खुद क्रोध करके उसे पीटे, तो किसी तरह उस बच्चे के मन पर इस शिक्षा का प्रभाव नहीं पड़ सकता।

साढ़े छः से नौ

साढ़े छः वर्ष की अवस्था से लेकर नौ वर्ष की अवस्था तक लड़कियों को बोलने-चालने का ढङ्ग सिखाना चाहिए तथा अपने सब काम धीरे-धीरे अपने ही हाथों करने की आदत डलवानी चाहिए। इसके साथ ही उन्हें भारत के इतिहास की चुनी हुई कहानियाँ, हमारी गुलामी की गाथा, देश की दीनावस्था, स्वाधीनता की प्राप्ति इत्यादि बातें ख़ास तौर से बतानी चाहिएँ। सामाजिक विषयों में परदे की हानियाँ, गहने की बुराई इत्यादि बातें सिखानी चाहिएँ। थोड़ा हिसाब-किताब और पत्र लिखना भी आ जाय, तो अच्छा। चरखा कातना इस अवस्था में प्रत्येक लड़की को ज़रूर जान लेना चाहिए और नियमित रूप से कम से कम एक घण्टा कातने का अभ्यास भी उसे करना चाहिए।

लड़की का स्वास्थ्य ठीक रहे, इसलिए उसे सुबह-शाम एकान्त और खुली जगह में दौड़ना चाहिए; घर साफ़ करने और दस-पाँच बार चक्की घुमाने का भी अभ्यास आवश्यक है।

यदि ठीक तरह से इस क्रम का पालन किया जाय तो पाँच से नौ वर्ष के बीच—४ वर्षों में—लड़कियों का नैतिक, मानसिक और शारीरिक विकास यथेष्ट मात्रा में हो सकता है। इससे उन्हें इतिहास का थोड़ा ज्ञान हो जायगा, देश की वर्तमान अवस्था मालूम हो जायगी, थोड़ा हिसाब-किताब आ जायगा, वे चिट्ठी-पत्री लिखने लगेंगी, चरखा कातने का अभ्यास होगा, साधारण पुस्तकें पढ़ने-समझने की अक्ल आ जायगी और स्वास्थ्य ठीक होने के साथ ही समाज में किस तरह उठना-बैठना, बोलना-चालना चाहिए, यह भी वे सीख जायँगी।

नौ से बारह वर्ष की अवस्था लड़की के लिए बड़ी महत्वपूर्ण अवस्था है। मेरा विचार है कि जो माता-पिता प्रबन्ध कर सकें, लड़की को संगीत की शिक्षा अवश्य दें। वीणा, सितार या हारमोनियम में से कोई चीज़ थोड़ा-

बहुत बजाना जान लें तो अच्छी बात होगी। संगीत पति की, और अपनी भी मानसिक चिन्ता दूर करने का एक रामबाण उपाय है, पर गानों में ग़ज़ल इत्यादि की जगह ऊँचे विचार वाले गीत या भजन ही सिखाने चाहिएँ।

नौ से बारह

इस अवस्था में पुस्तक की शिक्षा से भी अधिक ध्यान घरेलू जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली व्यावहारिक शिक्षा की ओर देना चाहिए। जैसे भोजन बनाना, कपड़े काटना एवं सीना, थोड़ा कसीदे का काम, घर को कैसे साफ-सुथरा रखना चाहिए तथा अतिथियों का स्वागत-सत्कार कैसे करना चाहिए, इत्यादि बातें ख़ास तौर से सिखानी चाहिएँ। बड़ों के सम्मुख शील, सङ्कोच आदर से बोलना और छोटों से ममता एवं स्नेहपूर्वक बात करना सिखाना चाहिए। एक बहुत जरूरी शिक्षा यह है कि घर का हिसाब-किताब कैसे रखना जिसमें दो पैसा बचता रहे। इसकी व्यावहारिक शिक्षा इस तरह दी जा सकती है कि चार छः महीने घर का ख़र्च लड़की की सलाह से ही चलाया जाय, जिसमें उसे गृहस्थी के ख़र्च की सब कठिनाइयाँ मालूम हो जायँ।

इसके साथ-साथ पुस्तक की शिक्षा भी थोड़ी-बहुत होती रहनी चाहिए।

भारत में और विशेषतः हिन्दू समाज में, १२ वर्ष की अवस्था प्राप्त करते ही लड़की विवाह-योग्य समझी जाने लगती है पर यह नितान्त भ्रम। इतनी कम उम्र में न तो लड़कियों का पूर्ण शारीरिक विकास ही सम्भव है और न मानसिक विकास ही विवाहित जीवन की जिम्मेदारियों को उठाने योग्य हो सकता है। सच पूछो तो १२ वर्ष के बाद तो कन्या जीवन को कुछ कुछ समझने के योग्य बनती है। १६ वर्ष से पूर्व लड़की का विवाह मेरी सम्मति में उसका कामुकता के अग्नि-कुण्ड में बलिदान मात्र है! यह हर्ष की बात है कि पिछले १० वर्षों में इस दिशा में जनमत में वाञ्छनीय प्रगति हुई है और अब छोटी उम्र की शादियों की बुराई लोग समझने लगे हैं।

१२ वर्ष से १६ वर्ष की अवस्था कन्या के जीवन में अत्यन्त महत्व-पूर्ण है। इस अवधि में उसके अन्दर अनेक शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते हैं। मासिक धर्म आरम्भ होता है। इससे अनेक कन्याएँ भयग्रस्त एवं चिन्तित

हो जाती है। पर इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं। यह प्राकृतिक धर्म है और इस बात का द्योतक है कि कन्या किशोरावस्था की सीमा में प्रवेश कर रही है। यह जीवन में मानो एक नई ऋतु के आगमन की सूचना है। माता का कर्तव्य है कि कन्या को इसका तात्पर्य और महत्व बता कर उसे पूर्णतः निश्चिन्त एवं भय-रहित कर दे।

१२ से १६ वर्ष की अवस्था में कन्या की शिक्षा पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है। उसमें नवीन प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं। माता-पिता का कर्तव्य है कि वे देखते रहें कि लड़की किस प्रकार की पुस्तकें पढ़ती है—किन चीज़ों में उसका मन अधिक लगता है। इस काल में चित्त में विनय एवं संयम की अत्यधिक आवश्यकता है। साधारण शिक्षा के साथ-साथ उस के अन्दर वे सब उपकरण जाग्रत करने चाहिएँ जिनकी उसे भावी जीवन में आवश्यकता पड़ेगी। यह भावी जीवन की जिम्मेदारियाँ उठाने योग्य बनने की तैयारी का समय है।

सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि लड़की पूर्णतः नीरोग हो। उसके स्वास्थ्य पर इस काल में सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। विवाहित नारी जीवन की जिम्मेदारियाँ इतनी अधिक हैं और आजकल समाज में फैली हुई ग़रीबी और बेकारी के कारण उनका रूप कुछ ऐसा जटिल हो गया है कि अस्वस्थ अथवा दुर्बल नारी कभी विवाहित जीवन में सफल और सुखी होने की आशा नहीं कर सकती। विवाहित जीवन में स्वास्थ्य नारी की मुख्य पूँजी है। अस्वस्थ नारी न केवल अपने लिए भार-रूप है बल्कि वह विवाहित जीवन एवं मातृत्व के लिए अभिशाप है। वह स्वयं दुःख उठाती, सारे कुटुम्बियों की चिन्ता का कारण होती और दुर्बल सन्तानों का दान कर समाज की हानि करती है। इसलिए १३ से १६ वर्ष की अवस्था तक अपने को बनाने में लड़की और उसके माता-पिता को पूरा ध्यान देना चाहिए। घूमना, तैरना, चक्की चलाना, बाग़बानी तथा अन्य स्त्रियोचित व्यायाम करके शरीर को पुष्ट करना चाहिए। यद्यपि आज हेय समझकर उसका त्याग कर दिया गया है किन्तु चक्की चलाना प्रत्येक अवस्था में

(बीमारी को छोड़कर) नारी के लिए सर्वोत्तम व्यायाम है।

शरीर-सम्पत्ति का सञ्चय करते हुए लड़कियों के लिए दूसरी आवश्यकता इस बात की है कि उदारता और मृदुता का भाव उनमें खूब बढ़ाया जाय। प्रायः विवाहित जीवन की असफलता का कारण साधारण स्थितियों को ठीक तरह से हल करने की अक्षमता होती है। मेरा अनुभव है कि सहनशीलता, मृदुता और उदारता विवाहित जीवन की सफलता के लिए सबसे आवश्यक बातें हैं। अधिकांश अवस्थाओं में विवाहित जीवन की असफलता का कारण यह नहीं होता कि पति-पत्नी में एक दूसरे के प्रति सदाशयता अथवा शुभाकांक्षा की कमी होती है, बल्कि वह इसलिए असफल होता है कि अपनी सदाशयता को प्रकट किस प्रकार करना चाहिए, किस अवस्था में उसका कैसा उपयोग करना चाहिए, यह दोनों नहीं जानते। पति के अशान्त मन के कारण निकली हुई एक कटु बात का जवाब मृदुता से देकर योग्य एवं चतुर पत्नी दुःखदायी प्रसंग को टाल देती है और मूर्ख पत्नी उसका जवाब देकर बात का बतंगड़ बना लेती है जिससे गृह में कलह का आरम्भ होता और पति-पत्नी एक दूसरे से दूर हटते जाते हैं। विवाहित जीवन में "टैक्ट" की—चतुराई की बड़ी ज़रूरत है। मृदुस्वभाववाली पत्नी कड़वी घूँट पीकर पति के दिल के काँटे को निकाल लेती है; विष अमृत हो जाता है। मृदु स्वभाव, न कि पाण्डित्य, विवाहित जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। इसलिए कन्या को मृदुता, सहनशीलता, विनोद की वृत्ति—Sense of humour—कड़ुवी बात सुनकर भी प्रसन्न एवं हँसमुख रहने की आदत डालनी चाहिए।

भावी जीवन की तैयारी

इसलिए साधारण—साहित्यिक—शिक्षा के साथ-साथ लड़की को बड़ी सावधानी के साथ भावी जीवन के लिए तैयार करना चाहिए। उसे धीरे-धीरे यह बताना चाहिए कि उसका विवाह होने वाला है, उसे दूसरे के घर जाना होगा तथा उस अपरिचित एवं बिल्कुल नई जगह में उसे एक पूरी गृहस्थी का भार सम्भालना होगा। विवाह का क्या उद्देश्य है; पति, सास, श्वसुर, ननद, एवं भौजाइयों से कैसे बोलना-चालना, कैसे व्यवहार करना कि सब

वश में हो जायँ, इत्यादि बातें समझानी चाहिएँ। यह बताना चाहिए कि विवाह के बाद लड़कपन की स्वतन्त्रता नहीं रह सकती, दूसरों के सुख-दुःख का हर समय खयाल रखना पड़ेगा और स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों को सुखी बनाना होगा।

मेरा अपना अनुभव तो यह है कि आज-कल नारी-जीवन जो इतना दुःखमय हो रहा है उसके मूल में जहाँ अनेक सामाजिक कुरीतियाँ काम कर रही हैं वहाँ माता-पिता या संरक्षकों के पालन-पोषण का ढंग भी इसमें सहायता करता है। लड़कियाँ या तो बहुत ज्यादा उपेक्षा के साथ पाली जाती हैं जिससे लड़कपन से ही उनके व्यवहार में कटुता और जीवन में सुस्ती तथा उदासीनता आ जाती है या उनका लाड़-प्यार इस ढंग से होता है कि उन में कर्त्तव्य की अपेक्षा मोह का भाव ज्यादा आ जाता है। चूँकि लड़की को माता-पिता का घर छोड़ कर नई जगह जाना पड़ता है इसलिए उसके अन्दर ममता की जगह कर्तव्यशीलता का भाव लड़कपन से जगाना चाहिए। मेरा यह अपना अनुभव है कि बहुत-सी लकड़ियाँ यद्यपि वे सुशील, अच्छे हृदय की और प्रेममयी होती हैं, अच्छे और उदार पतियों को पाकर भी अपना दाम्पत्य जीवन दुःखपूर्ण कर लेती हैं। लड़कपन से उनका लालन-पालन ही इस प्रकार होता है कि ससुराल जाने पर भी मायके की चिन्ता और मोह में पड़ी रहती हैं और दुखी होकर अपना स्वास्थ्य खो बैठती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पति-पत्नी दोनों के सहृदय और प्रेमपूर्ण होते हुए भी दोनों के जीवन में एक प्रकार की उदासीनता छा जाती है और यदि वह शीघ्र दूर न की गई तो उसका असर अन्त तक रहता है। और दोनों के जीवन में एक प्रकार का दुःख, एक तरह का अभाव बना रहता है। इस प्रकार मैंने देखा है कि निर्दोष होते हुए, एक-दूसरे को सुखी करने की इच्छा रखते हुए तथा परस्पर प्रेम रखते हुए भी, लड़कियों का तथा उनके साथ उनके पतियों का भी, जीवन दुःखमय हो जाता है। सच पूछो तो यह जीवन में एक बड़ी करुणाजनक घटना है। जहाँ हृदय ही खराब हो, प्रेम न हो वहाँ दुःख उतना दुःख नहीं देता जितना प्रेम होते हुए भी, कर्तव्य-बुद्धि के अभाव के कारण

होने वाला दुःख जीवन को असह्य बना देता है।

इसका कारण यह है कि दुनिया में केवल प्रेम से ही सब समस्याएँ नहीं सुलझ सकतीं। प्रेम का किस प्रकार, कहाँ, कैसा प्रयोग करना चाहिए, यह जानना भी जरूरी होता है। प्रेम शक्ति है; कर्तव्य उस शक्ति को उपयोगी करके जीवन को मधुर और सुन्दर के साथ ही कर्तव्य-परायण और विवेकशील बना देता है। इसलिए लड़कियों को आरम्भ से ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे प्रेम के साथ ही कर्तव्य को प्रधानता दें। समझने योग्य अवस्था होते ही उन्हें यह बताना चाहिए कि जैसे उनकी माँ अपने माँ-बाप का घर छोड़कर इस घर में आई वैसे उन्हें भी एक दिन माता-पिता का घर छोड़कर दूसरे घर में जाना पड़ेगा और उसे ही अपना घर बनाना पड़ेगा।

इसके साथ ही लड़कियों को समय-समय पर अपने माता-पिता से दूर अपने निकट एवं विश्वस्त सम्बन्धियों के घर भी दो-दो चार-चार महीने रखना चाहिए। इससे माता-पिता से दूर रहने का भी उन्हें अभ्यास होगा।

यदि इन बातों का ध्यान रक्खा जाय तो विवाह के बाद, मायके के मोह से, लड़कियाँ जो कई बार अपने को दुखी, चिन्तित और बीमार बना लेती हैं और सदा के लिए दाम्पत्य जीवन के सुख को खो बैठती हैं, उससे उनकी रक्षा होगी। माता-पिता इन बातों का ध्यान रक्खें तो लड़कियों का कल्याण करेंगे।

लड़कियों का साधारण शिक्षण-क्रम

साहित्यिक :

भाषा-ज्ञान। मातृभाषा लिखने-पढ़ने एवं बोलने की अच्छी योग्यता।
अंग्रेज़ी का काम-चलाऊ एवं राष्ट्रभाषा का अच्छा ज्ञान।
भारत का भूगोल। विश्व के भूगोल की रूप-रेखा।
भारत का इतिहास। हमारी संस्कृति, सभ्यता के उत्कर्ष एवं पतन की कहानी।
देश का अच्छा ज्ञान। स्वतन्त्रता के आन्दोलन। कांग्रेस का इतिहास।
गणित—हिसाब-किताब रखने भर।
मातृभाषा के साहित्यका ज्ञान।

धार्मिक एवं सामाजिक :

हिन्दू धर्म के सर्वात्मभाव की शिक्षा। अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता एवं मैत्रीभाव की शिक्षा।

जीवन में अहिंसा का व्यावहारिक उपयोग।

श्रीकृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, गाँधी इत्यादि की शिक्षाओं पर मनन।

हिन्दू त्योहारों, व्रतों का ज्ञान। हिन्दू सतियों एवं सन्तों का ज्ञान।

जीवन में चरित्र की दृढ़ता तथा वह दृढ़ता उत्पन्न करनेवाले आचरण। श्रद्धा की शक्ति और महत्त्व की जानकारी।

जीवन में विवेक एवं श्रद्धा के सामञ्जस्य की आवश्यकता की अनुभूति।

रामचरितमानस का अध्ययन। गीता का सार।

परदे, गहनें, दहेज, अस्पृश्यता इत्यादि सामाजिक बुराइयों से होनेवाली हानियाँ। उनके त्याग का निश्चय करानेवाली शिक्षा। वर्तमान जीवन में फैशन की घातकता। सादगी पर ज़ोर। प्रदर्शन एवं चटक-मटक से दूर रहने की शिक्षा।

औद्योगिक एवं व्यावहारिक :

चर्खा कातने का अभ्यास। कपड़ों की कटाई, सिलाई, बुनाई एवं संगीत की शिक्षा। सम्भव हो तो चित्रकला की भी शिक्षा।

भोजन बनाने, गृह को सादगी के साथ एवं व्यवस्थित रूप में रखने की शिक्षा। गृह-विज्ञान का विस्तृत शिक्षण। सौन्दर्य एवं कला-वृत्ति के संस्कार।

तैरना, चक्की, घूमना तथा अन्य प्रकार के व्यायाम।

घरेलू औषधियों का ज्ञान। शिशु-पालन।

साधारण :

शिष्टाचार का शिक्षण।

पूँजीवाद, साम्यवाद, उग्रराष्ट्रवाद, गाँधीवाद के मूल सिद्धान्त एवं इनके अन्तर का साधारण ज्ञान।

अपने कार्य को अपने हाथ से करने में गौरव की अनुभूति।

नियमित रूप से समाचारपत्र पढ़ने का अभ्यास।

खण्ड २ : नारी

"कौन-सी ऊँचाई है जहाँ स्त्री चढ़ नहीं सकती ? कौन-सा ऐसा स्थान है जहाँ वह पहुँच नहीं सकती ? हज़ारों अपराध करो, वह क्षमा कर देती है। जब किसी बात पर अड़ जाय तो संसार की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती। ऐ देवी ! बिना तेरे संसार के पुरुषों का क्या हाल होता ? निराशा, उदासी, दुःख सब मिलाकर तेरे हृदय से प्रेम-भाव को नहीं छीन सकते।"

—कार्लटन

: १ :

विवाह के पहले

लखनऊ
४.१०.३०.

प्यारी बहिन भगवती,

इसे मैं भी जानता हूँ और तुम भी जानती हो कि अब बहुत दिनों तक तुम हमारे घर में न रह सकोगी। तुम्हारी अवस्था विवाह के योग्य हो गई है। पिताजी बहुत दिनों से तुम्हारा विवाह शीघ्र कर देने पर ज़ोर देते रहे हैं और मैं उसे टालता रहा हूँ। तुम यह भी जानती हो कि मेरे विचार इस सम्बन्ध में पिताजी के विचारों से भिन्न हैं। माँ बेचारी तो मँझधार में हैं। उनकी अवस्था प्राचीनता की ओर झुकी हुई है; उनकी बुद्धि मेरी बातों का समर्थन करती है; किन्तु अब वे भी अधीर हो रही हैं।

मुझे भगवान् ने दुनिया में बहुत थोड़ी पूँजी देकर भेजा था। मुझे अपने कुटुम्ब से उन्नति के साधन कभी प्राप्त नहीं हुए। समाज, कुटुम्ब, सबका रुख बराबर उलटा रहा और मुझे सदा विरोधी परिस्थितियों में रह कर, स्वजनों का विरोध सहकर, अकेले अपने बल पर रास्ता बनाना पड़ा। अब तो बहुत-सी बाधाएँ दूर भी हो गई हैं पर अब भी मेरे पास अपने विचारों के अनुकूल तुम लोगों का निर्माण करने के योग्य शक्ति नहीं है। जो कुछ साधन मैं जुटा सका, उसके अनुसार तुम्हें योग्य शिक्षा देने की मैंने सदा चेष्टा की। लगातार बाहर रहने के कारण मैं जिस क्रम और नियम से तुम्हें शिक्षा देना चाहता था, न दे सका। फिर भी मुझे सन्तोष है कि इस परिस्थिति में, अनेक चिन्ताओं और कार्यों के बीच, जो कुछ किया जा सकता था, मैंने किया है। मुझे हर्ष है कि पढ़ने-लिखने तथा अच्छी-अच्छी बातें एवं कलाएँ सीखने की तुममें लगन है। इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम जहाँ भी रहोगी, थोड़ी-बहुत मात्रा में अपना अध्ययन जारी रक्खोगी।

अब तुम निरी बालिका नहीं हो। माँ के या मेरे कहीं चले जाने पर तुम रोने लगती हो। इससे तुम्हारे हृदय की कोमलता सिद्ध होती है। यह ठीक है कि कोमलता स्त्री का एक विशेष गुण है, पर सबसे आवश्यक शर्त उसके जीवन को सुखी बनाने के लिए यह है कि जहाँ जिस अवस्था में रहे, अपने को उसके अनुकूल बनाले। यदि तुम इसका अभ्यास कर लोगी तो कभी दुखी न होगी। ऐसी हालत में तुम्हें गम्भीरतापूर्वक उस जिम्मेदारी के लिए जो तुम पर आनेवाली है, अपने को जल्दी से जल्दी तैयार कर लेना चाहिए।

यह ठीक है कि जिस माँ का तुमने दूध पिया है, जिस भाई की गोद में तुम खेली हो, जिस घर में तुम्हारे जीवन के सर्वश्रेष्ठ सोलह वर्ष बीते हैं, उसे छोड़कर एक अपरिचित घर को अपनाने में, आरम्भ में, तुम्हें दुःख होगा। प्रत्येक प्राणी का यह स्वभाव है कि वह जहाँ रहता है, जिन लोगों के साथ रहता है, उनसे उनका अपनापन हो जाता है। फिर जिस माता-पिता के रक्त-मांस से तुम्हारा शरीर बना है, जिन भाइयों की शुभाकांक्षाओं की छाया में तुम इतने दिनों तक पली हो उन्हें छोड़ते दुःख होना स्वाभाविक है पर दुनिया केवल भावुकता की जगह नहीं है। यह कर्तव्य की रंगशाला है। समस्त संसार में, प्रत्येक देश और समाज में (एकाध जंगली जातियों को छोड़कर) विवाह होने पर लड़की को पिता का घर छोड़कर पति के घर जाना पड़ता है और उसके बाद पति का घर ही उसका अपना घर होता है, पति की सम्पत्ति ही उसकी अपनी सम्पत्ति होती है। सास-ससुर को माता-पिता से बढ़कर मानना पड़ता है।

शास्त्रों में पति को देवता कहा गया है। इसका यह मतलब नहीं कि पति के सामने पत्नी का कोई स्थान ही नहीं है। जहाँ पति देवता है, वहाँ पत्नी देवी है। पति विष्णुरूप और स्त्री लक्ष्मीरूपा है।

पति-पत्नी का सम्बन्ध

बल्कि कई बातों में पत्नी का महत्त्व और जिम्मेदारी पति से भी अधिक है क्योंकि पुरुष चाहे जो हो वह स्त्री की सन्तान ही है। पति को देवता मानने का अर्थ इतना ही है कि जिस प्रकार देवता की पूजा और उपासना में लीन हो जाना, अपने

अस्तित्व को भूल जाना पड़ता है, वैसे ही पति में पत्नी को एकदम मिल जाना चाहिए। उसके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझना चाहिए; उसकी रक्षा, उसकी सेवा में अपनी शक्ति लगा देनी चाहिए।

भावी जीवन

विवाह के पूर्व ही तुम्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि जिस घर में तुम जाओगी वह चाहे कैसा ही हो, स्वर्ग नहीं होगा, न एकदम नरक ही होगा। दुःख-कष्ट, ईर्ष्या द्वेष, कटुता एवं संघर्ष भी वहाँ होंगे और स्नेह, विश्वास, मृदुता एवं सहानुभूति भी होगी। अब अपनी सहनशीलता, अपने कोमल व्यवहार, अपनी सेवा एवं मृदुवाणी से कटुता का वातावरण दूर करके अँधेरे में उजाला करना, अशान्त एवं असहिष्णु प्राणियों पर प्रेम एवं सेवा से विजय प्राप्त करना तुम्हारा काम है। लड़की को पिता के घर जितनी स्वतन्त्रता, जितनी बेतकल्लुफी और जितनी स्वच्छन्दता होती है, ससुराल में उसे प्रत्येक क्षण उतने ही बन्धन, शील, सङ्कोच एवं संयम से काम लेना पड़ता है। वहाँ उसकी जिम्मेदारी बढ़ जाती है और प्रत्येक विषय में बड़ी गम्भीरता, संयम और प्रसन्नता से काम लेना पड़ता है।

इसलिए सबसे पहली बात तुम्हारे जानने की यह है कि कुछ दिनों बाद तुम्हें एक ऐसा घर सँभालना पड़ेगा जिसे पहले तुमने कभी नहीं देखा,—जहाँ के लोग तुम्हारे लिए बिलकुल अपरिचित हैं, किन्तु तुम्हें इन्हीं लोगों को अपना सब कुछ समझना पड़ेगा; वही तुम्हारा कुटुम्ब है, यह भावना मन में पैदा करनी होगी। पति हमारे लिए सब कुछ है, सास हमारे लिए माता-तुल्य है और ससुर पिता के समान हैं तथा देवर और ननद भाई-बहिन हैं, यह अनुभव करना पड़ेगा।

दूसरी बात यह कि बहुत से लोग विवाह को सुख का खजाना समझते हैं, पर मैं तुम्हें पहले से बता देना चाहता हूँ कि यह बात ग़लत है। विवाह खेल की चीज नहीं; विवाह के बाद स्वतन्त्रता कम हो जाती है; जिम्मेदारियाँ और चिन्ताएँ बढ़ जाती हैं। इसलिए तुम अपने मन में कभी बड़ी-बड़ी आशाएँ मत रखना। सदा यही सोचना कि जो जीवन आगे हमको बिताना

है उसमें सुख की अपेक्षा कष्ट ही अधिक होगा और भोग की अपेक्षा त्याग और सेवा की ही उसमें प्रधानता होगी। भावी जीवन की कठिनाइयों के लिए तुम्हें अपना हृदय दृढ़ बनाना चाहिए और उसके लिए तैयार रहना चाहिए। झूठे और रंगीन स्वप्नों का जाल बुनकर उसमें अपने को फँसा लेना आसान तो है पर बाद में जब सपने सपने ही रह जाते हैं या जागरण की ठोकर से टूट जाते हैं तब बड़ा कष्ट होता है। इसलिए कल्पनाओं पर भी संयम रखना चाहिए और अपने को छुई-मुई नहीं बना लेना चाहिए।

: २ :

विवाह और उसका उद्देश्य

अजमेर
६. १०. ३०.

बहिन भगवती,

तुमको इसके पहले विवाह के सम्बन्ध में एक पत्र लिख चुका हूँ। उससे तुम्हें इस बात का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो गया होगा कि तुम्हें अब एक बिल्कुल ही नये प्रकार के जीवन के लिए तैयारी करनी है और उसी जीवन के सुख-दुःख पर तुम्हारा भविष्य निर्भर है!

इसके पहले कि तुम अपने मन से कुछ कल्पना कर लो, मैं तुम्हें इस सम्बन्ध की सारी बातें, थोड़े में, समझा देना चाहता हूँ। सबसे पहली बात यह है कि विवाह की आवश्यकता क्यों है और वह क्या चीज़ है? यह ठीक है कि अपने मन और शरीर को सब प्रकार से पवित्र और शुद्ध रखकर जीवन को सच्ची विद्या प्राप्त करने में लगा देना और उसकी सहायता से समाज की, मनुष्य जाति की सेवा करना एक बड़ा भारी उद्देश्य और कार्य है; पर समाज ठीक तरह से चलाने के लिए प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जीवन में आश्रय और सहायता की ज़रूरत पड़ती है। जीवन में हम अकेले नहीं रह सकते। हम जो कुछ करना चाहते हैं, उसके लिए सदा सहायक और साथी की आवश्यकता पड़ती है।

जीवन-साथी

अब यदि वह सहायक या साथी ऐसा हो कि ज़िन्दगी भर दोनों का सहयोग बना रहे, दोनों के मन मिल जायँ और दोनों के सुख-दुःख एक हो जायँ तो एक-दूसरे से उन्हें बहुत अधिक उत्साह और सन्तोष प्राप्त होगा। जीवन में विवाह की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि पुरुष को एक रोटी बनानेवाली और सेवा करनेवाली की ज़रूरत पड़ती है और स्त्री को विवाहिता होकर रहे बिना स्वर्ग नहीं मिल सकता; बल्कि विवाह की ज़रूरत इसलिए है कि उसके द्वारा स्त्री-पुरुष दोनों ऐसे साथी पा जाते हैं, जिनका साथ मृत्यु तक बना रहता है और जिनके स्वार्थ, जिनका सुख-दुःख जिनका हृदय मिलकर एक हो जाने की सम्भावना की जा सकती है। जिसको जीवन में ऐसा साथी प्राप्त हो गया है जो उसके स्नेह को, सुख-दुःख को, हृदय से समझता और अनुभव करता है; जिसे एक ऐसे मित्र का या एक ऐसी बहिन का या एक ऐसे भाई का वह सच्चा स्नेह प्राप्त है जिसमें दोनों का हृदय मिल गया है, जिसमें एक का दुःख देखकर दूसरा तड़पने लगता है और सोचता है कि मैं स्वयं इसके बदले कष्ट उठाकर कैसे इसके दुःख को दूर कर सकता हूँ; जहाँ एक को सुखी देखकर दूसरा सन्तोष की साँस लेता है और अपने को सुखी समझता है, वहाँ निश्चय ही विवाह की आवश्यकता, मेरी समझ से, नहीं है। जीवन में विवाह की सबसे बड़ी ज़रूरत अपना एक सच्चा साथी ढूँढ़ने के लिए है। और जिसे वह साथी मिल गया है, उसे विवाह की कोई वैसी ज़रूरत नहीं है।

किन्तु बिना विवाह किये सब को इस प्रकार का साथी मिल जाना कठिन, प्रायः असम्भव, है। मान लो, किसी लड़की को एक ऐसा प्रेममय मित्र या भाई मिल गया, जो उसे बहुत स्नेह करता है। दोनों एक दूसरे के सुख-दुःख को ही अपना सुख-दुःख समझते हैं। उस भाई के माता-पिता ने उसका विवाह कर दिया, उसकी स्त्री आ गई और उसके प्रति उसकी ज़िम्मेदारी बढ़ गई। इधर उस लड़की की भी शादी हो गई—या शादी की बात हटा दें तो उसके माँ-बाप उसे लेकर कहीं दूर चले गये—तो दोनों में स्नेह रहते हुए भी, दोनों एक-दूसरे के सुख-दुःख में कुछ भाग नहीं ले सकेंगे। समाज की वर्तमान अवस्था ऐसी है कि सिवा पति-पत्नी के और किसी प्रकार के सम्बन्ध में दो

साथियों का हमेशा एक साथ रहना असम्भव है; साधारणतः विवाह के बिना जीवन में ऐसा साथी प्राप्त नहीं होता जिसे मृत्यु के सिवा दूसरी घटना अलग न कर सके और जिसका सहयोग सदा हमको प्राप्त होता रहे। इसलिए साधारण अवस्था में एक सच्चा जीवन-साथी प्राप्त करने के लिए विवाह ज़रूरी है।

विवाह के और भी कई आर्थिक और शारीरिक कारण हैं, पर मुख्य बात यही है। कुछ यह भी मानते हैं कि जबतक स्त्री माता न हो जाय या पुरुष को सन्तान न हो, वे अपने माता-पिता के ऋण से नहीं छूटते।

दूसरे पहलू

यह तो कोई अच्छी दलील नहीं है, पर हां, यह स्वीकार किया जा सकता है कि समाज की रचना और विकास के लिए सन्तानोत्पत्ति की आवश्यकता है। मातृत्व में स्त्रीत्व की परिणति है। नारी माता होकर समाज को सन्तति का दान करती और उसके जीवन-स्रोत को अक्षुण्ण रखती है। इस रूप में वह समाज के जीवन की संरक्षिणी है।

विवाह एक साथ ही जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह हमें एक स्थायी संगी या साथी प्रदान करता है। यह हमारी वासनाओं को एक ही स्त्री या पुरुष तक सीमित करता है। यह समाज-जीवन के लिए आवश्यक सहयोग एवं आत्मोत्सर्ग के वातावरण को अपने अन्दर पैदा और विकसित करने का मौका हमें देता है।

हम हिन्दुओं के यहाँ विवाह एक धार्मिक संस्कार है। इसका उद्देश्य, दो हृदयों का, दो प्राणों का सच्चा मिलन है। इसके द्वारा प्रत्येक स्त्री-पुरुष को एक दूसरे के लिए त्याग और बलिदान करने की शिक्षा मिलती है। प्रत्येक विवाहित स्त्री का धर्म है कि वह अपनी अपेक्षा अपने पति के, अपने सास-ससुर के, अपने कुटुम्बियों के सुख का ध्यान अधिक रक्खे। वह अपने सुख का पति और कुटुम्ब के लिए बलिदान करती है और उन्हीं के सुख से सुखी होना सीखती है। इससे उसे त्याग और सेवा की, अपनी अपेक्षा दूसरों के सुख का ज़्यादा ख्याल रखने की शिक्षा मिलती है। इसी प्रकार पति पत्नी की रक्षा, सुख-सुविधा तथा उसकी सहायता से माता-पिता एवं कुटुम्बियों की सेवा और उनके पालन में अपनी शक्ति, समय और बुद्धि लगाता है। इस तरह

विवाहित जीवन भोग-विलास और स्वार्थ की अपेक्षा, अपने सच्चे अर्थ में, त्याग-तपस्या, कष्ट-सहिष्णुता और सेवा तथा परोपकार की भावना से मिश्रित परस्परावलम्बन—एक दूसरे की सहायता—का जीवन है। इस दृष्टि से समाज के ऊपर गृहस्थ जीवन के अच्छे-बुरे होने का बड़ा असर पड़ता है।

किन्तु विवाहित जीवन के अच्छे होने के लिए इस बात की ज़रूरत है कि स्त्री सुख के बड़े-बड़े सपने लेकर ससुराल न जाय! वह यह कभी न सोचे कि वहाँ रुपये-पैसे, खाने-पीने का सुख रहेगा; वहाँ मैं कल्पना के सहारे आराम से रहूँगी; सुख और भोग विलास का जीवन बिताऊँगी; अच्छी सास मिलेगी जो मुझे हाथों हाथ रखेगी; नौकर चाकर मिलेंगे; पति का प्रेम प्राप्त होगा। ये सब सपने, ये सब कल्पनाएँ यों सुन्दर हैं पर ये मृगतृष्णा की तरह धोखा देकर निराश और दुखी कर देने वाली हैं। जो इन बड़े-बड़े सपनों को लेकर ससुराल जाती है, उसे बहुत सम्भवतः निराश होना पड़ता है और उसकी नासमझी से उसका जीवन दुःखमय हो जाता है। इस प्रकार की आकांक्षाएँ पैदा करने में पिता-माता और लड़की की सहेलियों का भी काफी हाथ होता है, वे विवाहित जीवन की वास्तविकताओं के लिए लड़की को तैयार करने में उतना रस नहीं लेतीं जितना इस प्रकार की दिल गुदगुदाने वाली कल्पनाओं और सपनों से लड़की का मन उन्मत्त कर देने में लेती हैं।

सच बात यह है कि विवाह होने के बाद तो लड़की का वह लड़कपन का सरल, स्वच्छन्द और स्वतन्त्र जीवन छिन जाता है! उसकी ज़िम्मेदारी, उसका बोझ बढ़ जाता है और जीवन की प्रत्येक घड़ी में अपने सुख के बदले, ससुराल के लोगों के सुख का ज़्यादा ख़याल रखना पड़ता है।

आत्मोत्सर्ग

विवाह होने के बाद मृत्यु तक उसका सारा जीवन कष्ट-सहन, त्याग, सेवा और कर्तव्यपरायणता का जीवन होता है। एक विवाहिता स्त्री फूल की उस कली के समान है, जो एक देवता के चरणों पर चढ़ चुकी हो और अपने हृदय की सारी सुगन्ध को देवता के मन्दिर में बिखराती हुई एक दिन सूख जाय। इसलिए प्रत्येक विवाहित लड़की को

इस तरह का ख़याल कभी न रखना चाहिये कि मुझे विवाह के बाद यह सुख मिलेगा, वह सुख मिलेगा। उसको सदा यह सोचना चाहिए कि किस प्रकार मैं अपने पति को, अपने सास-ससुर इत्यादि को सब तरह से सुखी कर सकती हूँ, कौन काम किस ढङ्ग से किया जाय, कौन बात किस तरह कही जाय कि ससुराल के सब लोग ज्यादा-से-ज्यादा सुखी हों। उसको अपने सुख का ध्यान ही न करना चाहिए और सच्चे हृदय से प्रत्येक समय अनुभव करना चाहिए कि पति इत्यादि सुखी हैं तो मैं भी सुखी हूँ।

मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि माता पिता अथवा अभिभावकों को वर का चुनाव करते समय भौतिक सुविधाओं—धन-धान्य, परिवार इत्यादि का विचार न करना चाहिए। इनका विचार तो उचित ही है। मेरा मतलब केवल यह है कि लड़की का ध्यान इन बातों पर केन्द्रित नहीं करना चाहिए। उसे ये वस्तुएँ स्वाभाविक रूप में प्राप्त हुई तो वह सुखी होगी तथा उनका सदुपयोग करेगी और उनके कारण प्रयत्न एवं कर्तव्य के प्रति असावधान नहीं होगी। यदि उसका ध्यान इन्हीं बातों में केन्द्रित कर दिया गया तो वह कर्तव्यच्युत होकर अन्त में दुखी हो सकती है।

समता का भाव

प्रेममय दाम्पत्य जीवन के लिए यह आवश्यक है कि पत्नी और पति दोनों एक-दूसरे के हृदय को, एक-दूसरे के भावों और विचारों को समझें और सदा एक दूसरे में विश्वास रखते हुए मिलजुल कर काम करें। किन्तु इस विषय में पुरुष बड़े जल्दबाज़, नासमझ और अनुत्तरदायी होते हैं। दुनिया में प्रत्येक पुरुष यह चाहता है कि मेरी पत्नी पूर्णतः पतिव्रता और सीता पार्वती-जैसी हो; वह यह भी चाहता है कि मैं चाहे कैसा ही होऊँ पर मेरी स्त्री मुझे देवता समझे और सदा मुझ पर श्रद्धा रखे और मेरा अनुकरण करे। वह भूल से, पहले से ही समझ लेता है कि मानों पत्नी का प्रेम प्राप्त करने के लिए मुझे कुछ नहीं करना है; वह स्त्री पर स्वभावतः अपना अधिकार समझता है और सोचता है कि मेरी पत्नी का यह धर्म है कि वह हर अवस्था में मेरी बात माने और मेरी प्रशंसा करे—मुझ पर श्रद्धा रक्खे। वह यह भूल जाता है कि मेरी पत्नी भी मनुष्य

है, उसके पास भी मेरे ही जैसा, बल्कि तुमसे भी कोमल, एक हृदय है जो सुख-दुःख अनुभव कर सकता है, जो मेरी ओर से दो मीठे शब्द सुनने के लिए, मेरी सहानुभूति पाने के लिए विकल है। पुरुष ने सदा ग्रहण करना, अधिकार जताना और शासन करना सीखा है। देना, आत्मसमर्पण करना और शासित होना उसने कभी नहीं जाना। इसमें जहाँ पुरुष कठोर, साहसी, हठी, उद्दण्ड और अनम्र हो गया है, वहाँ स्त्री ने बहुत अंशों में अब भी, अपनी कोमलता, सहिष्णुता, दया, क्षमा, प्रेम, सेवा और सन्तोष को कायम रक्खा है। यह एक स्वीकृत सत्य है कि साधारणतः आजकल भी स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा वफादार हैं, उनमें त्याग, बलिदान और आत्मसमर्पण की भावना अब भी बनी है। यदि निष्पक्ष होकर तौला जाय तो आज भी एक साधारण स्त्री के साथ, पवित्रता और आचार की सुन्दरता में, एक साधारण पुरुष तुल नहीं सकता।

स्त्रीत्व का गौरव

इसलिए मेरा तुमको यह उपदेश है कि पति की अपेक्षा सदा तुम्हें अधिक त्याग करने को तैयार रहना चाहिए। पुरुष से स्त्री को कभी अधिक आशा न करनी चाहिए। वह इस विषय में बहुत निकम्मा और क्षुद्र हो गया है। अपने चारों ओर उसने अनेक झूठे प्रलोभनों और कल्पनाओं का जाल बिछा रक्खा है और उसमें खुद ही फँस गया है। इसलिए पुरुषों की बेवफाई और स्वार्थवृत्ति को देखते हुए स्त्रियों से अधिक त्याग के लिए कहना यद्यपि उनके साथ अन्याय है, फिर भी समाज की रक्षा और उन्नति के लिए जरूरी है कि जब पुरुष अपने गौरव को भूल गये हैं, स्त्रियाँ अपने स्त्रीत्व के गौरव और आदर्श को कायम रक्खें।

विवाह के बाद प्रत्येक लड़की को समझना चाहिए कि वह लड़कपन की सुखमय सुनहली स्वतन्त्रता छोड़कर नारीत्व के कठोर शासन में आ गई है। पहले जहाँ उसका जीवन अपने ही तक था, वहाँ अब उसका सुख-दुःख दूसरों के सुख-दुःख से मिल गया है।

इसलिए लड़कियाँ अपने साथ अपने सुख के जितने ही कम सपने लेकर

ससुराल जायँगी, अपने सुख-दुःख के बारे में जितना ही कम सोचेंगी तथा ससुरालवालों के सुख का खयाल रखकर निष्कपट और उदार-हृदय से उनकी सेवा में जितना ही परिश्रम करेंगी, उतनी ही सुखी होंगी।

तुम इन बातों को अच्छी तरह समझ लेना। यदि हम किसी से दो पैसे की आशा रक्खें और हमें एक ही पैसा मिले तो उतना दुःख न होगा, पर यदि हम पहले से ही एक रुपये की आशा मन में बाँध लें और एक ही पैसा मिले तो हमें ज्यादा निराशा होगी और फलतः ज्यादा चोट भी लगेगी। इसलिए यदि पहले से ही बड़ी-बड़ी आशाएँ न करके थोड़ी ही आशा की जाय तो सदा आदमी दुःख से बच सकता है। तुम मेरी इन बातों को मन में अच्छी तरह रक्खोगी तो कठिन अवसरों पर भी बहुत से दुःखों और चिन्ताओं से बच जाओगी।

: ३ :

सुखमय दाम्पत्य जीवन

अजमेर
१०. १०.३०.

चिरं० भगवती,

इसके पहले के दो पत्रों से विवाह के सम्बन्ध में तुम्हें बहुत-सी बातें मालूम हुई होंगी। मोटी-मोटी प्रायः सभी बातें उनमें बताई जा चुकी हैं। उच्चकोटि का दाम्पत्य जीवन कैसे बिताया जा सकता है, इस सम्बन्ध में कुछ चन्द बातें लिखता हूँ।

पति-सम्बन्धी ज्ञान

प्रत्येक विवाहिता कन्या के लिए सबसे पहली ज़रूरी बात यह है कि वह पति को भली प्रकार समझ ले। पति के क्या विचार हैं, उनकी क्या आशाएँ हैं, किन बातों से वे सुखी हो सकते हैं, किन बातों में अधिक रुचि रखते हैं, इन सब पर ध्यान रखना चाहिए। उनमें जो अच्छी बातें हों उनका प्रतिक्षण अनुकरण करने की चेष्टा करनी चाहिए। उनके कार्य में यथासम्भव सहायता करनी

चाहिए। यदि कोई दोष हो तो उससे निराश, उदासीन या क्रुद्ध न होकर, भगवान में विश्वास रखते हुए, अपनी सेवा, अपने प्रेम और अपने सद्भावों के बल पर उसे धीरे-धीरे दूर करने का यत्न करना चाहिए।

जो स्त्री पति को कोई ग़लती करते देख नाराज़ होकर चुप-चाप बैठ रहती है, या झगड़ा कर बैठती है, वह अपने पाँव में आप कुल्हाड़ी मारती है। इससे न उसका काम बनता है, न पति की वह बुराई ही दूर होती है। स्त्री को सदा यह खयाल रखना चाहिए कि हृदय ऐसी चीज़ नहीं जो बाज़ारू चीज़ों की तरह रुपये-पैसे या साधारण प्रलोभनों से ख़रीदा जा सके, न वह ऐसा सस्ता पदार्थ है, जिस पर बिना त्याग, बलिदान और निरन्तर प्रेम के अधिकार मिल जाय। हृदय एक अत्यन्त रहस्यमय वस्तु है। विशेषतः पुरुष का हृदय एक स्थान पर स्थिर न रहनेवाला और बिना कीमत चुकाये सुख प्राप्त करने को लालायित रहनेवाला होता है। इसके विरुद्ध स्त्री का हृदय शान्त, कोमल, लजीला और स्थिर होता है। स्त्री पहले तो बहुत डरती-डरती हृदय को प्रकाशित करती है, हृदय-दान करने में वह पुरुष जितनी जल्दबाज़ नहीं होती, पर एक बार स्नेह करने पर, एक बार हृदय-दान करने पर, वह देती ही जाती है और सब कुछ चढ़ा देती है। स्त्री के लिए स्नेह और प्रेम जीवन-भर की बात है, जब कि पुरुष के लिए वह एक खेल और मन-बहलाव तथा स्त्री को विजय करने, उस पर अधिकार करने का एक साधन-मात्र है। फलतः पुरुष प्रायः ज्यादा दिनों तक अपने प्रेम को क़ायम नहीं रख सकता, बल्कि इसे एक झंझट समझने लगता है। इसलिए स्त्री को पुरुष के दोषों को दूर करने की चेष्टा में बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए।

स्त्री और पुरुष का हृदय

दूसरी बात यह है कि आजकल ज़माना बुरा है। हमारा समाज इतना गिर गया है, हमारे हृदय इतने कलुषित हो गये हैं और हमारा जीवन इतना स्वार्थमय हो गया है कि निर्मूल कल्पनाओं के कारण कितने ही घर चौपट हो जाते हैं। अभी बहुत दिन नहीं हुए, जब एक शिक्षित पति ने अपनी पत्नी की हत्या

अविश्वास का परिणाम

इसलिए कर डाली थी कि उसने उसे अपने एक मित्र के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए देख लिया था। बात असल में यह थी कि पति महोदय मदिरापान और वेश्यागमन में फँस गये थे। उनके एक घनिष्ट मित्र से, जो उनके घर प्रायः आया-जाया करते थे, उनकी पत्नी रोती और बार-बार सहायता के लिए याचना करती थी। उनके मित्र अवस्था में उनसे छोटे थे और अपने मित्र की पत्नी को अत्यन्त पूज्य मातृ-भाव से देखते थे। एक दिन वह कोई उपयुक्त उपाय सोचकर अपने मित्र की रक्षा और सुधार के लिए विदा ले रहे थे कि पति महोदय कहीं से आ गये और अपनी स्त्री को उनके कन्धे पर हाथ रक्खे देख दूर ही से चुपचाप लौट गये। उन बेचारों को पता भी न चला। स्त्री अत्यन्त पतिव्रता और स्वामी की मंगल-कामना में दिन-रात बितानेवाली थी, पर बिना समझे-बूझे पति ने रात में सोते समय उसकी हत्या कर डाली। पीछे उसके बिस्तर के नीचे उनके मित्र का एक पत्र मिला जो उनकी पत्नी के नाम लिखा गया था। इस पत्र का आरम्भ यों था—

"आदरणीया मातेश्वरी........"

इसे पढ़ कर पति की आँखें भर आईं। फूट-फूट कर रोने लगे; पर अब क्या हो सकता था? पीछे इन्हें भी फाँसी हो गई!

क्या स्त्री केवल भोग की वस्तु है?

यह तो एक नमूना है। ऐसी अनेक दुर्घटनाएँ हमारे समाज में अविश्वास और हृदय की दुर्बलता के कारण रोज़ हुआ करती हैं। हमने स्त्रियों को केवल भोग-विलास की सामग्री समझ रक्खा है; इसलिए हमारा हृदय इतना विषमय हो गया है कि स्त्री और एक पुरुष को बात-चीत करते देख तुरन्त हमारे मन में अनुचित और बुरी शङ्काएँ उठ खड़ी होती हैं। हालत यहाँ तक खराब हो गई है कि यदि सड़क पर कोई भाई अपनी किसी सुन्दरी बहिन के साथ कहीं जा रहा हो तो नीच पुरुष यही सोचते हैं कि न जाने इन दोनों में क्या सम्बन्ध है? इस विषैले वातावरण का असर यहाँ तक पड़ा है कि अपनी पत्नियों के प्रेम में विश्वास करने वाले कितने ही अच्छे विचार के पति भी अपनी पत्नियों से दूसरे पुरुषों की घनिष्टता को शङ्का की दृष्टि से

देखने लगे हैं। इसी तरह अनेक स्त्रियाँ भी दूसरी स्त्रियों की ओर पति की ममता और स्नेह देखकर जल उठती हैं। मानो वासना-रञ्जन औ शारीरिक सम्बन्ध के अतिरिक्त स्त्री-पुरुष में कोई पवित्र घनिष्ट सम्बन्ध हो ही नहीं सकता।

इस प्रकार की अविचार-मूलक कल्पनाओं के कारण पति-पत्नी के अन्दर प्रायः ग़लतफ़हमी फैलने की आशङ्का रहती है, जिसका फल आगे जाकर बड़ा खराब निकलता है। इसलिए प्रत्येक अवस्था में पति-पत्नी को एक दूसरे में विश्वास रखना चाहिए। इस विश्वास का फल सदा मीठा होगा। दोनों को इस विषय में ऐसा आदर्श क़ायम कर लेना चाहिए कि यदि एक बार कोई ऐसी बात देख भी ले तो यही समझे कि यह आँखों का भ्रम है। जीवन में कितनी ही घटनाएँ ऐसी होती हैं जो ऊपर से देखने में कुछ दूसरी लगती हैं, पर उनके भीतर कुछ दूसरी ही बात छिपी रहती है। इसलिए किसी बात को देखते ही उत्तेजना में कोई निश्चय नहीं कर लेना चाहिए। पति-पत्नी एक दूसरे में सन्देह और शङ्का रखने की जगह, एक दूसरे में विश्वास रक्खें और एक दूसरे को समझने समझाने की कोशिश करते रहें तो वे बहुत-सी ग़लतफ़हमियों और उनसे पैदा होने वाले दुःखों और कठिनाइयों से बच जावेंगे।

जहाँ मैं इतनी बात कह रहा हूँ वहाँ इस ओर भी तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि आज कल ज़माना खराब है। जिस वातावरण में हम पल रहे हैं वह अत्यन्त दूषित हो गया है। आज-कल की शिक्षा में सदाचार का महत्व बहुत घट गया है। स्त्री और पुरुष दोनों में सदाचरण के अंकुश ढीले हो गये हैं। इसलिए स्त्रियों का अन्य पुरुषों से अधिक घनिष्टता रखना और बार-बार, कार्यवश भी, एकान्त में मिलना प्रायः विनाश का कारण होता है। यही नियम पुरुष के लिए भी है। दोनों को अन्य स्त्री-पुरुषों के प्रति अपने व्यवहार में बड़ा संयम रहने की आवश्यकता है।

स्त्री के लिए तीसरी और शायद सब से बड़ी शर्त यह है कि वह मन और शरीर दोनों से पतिव्रता हो। पतिव्रता का अर्थ यह है कि वह सदा अपने पति

का कल्याण और मङ्गल चाहने वाली हो और अपने शरीर को कभी दूसरे पुरुष द्वारा अपवित्र न होने दे । पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष की ओर उसका शारीरिक—वैषयिक झुकाव न हो । पतिव्रता होने का यह मतलब नहीं है कि स्त्री के हृदय में पति के सिवा दूसरे किसी के लिए स्थान ही नहीं हो और न इसका यही अभिप्राय है कि विवाहित स्त्री अपने भाई को, अपने देवरों को या अन्य किसी पुरुष को पवित्र एवं घनिष्ट स्नेह के सम्बन्ध में बाँध नहीं सकती । एक स्त्री पूर्ण पतिव्रता और पतिपरायणा होते हुए भी दूसरे को अपने कोमल हृदय के मधुर के स्नेह से खींच सकती है, पर कितनी सीमा तक इस प्रकार का स्नेह किया जा सकता है, यह सब पति-पत्नी के हृदय की उच्चता, पति की उदारता और दोनों के पारस्परिक विश्वास पर निर्भर है ।

पतिव्रता और सतीत्व

सत् या सतीत्व स्त्री का प्राण है । जो स्त्री इसके महत्व को नहीं समझती वह स्त्रीत्व के आदर्श और रहस्य को भी नहीं समझती । हमारे धर्म-ग्रन्थ सती नारियों के ऊँचे त्याग की कहानियों से भरे हैं । सतीत्व का अर्थ केवल शरीर की पवित्रता नहीं है । पत्नी को मन, शरीर और वचन सबमें पतिव्रता होना चाहिए । वह स्त्री सती या पवित्र नहीं हो सकती, जिसका मन तो पवित्र नहीं, पर वह लोक-लज्जा के भय से अपनी शारीरिक पवित्रता बनाये हुए है ।

पुरुषों की बेवफाई

पहले ज़माने की अपेक्षा आजकल हमारा जीवन बहुत बनावटी हो गया है । शान शौकत, रंग-रूप, चमक-दमक का आकर्षण बढ़ता जाता है । शहरों का जीवन तो खराब हो ही गया है, पर देहात में भी छल-कपट ने अपना घर बना लिया है । जहाँ किसी गाँव के एक घर की बेटी को सब गाँव वाले अपनी बेटी समझते थे, वहाँ समय के प्रभाव से एक ही कुटुम्ब में भी पवित्र सम्बन्ध को बनाये रखना कठिन हो रहा है । इसलिए सीता और सावित्री के समय से आजकल की स्त्रियों के लिए अपनी रक्षा करना अधिक कठिन हो गया है । फिर सीता और सावित्री-जैसी स्त्रियाँ तो अब भी मिल जाती हैं, पर राम और सत्यवान का हममें अभाव-सा हो गया है । हमारा पुरुष-वर्ग बहुत गिर गया है । जहाँ

प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी को पतिव्रता की आदर्श उपस्थित करते देखना चाहता है, वहाँ स्वयं पत्नी-व्रत की बात चलते ही झुँझला उठता है। मानो पुरुष के लिए कहीं कोई नियम-बन्धन और सीमा ही नहीं है। स्त्री को चिता पर धूल में मिलाकर आते ही शादी की बात चलने लगती है और इतनी बेवफ़ाई और निर्लज्जता से मरी हुई पत्नी की याद की जाती है कि आश्चर्य और दुःख होता है। कितने ही सभ्य और शिक्षित तथा सदाचार की महिमा जाननेवाले पुरुष भी अनेक घरेलू कठिनाइयों की आड़ लेकर, अपनी सफ़ाई देते हुए दूसरा विवाह कर लेते हैं, जब स्त्री के विषय में ऐसी बात आते ही शास्त्रों और पुराणों की गाड़ी लाकर सामने खड़ी कर दी जाती है। मेरी समझ में यह स्पष्टतः पुरुषों की कमजोरी है! पति के मर जाने पर पत्नी को जितनी कठिनाइयाँ पड़ती हैं, पत्नी के मर जाने पर साधारणतः पति को उतनी कठिनाइयाँ नहीं पड़ती। इसलिए जब हम दीन-हीन और असहाय विधवा बहिनों से सतीत्व और आजीवन पतिव्रत की आशा कर सकते हैं तो शक्तिमान् और समर्थ पुरुषों को कठिनाइयों की दोहाई देते देख उनपर घृणा और लज्जा आती है! मेरी समझ से अब वह समय आ गया है जब पतिव्रत-धर्म की तरह पत्नीव्रत धर्म को भी विवाह की एक आवश्यक शर्त बना देना चाहिए। जब-तक ऐसा न होगा, स्त्री-पुरुषों का जीवन बहुत ऊंचा नहीं उठ सकता।

फ़िर भी मेरा तुम से, और तुम्हारे रूप में समाज की बहिनों से, यही नम्र निवेदन है कि वे यह देखकर न चलें कि पुरुष कैसे हैं! पुरुष गिर गये हैं, इसलिए उन्हें भी गिर जाना चाहिए, यह कोई तर्क नहीं है। स्त्री समाज का निर्माण करनेवाली है। वह पुरुष की माता है, इसलिए पुरुष के बनने-बिगड़ने से समाज पर उतना असर नहीं पड़ता जितना स्त्री के ऊँचा उठने या नीचे गिरने का पड़ता है! आज पुरुषों ने अपना तेज, अपना गौरव अपना पुरुषत्व खो दिया है तो

बहिन ज्यादा मूल्यवान है!

हमारी माताओं, बहिनों और बहू-बेटियों का कर्तव्य है कि अपने जीवन की पवित्रता कायम रखते हुए, त्याग और बलिदान, अपनी सेवा और कष्ट-सहिष्णुता से हमारे सामने सच्चे नारीत्व का

सच्चे मातृत्व का प्रकाश उपस्थित कर हमें सच्चा रास्ता दिखायें; हम गिरे हुए पुरुषों को भी ऊपर उठायें। यह हमारे लिए कम गौरव की बात नहीं है कि जब पुरुषों ने अपनी लज्जा और अपने गौरव को फाँसी लगा दी है, समाज में कितनी ही बहिनें अपनी आँखों के आँसू और अपनी पवित्रता की आग से उनके पापों को धोकर बहातीं और उनके जीवन को प्रकाशित करती रही हैं। ये बातें मैं एक पुरुष की हैसियत से, पुरुष के प्रतिनिधि की हैसियत से, नहीं कह रहा हूँ। पुरुषों का, स्त्रियों से कुछ कहने का मुँह नहीं रह गया है। उनको पहले अपनी ओर देखना चाहिए; मैं तुम से, तथा तुम्हारे द्वारा अन्य बहिनों से, सतीत्व के महत्व की बात इसलिए कह रहा हूँ कि मैं अपने अभागे भाइयों की तरह अपनी बहिनों को भी नीचे गिरते देख नहीं सकता। मैं जानता हूँ कि पुरुष-हृदय बहुत मलिन हो गया है, फिर भी अपनी बहिनों की ओर देखकर आशा की रेखा चमकती देखता हूँ। उन्हें देखकर विश्वास होता है कि हमारे पास संसार को दिखाने योग्य जो कुछ था, वह सभी नष्ट नहीं हो गया है। उसमें अभी कुछ बचा भी है, जिसे देखकर, जिसकी सहायता से सँभलकर, सम्भव है कि हम बाज़ार में अपनी साख फिर कायम कर सकें। इसलिए जब एक पुरुष को पतित होते देखता हूँ तो क्रोध आता है, पर एक बहिन को गिरते देखता हूँ तो दिल को चोट लगती है। मेरे नज़दीक बहिन भाई से ज्यादा मूल्यवान चीज़ है, इसलिए एक भाई को खोने का दर्द सहा जा सकता है पर, एक बहिन को खोकर संसार सूना-सा अनुभव करता हूँ।

सेवा, स्त्री-जीवन को सुखी बनाने के लिए, चौथी ज़रूरी बात है। केवल पतिव्रता होने से गृहस्थ का काम नहीं चल सकता; उसे मधुर और सुखी बनाने के लिए अथक परिश्रम और सेवा की ज़रूरत पड़ती है।

स्थायी प्यार
स्थायी प्रेम

प्रारम्भ में पति का प्रेम प्राप्त कर लेने के बाद भी आवश्यक कर्तव्य रह जाते हैं। फिर कितनी ही स्त्रियाँ पति की असाधारण अनुरक्ति से भ्रम में पड़ बैठती हैं और सोचती हैं अब क्या, मेरा पति तो मुझे प्राणों से भी अधिक चाहता है। पर जब वह क्षणिक आवेश, वह रूप की प्यास और मोह, शरीर के साथ शिथिल और

नष्ट होने लगता है, तब आँखें खुलती हैं। दुनिया में बहुत थोड़े लोग सच्चा प्रेम करते देखे जाते हैं और उनमें भी कम में सच्चे प्रेम को पहचानने की शक्ति होती है। पर सदा यह समझना चाहिए कि जहाँ इच्छाएँ बढ़ती जा रही हों, जहाँ प्रेम में स्थिरता न हो, जहाँ बहुत जल्द एक-दूसरे में प्राणों से भी अधिक प्रेम करने की बातें होने लगें वहाँ प्रेम नहीं, क्षणिक मोह है और बहुत दिन तक इस पूँजी से दूकान न चलाई जा सकेगी। प्रेम हृदय के एक हो जाने से होता है और इसलिए प्रेम ज्यों-ज्यों शुद्ध और सच्चा होता जाता है, त्यों-त्यों शरीर का खयाल उससे कम होने लगता है। जहाँ भोग-वासना और शारीरिक मिलन की कामना प्रबल रहती है, तहाँ सच्चा और कभी न मिटनेवाला प्रेम पनप नहीं सकता। स्त्री-पुरुष दोनों को यह भलीभाँति गाँठ बाँध लेना चाहिए कि प्रेम का भोजन शरीर-सुख नहीं, हृदय की अनुभूति है। आजकल बाज़ार में प्रेम के नाम पर अत्यन्त दूषित और कलुषित चीज़ें बिकने लगी हैं। शारीरिक आकर्षण और मोह को भूल से, प्रेम का नाम दे दिया गया है। विवाह के बाद पति-पत्नी में इस प्रकार का झूठा 'प्रेम' (जो असल में विषय-भोग का एक प्रवाह मात्र होता है) बहुत देखा जाता है। इसलिए जो पति पत्नी आजन्म स्नेह बनाये रखना चाहें, उन्हें यह समझना चाहिए कि यद्यपि उनका सम्बन्ध बिल्कुल शुद्ध और भाई-बहिन की तरह पवित्र और ऊँचे प्रेम से पूर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें शारीरिक वासना का कुछ भाव रहता ही है, पर वे चाहें तो अपनी वासना को बहुत नियमित करके अपने स्नेह को एक सीमा तक पवित्र बना सकते हैं और शारीरिक मोह को प्रेम में बदल सकते हैं।

सेवा का मेवा

जहाँ पति और पत्नी अपने कर्तव्य को ठीक-ठीक समझते हैं, जहाँ उनके जीवन का उद्देश्य सिर्फ चौके-चूल्हे और भोग-विलास तक ही सीमित नहीं है और वे एक-दूसरे की सहायता से ऊँचा उठना, किसी आदर्श को प्राप्त करना चाहते हैं, वहाँ उनको अधिक-से-अधिक संयम से काम लेना चाहिए।

इस संयम के लिए स्त्री में सेवा की और पुरुष में परोपकार और त्याग

की लगन होनी चाहिए। आजकल कितने ही पति, पत्नी के शारीरिक आकर्षण में पड़कर अपने सामाजिक और घरेलू दोनों प्रकार के कर्त्तव्य भूल जाते हैं; माँ-बाप का अनादर तक करने लगते हैं। यदि माता या घर की कोई और स्त्री उनकी पत्नी से कोई काम करने को कह दे तो वे झुँझला उठते हैं। ऐसे पति वासना और मोह के कारण अपनी पत्नियों की सिर्फ़ भोगविलास की मूर्त्ति और शृङ्गार करके देखते रहने की वस्तु समझते हैं। इसी तरह कितनी ही स्त्रियाँ इतनी अनुदार और ईर्ष्यालु होती हैं कि यदि घर में उनका पति ही कमानेवाला है तो सास-ससुर, देवरों-ननदों इत्यादि को चोट पहुँचाने वाले व्यङ्ग-बाणों से घायल किया करती हैं, जिसका फल कभी-कभी ज़हरीला और दुःखदायी हो जाता है। पति को पत्नी पर और पत्नी को पति पर अपना अधिकार तो ज़रूर समझना चाहिए। पर इस अधिकार का उपयोग अच्छी बातों में होना चाहिए। पत्नी को सदा ख़याल रखना चाहिए कि उसकी सास ने ही उसके पति को जन्म दिया है, उसने उसके पति के लिए अगणित कष्ट सहे हैं; उसका पति जो कुछ है, उसमें उसकी सास का बहुत बड़ा हिस्सा है, इसलिए उसके पति पर उसकी सास का कुछ कम अधिकार नहीं है। यदि पति अच्छा है, तो इसका श्रेय सास को ही है। प्रत्येक विवाहिता लड़की को सदा पति के साथ ही सास-ससुर एवं घर के अन्य लोगों की सुविधा और सेवा का भी ख़याल रखना चाहिए और स्वयं कष्ट सहकर भी उन्हें सुख पहुँचाने का यत्न करना चाहिए।

निःस्वार्थ सेवा और प्रेममय हृदय से बढ़कर मनुष्य को ऊँचा उठाने वाली दूसरी चीज़ दुनिया में नहीं है। जो स्त्री जीवन का सच्चा सुख चाहती हो उसे कभी आलस्य न करना चाहिए और सदा, यथासम्भव, घर को सुधारने, छोटे-बड़ों की सेवा करने में लगा रहना चाहिए। भूल से, बहुत से लोग सेवा को दासता का चिह्न और एक बुरी चीज़ समझते हैं पर सेवा कोई बुरी वस्तु नहीं है। हाँ, उसका ढंग अच्छा या बुरा हो सकता है। जिस सेवा में अपने लाभ या स्वार्थ का भाव जितना ही कम होता है, वह उतनी ही ऊँची समझी जाती

ग़लत धारणा

है। इससे हम दूसरों की सहायता तो करते ही हैं, अपने मन को भी निर्मल बनाते हैं। झूठा अहंकार और आलस्य हमारे पास नहीं फटकने पाते और शरीर का उपयोग अच्छे काम में होता है। इसके अतिरिक्त सच्ची और प्रेम-मय सेवा से हम विरोधी के हृदय में भी स्थान पा सकते हैं और उसके हृदय से भी ईर्ष्या-द्वेष और जलन दूर करके उसे भी अपने साथ ऊपर उठा सकते हैं।

हिन्दू स्त्रियों को सेवा का उपदेश देना व्यर्थ है। उनका सारा जीवन ही सेवा और त्याग का जीवन होता है, पर इतनी बात लिखने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि सेवा करते हुए बहुत स्त्रियाँ, अपने को दुखी और दासी के रूप में अनुभव करती हैं, इसलिए उनकी सेवा का जो मधुर परिणाम होना चाहिए, नहीं होता। मन में खीझकर सेवा करने से लाभ के बदले उलटे हानि होती है। इस प्रकार की सेवा, सेवा नहीं, वस्तुतः अपने प्रति प्रतिहिंसा है। इसके मूल में अहङ्कार और क्रोध होता है। सेवा का स्रोत अपने कर्तव्य का ज्ञान एवं दूसरों के प्रति गहरी सहानुभूति है। इसलिए तुमको, और अन्य बहिनों को, अच्छी तरह समझना चाहिए कि सेवा बड़ी ऊँची और कल्याण-कर वस्तु है और इससे चाहे दूसरे प्रसन्न न भी हों तो भी स्वयं अपना हृदय बहुत शुद्ध और निर्मल हो जाता है।

इस पत्र में दाम्पत्य जीवन की मुख्य-मुख्य बातें मैंने लिख दी हैं। कुछ व्यावहारिक बातें, जो अभी लिखनी रह गई हैं, अगले पत्रों में लिखूँगा।

: ४ :

पुरुष-हृदय का रहस्य

अजमेर
१४-१०-३०

चिरं० भगवती,

पिछले पत्रों में विवाहित जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बहुत-सी बातें मैं तुम्हें लिख चुका हूँ। उनको जानने, समझने और उनके अनुसार चलने

से भावी जीवन की तुम्हारी कितनी ही कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी किन्तु उनके साथ ही प्रत्येक स्त्री को यह भी जानना चाहिए कि पुरुषों और स्त्रियों के हृदय और स्वभाव में अन्तर है।

अधिकारप्रिय पुरुष

मैंने लिखा था कि पुरुष अधिकार चाहता है; शासन करने, आज्ञा देने की उसकी आदत है इसलिए वह हर अवस्था में शासन करना और इस प्रकार अपने मन में भरे हुए अभिमान की भूख मिटाना चाहता है। चाहे कितने ही सुधरे विचार का, कितना ही उदार पुरुष हो वह सदा यह चाहता है कि स्त्री उसकी आज्ञा माने, उसकी इच्छाओं के पीछे चले। बहुत से पुरुष इसे अस्वीकार करेंगे और अपनी पत्नियों से कहेंगे कि 'यह तो मेरी इच्छा है पर तुम ठीक न समझो तो जाने दो।' किन्तु यह कहनेवाला पुरुष भी मन में यही चाहता है कि स्त्री उससे कहे कि 'नहीं, मेरी इच्छा क्या! जो आपकी इच्छा वही मेरी इच्छा है।' यदि स्त्री मतभेद ही प्रकट करके रह जाय और कहे कि 'मेरा तो यह मत है किन्तु आपकी बात मानना मेरा धर्म है' तो पुरुष के गर्व की भूख मिट जाती है; वह सोचता है कि मेरी स्त्री सम्पूर्णतः मेरे अधिकार को मानती है। बस उसका अहङ्कार तृप्त हो जाता है। स्त्री जिस बात को ठीक समझती है, उसी को करती जाय, तो जो पुरुष स्त्रियों की स्वतंत्रता और बराबरी के अधिकार को मानता है, वह भी मन में असन्तोष अनुभव करेगा।

अन्तर !

जहाँ स्त्री से पुरुष सदा अपने पीछे चलने की आशा रखता है, वहाँ वह स्वयं मतभेद होने पर स्त्री की बात मानकर चलने को तैयार नहीं होता। वह हर अवस्था में यही चाहता है कि उसी की बात मानी जाय। मैंने अनेक ऐसी स्त्रियों को देखा है, जिन्होंने अपने अस्तित्व को, अपने विचारों को और अपनी इच्छाओं को पतियों की इच्छाओं पर बलिदान कर दिया, किन्तु अभी तक ऐसा पुरुष नहीं देखा जिसने मतभेद होने पर जीवन की अपनी खास धारणाओं और सिद्धान्तों को पत्नी की इच्छा और सम्मति पर बलिदान कर दिया हो। यदि कहीं दो-एक ऐसे उदाहरण मिलते भी हैं तो उनमें शारीरिक भोग-विलास

और यौवन-उन्माद की प्रधानता होती है। पुरुष सदा यह चाहता है कि उसका अधिकार माना जाय, जो वह कहे वही हो पर वह खुद अपने ऊपर अधिकार नहीं देना चाहता। वह बन्धन में रखना जानता है, पर बन्धन में रहना उसने नहीं सीखा। उसके स्वभाव में लेना ही लेना है, देना नहीं।

ऐसा नहीं कि पुरुष स्नेह करना ही नहीं। वह स्नेह करने लगता है तो बहुत शीघ्र पागल हो जाता है; देर उसे असह्य हो जाती है। वह स्नेह के लिए प्राण दे सकता है, पर स्त्री की तरह जीवन-भर धीरे-धीरे, तिल-तिल जलना उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। वह एक बार सब कुछ त्याग सकता है पर उस सब को धीरे-धीरे, जन्म भर, दान करते रहना और अन्त तक पूरी तरह और पहले की भाँति वफ़ादार बना रहना उसके लिए कठिन है। वह सदा झंझट से बचा रहना चाहता है और इसके लिए बुद्धि और सिद्धान्त की आड़ में कई बार ऐसे बहाने ढूँढ़ता है कि भोली स्त्री को उसके साथ चलना ही पड़ता है। सन्तान के सम्बन्ध में न्यायतः माता-पिता दोनों की जिम्मेदारी बराबर ही है किन्तु व्यवहारतः पुरुष उस 'झगड़े' को स्त्री पर छोड़ देता है। अपने बच्चे को देखकर वह प्रसन्नता प्रकट करता है; वह चाहता है कि मेरे आते ही मेरा बच्चा प्रिय सम्बोधनों से पुकारता हुआ, दौड़कर मेरी गोद में आजाय, पर यदि माता यह चाहे कि चार-छः महीने पिता बच्चे को सम्हाले तो पिता इसके लिए कभी प्रसन्नता-पूर्वक तैयार न होगा। वह दाई या नौकरानी रख सकता है, पर स्वयं इस 'झंझट' में नहीं फँसेगा। इसका कारण कुछ हद तक तो यह है कि उसे जीविकोपार्जन के कार्य में अधिक समय तक घर के बाहर रहना पड़ता है। पर इसके साथ इस प्रकार की झंझटों से दूर रहने की उसकी इच्छा भी एक मुख्य कारण है। पुरुष प्रायः घरेलू जीवन की जिम्मेदारियों और बन्धनों से उदासीन रहता है, पर वही पुरुष यह भी चाहता है कि स्त्री उन्हीं बन्धनों में जीवन के सुख का अनुभव करे। यह कैसी विचित्र बात है!

पुरुष की प्रकृति केन्द्रापसारी है अर्थात् वह अपने को, अपने अस्तित्व को विस्तृत करना—फैलाना चाहता है। वह बाहरी जीवन का, बाहरी संसार का

प्रेमी है; एक को स्नेह करके उसी के लिए जीवन उत्सर्ग कर देना और दुनिया की अन्य बातों का ख़याल न करना—यह बहुत ही कम पुरुषों के लिए सम्भव है। जीवन में उसका कार्य-विभाग ही कुछ ऐसा है कि ऐसा करके वह टिक नहीं सकता—न यह उसके लिए बहुत उचित ही कहा जायगा। पुरुष केवल यह नहीं चाहता कि उसकी स्त्री उससे स्नेह करती रहे; वह यह भी चाहता है कि उसकी स्त्री उसके प्रति अपने स्नेह को बार-बार प्रकट करती रहे। वह पत्नी के चुपचाप शान्त और मधुर भाव से स्नेह करने से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता, वह चाहता है कि पत्नी आकर उससे कहे—"प्राणनाथ, तुम्हारे प्रेम में मेरी बुरी दशा है; मुझे तुम्हारे न रहने पर खाना-पीना कुछ अच्छा नहीं लगता।" वह प्रेम भी चाहता है और उस प्रेम का प्रकाशन—विज्ञापन भी चाहता है। बिना इसके चुपचाप प्रेम के अमृत को पीकर तृप्त हो जाने वाला प्राणी वह नहीं है। यह तो स्त्री ही है जो भीतर के 'अनबोलते' (मूक) को पाकर ही तृप्त हो जाती है।

दूसरी बात यह है कि पुरुष यद्यपि अपने को स्त्री का रक्षक और स्वामी समझता और अनुभव करता है, फिर भी वह चाहता है कि मेरी स्त्री सेवा एवं देख-रेख इस तरह करे और मेरा इस तरह ख्याल आश्रय की आकांक्षा रक्खे जैसे वह अपने बच्चे का रखती है या रख सकती है! यह बात केवल पति-पत्नी के लिए ही नहीं है। पुरुष जिस रूप में भी किसी स्त्री को स्नेह करे—फिर चाहे वह बहिन हो, पुत्री हो—वह सदा उससे ऐसा आशा रखता है। वह चाहता है कि जैसे माँ बच्चे की बीमारी में क्षण भर उसे नहीं छोड़ती; जैसे वह उसके लिए तड़पने लगती है, वैसे ही जिस स्त्री को मैं स्नेह करता हूँ और जिसके साथ अपनेपन का अनुभव करता हूँ, वह भी मेरे दुःख-दर्द में माता के समान मेरी सेवा करे, मुझे अपने आश्रय और छाया से अलग न करे, मेरी ज़रूरतों का, मेरी सुविधाओं का वह उसी तरह ख्याल रक्खे जैसे माँ बच्चे का रखती है। स्त्री-पुरुष में किसी तरह का स्नेह-सम्बन्ध हो, पुरुष स्त्री पर ही अपनी सुविधाओं की जिम्मेदारी डालना चाहता है; वह इस मामले में उसपर पूर्णतः निर्भर करता है। वह यह नहीं

चाहता कि अपने कपड़े-लत्ते की खबर मुझे रखनी पड़े, वह यह भी नहीं चाहता कि मुझे खाने-पीने के लिए स्त्री को हिदायत करनी पड़े। वह चाहता है कि स्त्री उसे खिलावे-पिलावे, उसके साथ हँसे-बोले, दुःख में हाथ में हाथ लेकर धीरज दे और कहे कि 'तुम घबड़ाओ मत, भगवान् जो करेंगे, अच्छा ही होगा। तुम दिल छोटा मत करो। जब तुम्हीं हिम्मत हारोगे तो हम लोगों की क्या हालत होगी?' हर एक पुरुष चाहता है कि वह बीमार पड़े तो उसकी स्त्री पास बैठी रहे और कहने पर भी न उठे; अपने तन-बदन की सुधि भूलकर सेवा करे। बीमार पुरुष स्त्री से कहता है कि 'जाओ भोजन करो, नहीं देर हो जायगी और तुम भी बीमार पड़ोगी तो मुझे और दुःख होगा; तबीयत और खराब होगी।' किन्तु स्त्री यदि तुरन्त उसकी बात मानकर वहाँ से चली जाय तो उसे उतना सुख और सन्तोष अनुभव न होगा जितना उस अवस्था में होगा जब स्त्री कहे "जाती हूँ, तुम्हें ज़रा नींद आ जाय तो चली जाऊँगी।" या "हाँ जाती हूँ, पर भोजन करने की ओर रुचि नहीं होती। जब तुम पड़े हो तो मैं खाकर क्या करूँगी या मुझे खाना क्योंकर अच्छा लगेगा?" इन बातों को सुनकर पुरुष का हृदय खिल उठता है और वह सन्तोष की साँस लेता है। ज़रा भी बीमारी में, ज़रा भी कष्ट में, पुरुष अभाव का अनुभव करता है और उस स्नेह के लिए तड़पने लगता है जो बच्चे का माँ के प्रति होता है। तुमने देखा होगा कि जब हम लोग बीमार पड़ते हैं तो अनायास माँ की याद आ जाती है और कई बार उसे उसकी अनुपस्थिति में भी पुकारने लगते हैं। इसका कारण आदमी के अन्दर बनी हुई बचपन की स्मृति है। स्त्रियों को पुरुषों के प्रति इस अभाव का इतना अनुभव नहीं हो सकता क्योंकि स्त्री की माता तो स्वयं स्त्री ही है, पुरुष नहीं; पर पुरुष हर हालत में स्त्री का ही पुत्र है, उसी के पेट से उत्पन्न हुआ है; इसलिए स्वभावतः स्त्री को पाने के लिए, उसके अभाव में, उसका हृदय, मातृहीन बालक के समान, तड़पने लगता है। जब बचपन में बच्चे को ज़रा-सी चोट लग जाती है, जब वह ज़रा-सी बात के लिए रोने लगता है, तो माँ के लिए उसकी वह ज़रा-सी पीड़ा भी असह्य हो जाती है, वह बच्चे को गोद में चिपटा लेती और उसका मुख चूमकर उसे सान्त्वना देती है। जब पुरुष

बड़ा हो जाता है, जब वह विवाहित होकर गृहस्थ-धर्म के बन्धन में बँध जाता है, तो माता की अपेक्षा पत्नी पर अधिक निर्भर करता है; इसलिए बचपन में जो आशा उसे माँ से होती है वह विवाहित जीवन में, ज़रा बदले हुए रूप में, पत्नी से होती है। पुरुष स्त्री को प्रेम प्रकाशित करते देखने के लिए इतना अधीर होता है कि ज़रा-सा सिर दर्द होने पर यदि वह अपनी स्त्री को व्याकुल न देखे, या ऐसे रूप में न पाये मानो दर्द स्त्री को ही हो रहा है तो समझेगा कि स्त्री बिलकुल पत्थर का दिल रखती है।

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ, यह बात विवाहित पुरुषों के लिए ही नहीं है। पुरुष चाहे विवाहित हो या अविवाहित, जिस स्त्री को वह अधिक स्नेह या आदर या श्रद्धा करता होगा कोई शारीरिक या मानसिक कष्ट उपस्थित होने पर यही आशा रखता है कि वह माँ के समान मेरी सेवा-शुश्रूषा करेगी; मुझे धीरज देगी और मेरे दुःख में हाथ बटायेगी।

यह यों भी साधारण समझ की बात है कि जिसे हम स्नेह करते हैं या जिसको *अपना* समझते हैं, दुःख या कष्ट में उसकी याद पहले आती है। इसलिए सेवा करने में पति का भी बच्चे के समान ही ध्यान रखना चाहिए और अच्छा काम करने पर उसकी प्रशंसा करनी चाहिए; कष्ट या दुःख में होने पर उसको धीरज देना चाहिए।

तीसरी बात यह है कि प्रत्येक पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसमें श्रद्धा रक्खे और उसे देवता समझे। यद्यपि पुरुष इस बात को स्वीकार न करेंगे और कितने ही अपनी पत्नियों से उनकी योग्यता एवं शील की प्रायः प्रशंसा करके यहाँ तक कह देते हैं कि मेरे जीवन में इतना सुख और शान्ति तुम्हारे ही कारण है, पर सच्ची बात तो यह है कि प्रत्येक पुरुष मन में यह समझता है कि उसने अपनी स्त्री पर बड़ी कृपा की है जो उससे विवाह करके उसे अपने घर की मालकिन बना दिया है। वह चाहता है कि उसकी स्त्री इस बात को अनुभव करे और सम्भव हो तो कभी-कभी कहे भी कि "ईश्वर का धन्यवाद है कि उसने मुझ दासी को तुम्हारे चरणों में स्थान दिया। तुम्हारे साथ मेरा

देवता के रूप में

जीवन धन्य हुआ है।" पति सोचता है कि मैंने विवाह करके अपने ऊपर बड़ी झंझट मोल ली है और इतना पत्नी के ही लिए किया है, इसलिए इस उपकार से पत्नी कभी उऋण नहीं हो सकती।

इस विचार के कारण पति यही चाहता है कि स्त्री मुझे देवता समझे; उसके रोम-रोम से मेरी प्रशंसा निकले; वह यह विश्वास दिलाती रहे कि उसकी दृष्टि में मैं एक महान् पुरुष हूँ और मुझे पाकर वह पूर्णतः सन्तुष्ट है, तथा मुझसे अधिक समर्थ एवं योग्य पुरुषों को देखकर भी कभी यह नहीं सोचती कि मेरा विवाह और अच्छे पुरुष के साथ क्यों न हुआ। यह भाव भी उस अहङ्कार का परिणाम है जो स्त्री पर अपना अधिकार और प्रभुत्व रखने के कारण प्रत्येक पुरुष के अन्दर होता है। प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक पति, पत्नी द्वारा अपनी बहुत बढ़ाकर की जानेवाली प्रशंसा या प्रशंसापूर्ण सम्बोधनों से सन्तोष और प्रसन्नता का अनुभव करता है। वह चाहता है कि स्त्री उसे जीवन में अपना सर्वस्व समझे; वह उसे ही अपना ईश्वर, अपना देवता माने।

यद्यपि मैं इस बात में विश्वास नहीं रखता कि पति ही पत्नी के लिए ईश्वर है और दूसरे किसी देवता या ईश्वर की कल्पना करने की जरूरत उसके लिए नहीं है, फिर भी अभी हमारे समाज में, शिक्षा और विवेक की कमी के कारण, ऐसी अवस्था उत्पन्न नहीं हुई है कि हम इस धारणा के—इस विचार के विरुद्ध विद्रोह करें। इससे स्त्रियों का ही हानि की सम्भावना अधिक है क्योंकि वे असहाय एवं अशक्त हैं, तथा पति पर ही सब अवस्था में निर्भर करती हैं। इसलिए सुख की इच्छा रखनेवाली पतिव्रता बहिनों को पति के अन्दर श्रद्धा रखना और उसके साथ रहने में सन्तोष का अनुभव करना चाहिए।

चौथी बात यह है कि प्रत्येक पुरुष चाहता है कि उसकी स्त्री उन्हीं चीज़ोंको पसन्द करे जो उसे अच्छी लगती हैं; जो लोग उसके प्रिय हैं वे उसकी स्त्री के प्रिय हों। पुरुष चाहता है कि स्त्री मुझे घर की कठिनाइयों से तो मुक्त रक्खे ही पर घरबार सम्हालते हुए मेरे दुःखों और कठिनाइयों में भी भाग ले; मेरे बाहर के कामों के बारे में उत्साह प्रकट करती रहे। जैसे किसी का पति देश-

स्त्री मित्र के रूप में

सेवक है तो वह चाहता है कि मेरी स्त्री भी, अगर राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग न ले सके तो कम से कम, मेरे कामों की ओर निगाह रक्खे; और मेरा अनुसरण करने के लिए तैयार रहे। इसलिए स्वयं दुःख और कष्ट उठा कर भी स्त्री को पति के अच्छे कामों का अनुसरण करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

स्त्री का हिस्सा

पुरुष विवाह करके अपनी स्त्री को अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार करता है। आधे अंग का काम पूरा करना स्त्री का परम धर्म है। स्त्री के हिस्से में जो काम आते हैं उनमें घर का सम्हालना मुख्य है। पति के लिए सुख-शान्तिमय घर तैयार करना उसका कर्त्तव्य है और उसका बहुत-सा सुख-दुःख इसी बात पर निर्भर करता है। अनेक स्त्रियाँ जीवन में घर का महत्व नहीं समझतीं। स्त्री को समझना चाहिए कि पति के हृदय की सुख-शान्ति बहुत कुछ घर के वातावरण पर निर्भर है। पुरुष-हृदय चञ्चल और अस्थिर है। जब घरेलू झगड़ों और अशान्ति के कारण वह उद्विग्न हो जाता है तो कभी-कभी बड़े भयानक काम कर डालता है, अथवा घर एवं पत्नी से भीतर ही भीतर उदासीन और विरक्त होता जाता है। तब वह घर से बाहर के लोगों की सहानुभूति खोजता फिरता है। यहीं से स्त्री के सोहाग का सर्वनाश होने लगता है। इसलिए जो चतुर स्त्री है, वह पति के लिए सदा सुखमय परिस्थिति तैयार करती है। पुरुष यह चाहता है कि घर उसके लिए आराम की जगह हो, जहाँ जाकर वह संसार की चिन्ताओं और कष्टों से क्षण भर के लिए छुटकारा पा सके। जो स्त्री अपने दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाना चाहे वह सदा घर को ईर्ष्या-द्वेष और झगड़ों से मुक्त रक्खे और यदि साधारण झगड़े खड़े हो जायँ तो अपनी सहनशीलता और मृदु स्वभाव से उनका अन्त करदे। इससे कठिनाइयाँ कम हो जाती हैं।

: ५ :

स्त्री-हृदय का रहस्य

अजमेर

१७-१०-३०

प्रिय भगवती,

पिछले पत्र में मैंने तुम्हें यह लिखा था कि पुरुष और स्त्री के हृदय में भिन्नता होती है और यह भी बताया था कि पुरुष का हृदय स्त्रियों से क्या चाहता है और क्या करने से स्त्री पुरुष को सन्तुष्ट रख सकती है। इस पत्र में मैं यह लिखना चाहता हूँ कि स्त्री क्या चाहती है और उसके हृदय की भावनाएँ किस तरह काम करती हैं।

मेरी यह ढिठाई है। मैं, एक पुरुष, जिसके पास इस सम्बन्ध में बहुत कम अनुभव है, स्त्री-हृदय के बारे में कलम उठावे, यह निस्सन्देह कुछ समझ में आ सकने योग्य बात नहीं है। किन्तु मैंने अपने विवाहित मित्रों से एवं अपनी कई विवाहिता बहिनों से इस विषय में जो कुछ जानकारी प्राप्त की है, उसे तुम तक पहुँचा देना मेरा कर्तव्य है। मेरे पास जो है, वही मैं तुम्हें दे सकता हूँ। फिर स्त्री का एकमात्र पत्नी ही रूप तो नहीं है। उनमें अविवाहित भी हैं; विधवा भी हैं। इसी प्रकार माताएँ भी हैं, बहनें भी हैं और बेटियाँ भी हैं। इसलिए जब मैं स्त्री-हृदय के रहस्य तुम्हें बताने चला हूँ तो केवल विवाहिता स्त्रियों के हृदय की चर्चा करना मेरा उद्देश्य नहीं है; मैं सभी प्रकार की स्त्रियों की बात कर रहा हूँ। विवाहित-अविवाहित की आकांक्षाओं के प्रकाशन में भेद हो सकता है, पर मूल भावनाएँ बहुत कम बदलती हैं।

यह ठीक है और इसे मैं आरम्भ से ही स्वीकार कर लेना चाहता हूँ कि स्त्री-हृदय को जानना और समझ लेना पुरुष-हृदय को जानने के समान सरल नहीं है। सभ्यता के आरम्भकाल से ही स्त्री एक बहुत गूढ़ और रहस्यपूर्ण वस्तु रही है। लेखकों, कवियों और विचारकों ने उसकी इस गूढ़ता को कम नहीं किया, बढ़ाया ही है। इतने दिनों के अनुभव के बाद भी उसके बारे में

स्त्री-जाति की गूढ़ता

लोगों में बहुत मत-भेद है। इसका कारण यह है कि स्त्री का हृदय बहुत सङ्कोचशील होता है। जहाँ पुरुष बाह्य का, बाहरी संसार का, प्रेमी है वहाँ स्त्री अन्तर की, आन्तरिक संसार की, प्रेमिका है। पुरुष के पास जो कुछ है, उसका वह विज्ञापन, प्रकाशन चाहता है—दुनिया भर पर छा जाना चाहता है। स्त्री के पास जो कुछ होता है, उसे वह अपने ही अन्दर छिपाकर रखना चाहती है। इसलिए पुरुष जहाँ जल्द पहचान लिया जाता है, तहाँ स्त्री, अपने को छिपाकर रखने के कारण, देर में पहचानी जाती है या उसको पहचानने में पुरुष प्रायः ग़लती कर जाता है। कितनी ही स्त्रियाँ ऐसी हैं जो अपने पतियों को देवता मानती हैं, पूर्ण पतिव्रता हैं और हृदय से स्नेह करती हैं, पर स्वभाव, संस्कार, लज्जा और कौटुम्बिक परिस्थिति के कारण अपने प्रेम को लम्बी-चौड़ी बातों और पुरुष को प्रिय लगनेवाले प्रशंसात्मक वाक्यों में प्रकट नहीं कर सकतीं। यहाँ तक कि कई बार पुरुष का उतावला और अधीर हृदय, ग़लती से, कुछ का कुछ समझ बैठता है।

स्त्री और पुरुष

पुरुष समझता है कि विवाह करते ही मैं स्त्री के सर्वस्व का स्वामी हो गया। इसलिए उसके पास जो कुछ है, वह सब अविलम्ब मुझ पर प्रकट कर दे या सौंप दे। यह पुरुष की, विवाहित जीवन में, स्त्री के सम्बन्ध में सबसे बड़ी मनोवैज्ञानिक भूल है। स्त्री के पास, उसके अन्दर, उसके हृदय में, जो कुछ होता है उसी पूँजी से उसे जन्मभर अपना काम चलाना पड़ता है। एक-मात्र पति के साथ ही बँध जाने के कारण उसका ध्यान संसार की अन्य वस्तुओं से हटकर एक पुरुष में केन्द्रित हो जाता है; वह पुरुष ही उसका सर्वस्व हो उठता है; इसलिए जन्मभर उस पुरुष में ही अपने जीवन के सुख को अनुभव करने का प्रयत्न स्त्री को करना पड़ता है। यदि स्त्री अपने हृदय की ममता, प्रेम और सहानुभूति को, पुरुष के उतावलेपन को सन्तुष्ट करने के लिए, अपने जीवन की यात्रा के आरम्भ में ही दान कर दे या प्रकाशित कर दे, तो आगे वह कैसे अपना रास्ता तय कर सकेगी? पुरुष के लिए संसार में आकर्षण की ध्यान देने की, बहुत-सी चीजें हैं। जो पुरुष सदाचारी है, अपनी

पत्नी को हृदय से प्रेम करता है, वह भी केवल स्त्री के स्नेह पर ही जीवित नहीं रह सकता; उसे दुनिया में और भी काम हैं। प्रेम उसके जीवन के कार्य-क्रम का एक हिस्सा है; उसके लिए वह अन्य सब कामों का त्याग नहीं कर सकता। स्त्री के लिए ऐसी कोई बात नहीं। उसके लिए प्रेम ही सब कुछ है। प्रेम उसके लिए जीवन है। पति का, या जिसे वह स्नेह करती हो उसका, प्रेम प्राप्त किये बिना, या स्वयं उसके प्रेम में अपने को बलिदान किये बिना, कोई स्त्री, यदि वह सचमुच स्त्री है, रह नहीं सकती। एक विवाहित स्त्री घर के सब कष्टों को सहती है, इतना बड़ा बोझ उठा लेती है, उसमें अपने स्वास्थ्य तथा जीवन का बलिदान कर देती है। क्यों? इसी स्वभाव के कारण। इसलिए विवाहित या अविवाहित किसी प्रकार के जीवन में लड़कियाँ बिना प्रेम के नहीं रह सकतीं। इस प्रेम का मतलब शारीरिक वासना नहीं है। स्त्री के लिए स्नेह करने को कोई ऐसा प्राणी चाहिए जिसमें वह अपने को भूल जाय; जिसके लिए वह बड़े से बड़ा त्याग करने में सुख का अनुभव करे। लड़कपन में माता-पिता, भाई-बहिन में से किसी एक को, विवाहित अवस्था में पति को और माता हो जाने पर सन्तान को प्रायः स्त्रियाँ बहुत अधिक स्नेह करतीं, उनके स्नेह में विकल देखी जाती हैं। इसलिए मैंने ऊपर जो-कुछ लिखा है, वह केवल विवाहित स्त्रियों के ऊपर ही घटित नहीं होता, सब पर लगता है।

बात यह है कि जहाँ पुरुष की प्रकृति केन्द्रापसारी अर्थात् अपना विस्तार करने की ओर है, तहाँ स्त्री की प्रकृति केन्द्रोन्मुखी (Centripetal) होती है।

हृदय की देवी

केन्द्रोन्मुखी का तात्पर्य यह है कि सब ओर से ध्यान हटाकर वह एक वस्तु में अपना ध्यान लगाने की चेष्टा करती है। पुरुष भी अपना हृदय एक के लिए ही सुरक्षित रख सकता है, पर जन्म भर आत्यन्तिक सीमा पर स्नेह को निभा ले जाना उसके लिए कठिन है; क्योंकि पुरुष में कर्तव्य और विवेक का भाव प्रायः उसके प्रेम पर हावी रहता है और यह उचित ही है। स्त्री के लिए तो प्रेम उसका स्वभाव बन गया है।

दूसरी बात यह है कि स्त्री हृदय की प्रतिनिधि है और पुरुष शरीर और दिमाग़ का। इसका यह मतलब नहीं कि पुरुषों के पास हृदय नहीं होता या स्त्रियों में बुद्धि नहीं होती। इसका मतलब यह है कि स्त्री में हृदय के गुण अधिक होते हैं, पुरुष की अपेक्षा उसका हृदय अधिक कोमल, अधिक उदार, अधिक भावनामय होता है। उसमें प्रेम, दया, श्रद्धा, सहानुभूति, क्षमा, करुणा, त्याग, सेवा के भावों की अधिकता होती है और पुरुष में शरीर और दिमाग़ के गुण अधिक होते हैं। उसमें साहस, उत्साह, विचार-शक्ति, कठोरता अधिक होती है। इस बात पर ध्यान देकर देखें तो प्रकट होगा की मनुष्यता के खयाल से स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ है। साहस तो जंगली और अत्यन्त पाशविक विचार रखने वाली जातियों में भी पाया जाता है। मनुष्य को सभ्य बनाने और उसके अन्दर अधिक से अधिक देवत्व का विकास करने में साहस और बल का हिस्सा प्रधान नहीं है। पुरुष की विचार शक्ति ने अवश्य इस क्षेत्र में बड़ा काम किया है, उसकी बुद्धि के सहारे सभ्यता की बड़ी उन्नति हुई है; पर मनुष्य बनाने में हृदय ने ही अधिक काम किया है। संसार के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ काम प्रेम, सहानुभूति, करुणा, दया और क्षमा से ही किये जा सके हैं। बुद्धि और प्रेम का, दिमाग़ और हृदय का बदला नहीं किया जा सकता। बुद्धि के बिना भी आदमी-आदमी रह सकता है पर प्रेम के बिना वह पशु है। संसार का इतिहास स्वयं पुकार-पुकार कर इसकी घोषणा कर रहा है। आज इस बुद्धि-प्रधान ईर्ष्याद्वेष और कलह के समय में भी बुद्ध और ईसा का मानव-हृदय पर जो प्रभाव है, उन्होंने हमारी सभ्यता और संस्कृति को जितना ऊँचा उठाया है उतना न्यूटन और एडिसन, मार्कोनी और जगदीशचन्द्र* ने नहीं उठाया। कबीरदास और मीरा बाई का स्थान पं० मोतीलाल और सर तेजबहादुर सप्रू नहीं ले सकते। इसलिए बहुत प्राचीनकाल से, जब मनुष्य जंगलों में पशुओं के समान घूमा करता था, जब खूनखराबी लूट-मार ही उसका प्रधान कार्य था, स्त्री ने पुरुष को आदमी

सभ्यता की देवी

*संसार के बड़े-बड़े वैज्ञानिक, जिन्होंने अनेक आविष्कार किये हैं।

होना सिखाया है और अपने आकर्षण तथा अपनी ममता से एक योग्य पति, एक स्नेही भाई और एक श्रद्धालु पुत्र के रूप में संसार के सामने ला खड़ा किया है। जब पुरुष स्वयं खा-पीकर मस्त रहने और दूसरे को सताने में तृप्ति का अनुभव करता था, तभी स्त्री ने उसे अपने स्नेह से, अपनी ममता से, अपनी सेवा और वफ़ादारी से, एक कुटुम्ब के बन्धन में डाला और सिर्फ़ अपने ही लिए नहीं दूसरों के लिए परिश्रम करने की प्रवृत्ति उसमें पैदा की। यही वह सड़क है जिसपर चलकर मनुष्यता का इतना विकास हो सका है। सभ्यता की शरीर-रचना में जहाँ पुरुष ने अपना बड़ा विज्ञापन किया है, वहाँ स्त्री ने चुपचाप कष्ट-सहन, त्याग, बलिदान एवं ममता के साथ उसके प्राणों की रचना की है।

हाँ, तो मैं तुम्हें यह समझा रहा था कि पुरुष और स्त्री के हृदय में बड़ा अन्तर है। हृदय ही क्यों शरीर की रचना, स्वभाव, सोचने-विचारने के ढङ्ग भी दोनों के अलग-अलग हैं। प्रत्येक स्त्री पुरुष को यह जान लेना चाहिए। स्त्री सेवा और त्याग की प्रतिमा है, पुरुष साहस और बुद्धि का पुतला है।

दानमयी

स्त्री दान की देवी है—अन्नपूर्णा है। वह देना चाहती है। आत्मसमर्पण,-जिसे चाहती है उस पर सब कुछ चढ़ा देना—उसका धर्म है। पुरुष ग्रहण करने वाला, दान लेने वाला प्राणी है। वह कुछ देना नहीं चाहता और जब कुछ देता भी है तो उससे अधिक पाने की आशा रखता है। जहाँ स्त्री जिसे चाहती है उसे आत्मसमर्पण करती है, वहाँ पुरुष जिसे प्रेम करता है उसपर अधिकार चाहता है। यह बात मैं उन स्त्रियों के विषय में कह रहा हूँ जिन्होंने अपना सत् और अपनी श्रद्धा एवं आत्मनिष्ठा इस युग में भी कायम रखी है। अन्यथा आजकल की फ़ैशनेबल रमणियाँ इस कसौटी पर बिल्कुल असफल सिद्ध हो रही हैं और उनके मुकाबले तो सामान्य पुरुष ही अधिक आत्मार्पणशील गम्भीर प्रेमी ठहरता है। यह एक निश्चित-सी बात है कि जिस प्रेम में आत्म-समर्पण का भाव जितना ही अधिक रहेगा, उसमें त्याग की भावना उतनी ही अधिक होगी, उसमें स्वार्थ की उतनी ही

कमी रहेगी और वह उतनी ही उच्च कोटि का प्रेम होगा। जिस प्रेम में अधिकार का, ग्रहण का भाव जितना अधिक होगा, वह प्रेम उतना ही स्वार्थमय और वासनापूर्ण होगा। यदि पुरुष स्त्री को और स्त्री पुरुष को समझ ले तो जीवन की बहुत-सी ग़लतफ़हमी घट जा सकती है, पर साधारण सङ्कोच और लज्जा के कारण स्त्री अपने हृदय को बहुत छिपाकर रखती है और इस गोपनीयता से इस छिपाने की प्रकृति से, उनके प्रति पुरुष का आकर्षण साधारण सीमा और उत्कण्ठा से बढ़कर प्रायः अधीर हो जाता और भोग-विलास और वासनारञ्जन के रूप में बदल जाता है। *पुरुष ने हृदय के अन्दर छिपाकर रखने योग्य बातों को कभी न समझा। इसे न समझने से ही स्त्री को समझने के लिए अनादिकाल से पुरुष विकल है।*

इसलिए तुम सदा इस बात का ख्याल रखना कि पुरुष का हृदय दूसरी धातु का बना होता है। उसके व्यवहार से अपनी प्रकृति के अनुकूल अर्थ नहीं निकालना चाहिए। तुम्हें केवल अपना कर्तव्य समझना चाहिए। न तो स्त्री को पुरुष से स्त्री-हृदय के भावों का समझने की आशा रखनी चाहिए; न पुरुष के उतावलेपन पर अपने स्त्रीत्व को, प्रेम की गम्भीरता को बलिदान करना चाहिए। पर हाँ, स्नेही पुरुष को अनुकूल बनाने और उसके स्नेह को क़ायम रखने के लिए जिस स्नेह, सहानुभूति और सेवा की आवश्यकता होती है, उसका उपयोग बराबर करते रहना चाहिए।

एक ज़रूरी बात

जैसा कि मैं कह चुका हूँ, साधारणतः पुरुष का हृदय नित्य-नवीनता ढूँढ़ने वाला और शीघ्र ऊब जाने वाला होता है। क्योंकि उसे जीवन के संघर्ष में बड़ा कठोर कार्य करना पड़ता है। उसमें स्थायी प्रेम की सुगन्ध भरना स्त्री की सेवा, चातुरी और मधुरता पर निर्भर है। *स्त्री जिसे हृदय दान करती है, उसे ही जीवनदान भी कर देती है। प्रेम और जीवन उसके लिए एक है।* केवल एक बात ऐसी है जिसका सहन करना उसके लिए कठिन है। साधारणतः कोई स्त्री यह नहीं सह सकती कि उसका पति किसी अन्य स्त्री को हृदय-दान कर दे। वह पति के लिए प्राण दे सकती है; वह अपने सब अधिकार

छोड़ सकती है; पर पति को, पत्नीत्व के भाव के साथ, दूसरी स्त्री को ग्रहण करते नहीं देख सकती। यह तो उसकी पूँजी का ही सर्वनाश है, जिसके बल पर वह संसार के बड़े से बड़े कष्ट को झेल सकती है। यह उसके सोहाग की चिता है, जिसका जलना देखने में वह प्राण रहते असमर्थ है। यह ठीक है कि कहीं-कहीं ऐसी स्त्रियाँ भी देखी गई हैं, जिन्होंने पति के सुख के लिए हँसते-हँसते, उन्हें दूसरी स्त्रियों को सौंप दिया है, पर वे बहुत उच्चकोटि की त्यागी स्त्रियों के उदाहरण हैं। मैं तो साधारण स्त्रियों की बात कर रहा हूँ।

इसलिए प्रत्येक साधारण स्त्री अपने सारे कष्ट-दुःख, सेवा, त्याग और जीवनव्यापी बलिदान के बदले पति का प्रेम अवश्य चाहती है। इसी नींव पर, इसी शक्ति और पूँजी के सहारे वह ऊँचे से ऊँचा उठ सकती है और जीवन की कठिनाइयों को सहती है। किन्तु पति का प्रेम प्राप्त करना भी बहुत-कुछ स्त्री के ही हाथ है। स्त्री को आरम्भ में न तो पुरुष के उतावले प्रेम पर पागल हो जाना चाहिए और न उससे बहुत अधिक आशा रखनी चाहिए। उसे सदा अपने सतीत्व, अपने प्रेम और अपनी भक्ति में विश्वास होना चाहिए और यह समझते रहना चाहिए कि मैं अपनी सेवा और अपने मधुर व्यवहार से पति की विरक्ति और चिन्ताओं को दूर कर के उसके हृदय पर विजय प्राप्त कर लूँगी। सब से अच्छी बात तो यह है कि स्त्री बदले में कुछ आशा किये बिना ही सच्चे प्रेम और आत्म-समर्पण का आदर्श उपस्थित करे।

बहुत-सी स्त्रियाँ सदा अप्रसन्न रहती हैं। वे सब काम-काज करती हैं, पति की, सास-ससुर की सेवा भी करती हैं, पर मन ही मन कुढ़ती रहती हैं। वे सेवा करती हैं, पर उस सेवा में प्रसन्नता का अनुभव नहीं करतीं, अतः दुखी रहती हैं और उनके काम का, उनके त्याग का, उनकी सेवा का कुछ असर भी नहीं होता। सुख केवल उन स्त्रियों को प्राप्त होता है, जो विवाह रूपी साझे में अपने हिस्से का काम ठीक तरह से पूरा करती हैं। इसके विरुद्ध जो स्त्रियाँ बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर जाती हैं और उनकी पूर्ति न होने के कारण दुखी और अनमने हृदय से गृहस्थी का काम-काज चलाती हैं, वे घर के वातावरण को मधुर और शान्ति-

स्त्रियों की भूल

भय नहीं रख सकतीं। वे पति के लिए, पति के मंगल एवं कल्याण के लिए प्रसन्नतापूर्वक काम नहीं करतीं। उनका दाम्पत्य जीवन उनके लिए बोझ हो जाता है और वे सदा अपने विवाहित जीवन को दासी का जीवन समझने के कारण अपने मन और शरीर दोनों को दुर्बल और कृश कर डालती हैं। इसलिए तुम्हें सदा याद रहे कि स्त्री को संसार की कठिनाइयाँ उठाने की शक्ति तभी मिल सकती है, जब वह अपने सुख का ध्यान न करके पति के कल्याण के लिए सदा प्रयत्नशील रहे और पति तथा घर के अन्य लोगों की सच्ची सेवा में ही अपना सुख खोजे। इसलिए तुम्हें पहले से ही सचेत कर देना चाहता हूँ, कि बहुत-सी स्त्रियाँ मुँह फुलाकर ग़लतफ़हमी के कारण या अपने पतियों के उतावलेपन की शिकार होकर, बहुत जल्द अपने सौभाग्य-सुख में चिनगारी लगा देती हैं और बहुत से पुरुष भी ज्यादा सिर चढ़ाकर या आलसी, आराम-मतलब और हठी बनने की आदत डालकर अपनी स्त्रियों को नष्ट कर डालते हैं। हर अवस्था में, हर क्षेत्र में, इस सिद्धान्त को सदा याद रखो कि *उत्तेजना में बह जाने की अपेक्षा मन एवं विचार पर संयम रखकर किसी काम के बारे में कुछ निश्चय करना अच्छा है।* कभी उस रास्ते न जाओ जिसमें बड़े ज़ोर से आँधी की हरहराहट के समान, तूफान या धारा में बह जाने का खतरा हो, क्योंकि ऐसे समय सदा विचार-शक्ति का लोप हो जाता है। और आदमी ठीक रास्ते का निर्णय नहीं कर सकता।

मैंने सदा बहिनों को नतमस्तक हो, प्रणाम किया है। मैं उनके सामने, उनके त्याग के सामने, अपने को बहुत क्षुद्र अनुभव करता हूँ: स्वयं मेरे हृदय के अन्दर स्त्रीत्व के गुण ही अधिक हैं, इसलिए यदि मैं साहस करके तुमसे या किसी बहिन से यह कहूँ कि पुरुषों की कमज़ोरियाँ और उनके हृदय एवं अपने हृदय के अन्तर को समझकर भी तुम विवाहित होने पर स्वयं अपने स्त्रीत्व के सेवा एवं त्यागमय आदर्श को एक इञ्च झुकने न देना, तो आशा है, मैं क्षमा का पात्र समझा जाऊँगा।

: ६ :

गृह-जीवन

अजमेर
२१-१०-३०

चिरं० भगवती,

जहाँ तक एक पुरुष के लिए सम्भव है, मैं पिछले पत्र में विवाहित जीवन की जिम्मेदारियों, पतिव्रत, सेवा तथा पुरुष-स्त्री-हृदय के रहस्य और अन्तर के सम्बन्ध में लिख चुका हूँ। उनपर ध्यान देने से लाभ उठाया जा सकता है। पर उनके अतिरिक्त कुछ और बातें भी हैं, जिन्हें तुम्हारे जान लेने की आवश्यकता है। इस पत्र में उन्हीं के सम्बन्ध में लिखना चाहता हूँ।

यद्यपि यह ठीक है कि स्त्री का पहला कर्तव्य पति की सेवा है, किन्तु कुटुम्ब में रहते हुए, जहाँ सबके स्वार्थ एक-दूसरे से बँधे हुए हैं, केवल पति-प्रेम में दीवानी रहने से ही स्त्री का गृहस्थ-जीवन सफल और सुखदायक नहीं हो सकता। पति के साथ ही, उनके माता-पिता, उनके भाई-बहिन इत्यादि का भी ध्यान रखना पड़ता है। स्त्री को ससुराल में अपना जीवन ऐसा बना लेना चाहिए कि हरेक को उसकी आवश्यकता मालूम पड़े और प्रत्येक प्राणी अनुभव करे इसके आने से मेरा जीवन अधिक सुखपूर्ण, सुन्दर और मधुर हो गया है। इसलिए पति की सेवा करने तथा उनके सुख-दुःख में हाथ बटाते रहने के साथ ही, स्त्री को उन सब बातों पर भी ध्यान देना पड़ता है, जिनके ऊपर पति के मन की शान्ति तथा दोनों के सम्बन्ध का अटूट स्नेह निर्भर करता है।

प्रेम का नशा

इसके लिए सब से आवश्यक बात, जिसके बारे में मैं पहले भी लिख चुका हूँ, यह है कि पत्नी की पति में गहरी श्रद्धा होनी चाहिए और उसे शरीर, मन और वाणी से पतिव्रता होना चाहिए। जिस स्त्री का अपने पति के

प्रति सच्चा प्रेम नहीं है, उसका मन घर के काम-काज में कभी नहीं लग सकता; वह उसे एक बोझ समझ कर दुखी चित्त से करती है और अपने को घर की मालकिन की जगह दासी समझकर व्यर्थ कष्ट पाती है। इसके विरुद्ध जिस स्त्री का अपने पति में प्रेम होता है, उसे घर का अधिक से अधिक काम करने में आनन्द आता है; वह सदा प्रसन्नतापूर्वक घर के सारे काम करती है, क्योंकि वह अनुभव करती है कि घर मेरा है; मैं इसकी मालकिन हूँ। बुरा है तो, भला है तो, अपनी चीज़ है।

पुरुष के लिए, दुनिया में मन बहलाने के अनेक साधन हैं। परन्तु स्त्री के लिए, यदि पति का प्रेम नहीं है, तो जीवन व्यतीत करना कठिन हो जाता है।

यह प्रेम, एक सीमा तक, कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इसके सम्बन्ध में पहले के पत्रों में लिख चुका हूँ। प्रेम प्राप्त करने का कोई ख़ास नुस्ख़ा नहीं है। यह पत्नी की सरलता, पति में श्रद्धा-विश्वास, घरेलू जीवन की शान्ति, सेवा, मधुरता तथा पति की मनोवृत्ति पर निर्भर है। इनके अतिरिक्त अपने विचार और अपने भावों से भी सुख-दुःख का बहुत सम्बन्ध होता है। अमेरिका की एक अनुभवी स्त्री ने लिखा है—"स्त्री के हृदय का भाव ही वह चीज़ है जो उसके जीवन को सुख-दुःखमय बना सकता है।" किसी महात्मा ने कहा है—"स्वर्ग और नरक सब मन के अन्दर हैं।" स्त्री के लिए यह बात खास तौर से ठीक है, क्योंकि स्त्रियाँ जब सुख का अनुभव करती हैं तो बहुत अधिक करती हैं और दुःख का अनुभव करती हैं तो भी बहुत अधिक करती हैं। हर हालत में एक साधारण स्त्री की अनुभव-शक्ति एक साधारण पुरुष की अनुभवशक्ति से अधिक होती है। इसलिए स्त्रियाँ पति का थोड़ा भी प्रेम पाने पर पागल-सी हो जाती हैं और अपना सब कुछ भूल जाती हैं। पर इस तरह का प्रेम जिसमें संयम नहीं है, उन्माद और पागलपन है, स्थायी नहीं हो सकता। प्रेम सदा आदमी को ऊँचा उठाता है, इसलिए पागल और कर्तव्य से विमुख करने वाले प्रेम से सदा बचना चाहिए।

पुरुष का—पति का—पत्नी के प्रति जो कर्तव्य है, उसे ग़रीबी, चिन्ता,

गुलामी, मूर्खता और अव्यवस्था के कारण हम लोग भूल से गये हैं। जो स्त्री पति के मुँह के स्नेहमय दो शब्द सुनने के लिए तड़प रही हो, उसकी निराशा की कल्पना पुरुष बड़ी कठिनाई से कर सकता है। पुरुष यह भूल जाता है कि स्त्री उसकी तरह अपने मन को संसार के अन्य साधनों से तृप्त नहीं कर सकती और चाहे पति भोजन, वस्त्र, गहने तथा अन्य बातों की सुविधा पत्नी के लिए कर दे परन्तु यदि स्त्री को पति की सहानुभूति और स्नेह प्राप्त नहीं है और वह सच्चे हृदय से पति को प्रेम करती है, तो ये सारी सुविधाएँ और ऐश्वर्य उसके लिए मिट्टी के समान हैं। ऐसी स्त्री मन में अनुभव करती है मानों उसकी कोई क़ीमती चीज़ खो गई है जिसके बिना उसका जीवन बिल्कुल सूखा जा रहा है और वह सदा उस खोई हुई चीज़ के लिए बेसुध और बेचैन रहती है।

उत्तरदायित्व

किन्तु परिस्थिति का विचार करने पर और मन को शान्त रखने से, वह बेचैनी और कठिनाई भी, एक सीमा तक, कम की जा सकती है। एक तो ऊपर मैंने जो बात लिखी है वह बहुत उदार, प्रेमी, भावुक और बहुत करके शिक्षित स्त्रियों के लिए ही ठीक है। हमारे देश में सौ में निन्यान्वे विवाह तो ऐसे ही होते हैं जिनमें हृदय और प्रेम को कोई स्थान ही नहीं होता। विवाह एक ज़रूरी बात है, यही समझ कर विवाह किया जाता है और जीवन के एक साधारण कार्य-क्रम—रूटीन—की तरह वह भी बन जाता है। इसलिए स्त्रियाँ, साधारणतः, अपने पति की सेवा और गृहस्थी के काम-काज करते हुए, तथा बच्चे होने पर उनके पालन-पोषण में, अपना जीवन बिता देती हैं। अधिकांश स्त्री पुरुष संसार और अपनी मर्यादा का ख़याल करके, समाज में अपनी इज्ज़त बनाये रखने के लिए, एक दूसरे के प्रति वफ़ादार रहते और अन्य सांसारिक कार्यों का पालन करते हुए अपनी ज़िन्दगी के दिन बिता देते हैं। उनमें प्रेम की अपेक्षा कर्त्तव्य और प्रथा से पैदा होनेवाली भावना की ही प्रधानता होती है। जीवन में कर्तव्य की प्रधानता उचित ही है पर प्रथा-मर्दित विवाहित जीवन रुक्ष एवं बोझल हो जाता है। पति यह समझता है कि यह

मेरी व्याहता है; इसे अच्छे से अच्छे कपड़े पहनाना, अच्छी तरह खिलाना, इसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है और स्त्री सोचती है कि अब तो मेरा व्याह हो गया, जैसा भी हो, *अपना* आदमी है; उसकी, उसके कुटुम्बियों की सेवा करना मेरा काम है। इस पतिव्रत भाव में प्रेम की अपेक्षा संस्कार की ही प्रवलता होती है। साधारणतः हमारा विवाहित जीवन इसी तरह वीतता है। न पति पत्नी के उस प्रेम के लिए विकल होता है, जिसके प्राप्त होने पर और किसी वस्तु की इच्छा वाक़ी नहीं रहती और न पत्नी पति के उस प्रेम के लिए पागल हो उठती है जिसके प्राप्त होने पर जीवन में पूर्णता का अनुभव होता है। इसलिए विवाहित जीवन में भी अनेक स्त्रियों को ऐसे प्रेम का अभाव अनुभव नहीं होता, न पतियों का ही इनकी ओर विशेष झुकाव होता है। खानेपीने, घर-वाहर के काम-धन्धे, सेवा-चाकरी में उनका अधिकांश समय जाता है और इसके अतिरिक्त जो बचता है, वह शारीरिक वासनाओं की तृप्ति में लग जाता है। साधारण विवाहित पुरुष-स्त्री का यही जीवन है।

हमारे यहाँ विवाह की नींव प्रेम पर नहीं, सांसारिक धर्म-वन्धन और सामाजिक सुविधा के ऊपर खड़ी की गई है। इसलिए उत्कट प्रेम के अभाव में, सहानुभूति रखते, सेवा करते, परस्पर सहायक होकर अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, जीवन अच्छी तरह बिता दिया जा सकता है। प्रेम का अभाव इसमें वाधक तभी हो सकता है, जब हमें प्रेम की चाट, पुस्तकों में पढ़कर या आन्तरिक प्रेरणा के कारण या दूसरों को देखकर, पहले से ही लग गई हो। यूरोप में वात इसके विपरीत है; वहाँ जिससे प्रेम हो जाता है (यद्यपि प्रायः इस प्रेम में शारीरिक आकर्षण ही अधिक होता है) उससे विवाह होता है या उसी से विवाह करने की चेष्टा स्वयं स्त्री-पुरुष करते हैं। *यहाँ विवाह होता है गृहस्थ-धर्म के पालन के लिए और वहाँ होता है जीवन के सुख के लिए।* इसलिए संस्कार के कारण साधारण स्त्री पुरुष हमारे देश में विवाह के वाद ही अपने नियमित कार्यों में लग जाते हैं; प्रेम के अभाव के कारण पागल नहीं होते।

जो स्त्रियाँ पति से साधारण स्नेह और सहानुभूति की आशा रखती हैं; वे

उन स्त्रियों से कहीं अधिक सुखी रहती हैं, जो पति के प्रेम के लिए पागल हो जाती हैं। बहुत बड़ी-बड़ी आशाएँ कभी न बाँधो; न हवाई किले बनाओ। कर्तव्य और धर्म समझकर विवाहित जीवन के आदर्श का पालन करो।

सन्तोष का फल

हर हालत में, अपने लिए, सन्तोष का फल मीठा होता है। अधिक प्राप्त करने का यत्न तो सदा करना चाहिए, पर अधिक न मिलने की हालत में, जो मिला है, उसी पर सन्तोष कर लेने से, जीवन की कठिनाइयाँ कम हो जाती हैं। प्रत्येक भाई-बहिन को यह बात याद रखनी चाहिए। दुनिया में सब सुख-स्वप्न पूरे नहीं उतरते। न तो भावुक पतियों को वैसी स्त्रियाँ मिलती हैं, जिनकी कल्पना उनके दिल में पहले से होती है, न स्त्रियों को सदा ऐसे पति ही प्राप्त हो सकते हैं, जिनकी कल्पना वे कर रखती हैं। इसलिए मैं बहिनों से कहूँगा कि ऐसी स्थिति का सामना होने पर—मनचाहा पति न मिलने पर—दुखी और अधीर हो जाने की जगह शान्ति से बैठकर मन में विचारो कि क्या दुनिया में मुझसे दुखी और अभागी स्त्रियाँ नहीं हैं? संसार में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जिसको चिन्ता, उद्विग्नता, रोग, शोक और निराशा से कभी काम न पड़ा हो। जो बात सब के लिए है, वही तुम्हारे लिए भी है। फिर जैसा कि मैं लिख चुका हूँ, दुःख को घटाना-बढ़ाना भी अपने मनोभावों के संयम पर निर्भर है। हाँ, कुछ दुःख ऐसे भी होते हैं जिनको सहने में भी एक प्रकार का सन्तोष और सुख होता है। कोई मनुष्य जिसे स्नेह करता है उसका हृदय से, हर हालत में, भला चाहता है। वह उसके लिए कष्ट और दुःख सहने में सन्तोष और तृप्ति का अनुभव करता है। यदि कोई विवाहित स्त्री सच्चे हृदय से पतिव्रता है तो पति के कल्याण और पति के सुख में ही उसे सच्चा सुख अनुभव होगा। इसलिए यदि बिल्कुल मन के आदर्श के अनुकूल पति न प्राप्त हो तो जो पूँजी मिले उसी के सहारे जीवन की इमारत खड़ी करने की चेष्टा, प्रसन्नता-पूर्वक, करनी चाहिए। उच्च जातियों की हिन्दू स्त्रियों के लिए यह संयम विशेष आवश्यक है; क्योंकि इनके सम्बन्ध में न तो समाज में, न क़ानून में, पति के जीवित रहते स्त्री के लिए विवाह के बन्धन से कोई छुटकारा है।

इसलिए दुःखी होकर जीवन-भर घुलने से तो हर हालत में यही अच्छा है कि जो कुछ है उसी पर सन्तोष करके शान्ति के साथ जीवन बिताने का यत्न किया जाय। एक बार ब्याह हो जाने पर स्त्री को सदा यह याद रखना चाहिए कि वह ज़िन्दगी-भर के लिए एक ऐसे संस्कार के बन्धन में बँध गई है जिसकी गाँठें खुल जाने पर भी जन्म भर बनी रहती हैं। जहाँ तलाक़ की प्रथा है, जहाँ पति-पत्नी का जीवन एक-दूसरे के साथ न मिलने पर वैवाहिक सम्बन्ध तोड़ देने और दूसरे पुरुष से कर लेने की सुविधा है, वहाँ भी स्त्रियों को दूसरे ब्याह से पहले ब्याह की आशा, प्रसन्नता और उत्साह नहीं मिलता।

दूसरी बात जो मैं इस सम्बन्ध में देखता हूँ स्त्रियों के दुःख को बढ़ाकर कहने और पुरुषों की कठिनाइयों का बिल्कुल ख़याल न करने की मनोवृत्ति है। जो लोग आज समाज में स्त्रियों की समस्या को लेकर अपराध किसका है? आन्दोलन कर रहे हैं और उनके सच्चे हितैषी समझे जाते हैं, वे सारे अपराधों और दोषों का बोझ पुरुषों पर डालना चाहते हैं। दुःख की बात तो यह है कि स्वयं स्त्रियाँ भी पुरुषों की कठिनाइयों को समझने का प्रयत्न नहीं करतीं। इसका फल बड़ा विषैला हो रहा है; क्योंकि सिर्फ़ एक पर ही बोझ डालते समय हम भूल जाते हैं कि विवाहित जीवन या स्त्री-पुरुष का सुख-दुःख एक-दूसरे पर निर्भर करता है। दोनों को दोनों की कठिनाइयाँ समझने और सहानुभूति के साथ उन पर विचार करने की ज़रूरत है। हम लोग यह भूल गये हैं कि घर के छोटे-से कमरे में रहने वाली स्त्री को जितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, बाहर—समाज में—काम करने वाले पुरुष को उससे अधिक कठिनाइयों से लड़ना पड़ता है। पुरुषों के सामने प्रलोभन भी अधिक हैं। उन्हें बीसों आदमियों से व्यवहार रखना पड़ता है, इधर-उधर के अनेक तरह के स्त्री-पुरुष उनके संसर्ग में आते रहते हैं। इसलिए स्त्री की भाँति मन को केन्द्रित और एकाग्र रखना पुरुष के लिए बहुत कठिन हो जाता है। आज समाज में पुरुषों के समान अधिकार लेकर, नई रोशनी" चटक-मटक में जो स्त्रियाँ पुरुषों के कन्धे-से-कन्धा मिला कर काम करती हैं, वे पतिव्रत धर्म का पालन करने में उन स्त्रियों से अधिक कठिनाई अपने हैं। भोली

अनुभव करती हैं, जो घरेलू जीवन को—पति, सास-ससुर इत्यादि को—अपना कार्यक्षेत्र मानकर चल रही है और जिनका उद्धार करने को शिक्षित और अधिकार-प्रिय स्त्रियाँ बाहर निकलकर आवाज़ बुलन्द कर रही हैं!

आजकल संसार में रोटी की समस्या सबसे विकट है तथा दिन-दिन और भयङ्कर होती जा रही है। बेकारों की संख्या बढ़ रही है। पचास-पचास साठ-साठ रुपये में बी० ए० मिल जाते हैं। पढ़े-लिखों में ही बेकारी हो सो बात नहीं। मशीनों के प्रचार से शरीर-द्वारा परिश्रम करके कमाने वाले भी बेकार हो रहे हैं। लोगों को पेट पालने भर के लिए काम मिलना कठिन हो रहा है। शिक्षित और अच्छे विचार के युवक बड़े-बड़े नगरों के आफ़िसों में चक्कर काटते और दुरदुराये जाते दीख पड़ते हैं; यह हमारे जीवन में एक मामूली बात हो गई है। मीलों चक्कर काटते और 'जगह खाली नहीं', 'कोई काम नहीं है' सुनते-सुनते अपमान और निराशा से पीड़ित भाइयों को घर आकर बेदम चारपाई पर पड़कर रोते मैंने देखा है—कोई भी, किसी समय, इसे देख सकता है। इन भाइयों के दिल में अपनी पत्नियों को अच्छा से अच्छा खिलाने-पिलाने और सुख से रखने की इच्छा होती है, पर यह सुख रोटी की समस्या हल किये बिना, कमाये बिना, प्राप्त नहीं हो सकता। जिनको कहीं छोटा-मोटा काम मिल भी जाता है, उन्हें अपनी इज़्ज़त-आबरू, अपना ईमान बचाकर काम करना बहुत कठिन हो जाता है। पग-पग पर उन्हें आत्म-सम्मान बेचना पड़ता है; जो करना न चाहिए वह भी करना पड़ता है—अपमान, झिड़की, गाली, सभी कुछ खानी और सहनी पड़ती है। कभी-कभी जब आत्माभिमान पर गहरी ठेस लगती है, तो इस्तीफ़ा दे देने की भी इच्छा होती है; पर घर में बैठकर रास्ता देखने वाली पत्नी और बच्चों के मुँह फूलकर एक लम्बी साँस बाहर निकाल कर ही सन्तोष करना पड़ता है। पुरुष पुरुषों के लिए यह थोड़ा बलिदान नहीं है। इतने प्रलोभनों, कठिनाइयों, विशेषकर के बीच यदि पुरुष घबड़ा जाय; स्त्री की भाँति अपने को एकाग्रन पति के तो वह, एक सीमा तक, दया और क्षमा का पात्र है। मैं यहाँ पुरुषों

रोटी का प्रश्न

का पक्ष नहीं ले रहा हूँ। मैं इन कठिनाइयों का उल्लेख करके पुरुषों का बचाव भी नहीं करता हूँ; न उनके दोषों को ढकने या उनपर परदा डालने की ही मेरी इच्छा है। उनके दोष, उनकी कमजोरियाँ, मैं पहले लिख चुका हूँ। मैं यह नहीं कहता कि उनके दोषों पर समुचित विचार न किया जाय; मैं केवल यह चाहता हूँ कि स्त्री-पुरुष दोनों एक-दूसरे के दोष निकालने की अपेक्षा एक दूसरे की कठिनाइयों, एक दूसरे के सुख-दुःख को समझने की चेष्टा करें। इससे विवाह और गृहस्थ-धर्म का उद्देश्य सफल होगा।

तीसरी बात, जिसकी ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, और जिस पर जीवन का सुख ख़ास तौर से निर्भर करता है, स्त्री का स्वास्थ्य और उत्साह है। सदा अपने स्वास्थ्य का ध्यान रक्खो और सुस्त एवं उदास न बैठकर घर के कामों को उत्साह से करो। किसी स्त्री का आलसी होना अपने जीवन को नष्ट करना है। इससे शरीर और मन दोनों की अवनति होती है, तथा घर की व्यवस्था और शान्ति नष्ट हो जाती है। प्रायः बहुत-सी स्त्रियाँ घर के ज़रूरी कामों की ओर ध्यान न देकर, उन्हें छोड़कर, इकट्ठी होतीं और इधर उधर की बातें किया करती हैं। इस प्रकार के आलसी जीवन में प्रायः दूसरों के चरित्र की छानबीन और इनके-उनके घर की बुराइयाँ ही सामने लाई जाती हैं। एक आदमी और एक स्त्री में बड़ी घनिष्ठता है। एक कहती है कि पता नहीं क्यों इनमें इतना स्नेह है; मुझे तो भाई विश्वास नहीं होता। दुनिया में तो भाई-भाई में बनती ही नहीं और यहाँ यों निःस्वार्थ स्नेह होगा, यह कैसे मान लिया जाय? दूसरी इस विचार का समर्थन करने के लिए पहले से ही तैयार रहती है। तीसरी पुष्टि के लिए झट दो-चार प्रमाण और उदाहरण उपस्थित कर देती है—"हाँ जी, दुनिया में ऐसा आजकल कौन है! मैंने तो अमुक समय एकान्त में दोनों को बातचीत करते देखा था।" जब इस तरह की बातें निकलती हैं तो ऐसी-ऐसी बातें सामने रक्खी जाती हैं, जिनका सिर-पैर कुछ नहीं होता और जो दूसरों को नीचा गिराने या अपने अन्दर की कलुषित वृत्तियों की भूख मिटाने के लिए कही जाती हैं। भोली

स्वास्थ्य और उत्साह

और उदासीन स्त्रियाँ, जो ऐसी जगह बैठती-उठती हैं, लोगों की झूठी निन्दा के इस जाल में धीरे-धीरे फँसती जाती हैं। स्त्री-हृदय ऐसी बातों के विषय में बहुत उत्सुक और उत्तेजना-शील होता है। उसे दूसरों की आलोचना बहुत प्रिय होती है। इसलिए सहज ही ऐसी संगति में पड़कर स्त्री का हृदय विषमय हो जाता है और एक बार मनुष्य के चरित्र से विश्वास उठ जाने पर, ग़लत-फ़हमी बढ़ती जाती है तथा वह स्त्री अवगुणों, सन्देहों और ईर्ष्या के जाल में फँस जाती तथा अत्यन्त दुःखदायी और निकम्मी हो जाती है। इसलिए इस तथा दूसरी बुराइयों से बचने का सबसे उत्तम उपाय हर समय काम में लगे रहना और व्यर्थ बातचीत से बचना ही है। जो स्त्री सदा प्रसन्न-मन काम-काज में लगी रहती है, उसके मन में एकतो ऐसी सन्देह की बातें और बुरे विचार आते ही कम हैं और यदि कभी अपनी कमज़ोरी के कारण मन में कुछ ऐसा ख़याल आ भी जाता है, तो उसपर विचार करने का समय न मिलने से वह विचार आगे नहीं बढ़ता बल्कि उसी समय उसका अन्त हो जाता है। यदि कोई सखी-सहेली किसी स्त्री या पुरुष की निन्दा करे तो तुम्हें उसी समय वह स्थान छोड़कर चला जाना चाहिए। ऐसे मामलों में चुप या उदासीन रहना अपने मन को कमज़ोर बनाना है।

छुटकर बातें

जिस काम को करो उसमें तुम्हारा सच्चा उत्साह होना चाहिए। आरम्भ में तो सभी को अपने काम में उत्साह हुआ करता है, किन्तु उत्साह को अन्त तक क़ायम रखना ही उसके गम्भीर और स्थिर होने का प्रमाण है।

घर में तुमसे—पद में या अवस्था में—जो छोटे हों उन्हें स्नेह करो। बड़ों की सेवा करना तो तुम्हारा कर्त्तव्य है ही, लेकिन सच पूछो तो तुम्हारे स्नेह और सेवा की सच्ची आवश्यकता छोटों को है।

घर को हमेशा साफ़-सुथरा रक्खो। हम जहाँ रहते हैं उसकी स्थिति और वातावरण का हमारे जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य के लिए भी यह ज़रूरी है। साफ़-सुथरी जगह बैठकर सीधा-सादा किन्तु स्वच्छ भोजन करने में मन को भीतर से एक प्रकार की प्रसन्नता होती है। इसलिए घर

को अपने जीवन के देवता का मन्दिर समझकर शान्त, स्वच्छ और पवित्र रखना चाहिए।

ईर्ष्या द्वेष दो ऐसी बुराइयाँ हैं जिन्होंने अनेक घरों को चौपट कर दिया। घर में बहुत सी ऐसी बातें उठा करती हैं कि यदि समझ से काम न लिया जाय तो सारे कुटुम्ब के नष्ट हो जाने का डर लगा रहता है। इस बात का सदा ध्यान रखना कि ईर्ष्या से बढ़कर मनुष्य के हृदय को अपवित्र करने और नीचे गिराने वाली दूसरी कोई चीज़ नहीं है। तुमको ईर्ष्या-द्वेष से मुक्त होना चाहिए, पर ससुराल में यदि कोई तुमसे ईर्ष्या-द्वेष करे भी तो तुम्हें उसके साथ प्रेममय व्यवहार करना चाहिए।

ईर्ष्या-द्वेष

मैं अपने एक भाई को जानता हूँ, जिनका एक कुटुम्ब से बड़ा घरौआ था। उसमें वह पुत्र के समान माने जाते थे और स्वयं वह उस घर की मालकिन को माता समझकर अत्यन्त श्रद्धा करते थे। पीछे जब उनका विवाह हुआ और पत्नी घर आई तो उसे उनकी इस घनिष्ठता का ठीक तात्पर्य समझ में न आया; उसने किसी से कुछ पूछा भी नहीं, मन में ही बात रक्खे रही। उसका सन्देह बढ़ता गया, यहाँ तक कि उसका जीवन बहुत चिन्ताकुल और दुःखमय हो गया। पति महोदय भी उसके बदले हुए रंग-ढंग का अर्थ न समझ, दिन-दिन उसकी ओर से विरक्त और उदासीन होते गये। ऊब कर पत्नी खाने-पीने में भी लापरवाही करने लगी। फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में दोनों बुरी तरह बीमार पड़ गये। इधर स्त्री रोती उधर पति महोदय यह सोच कर दुखी होते और रोते कि मेरे साथ विवाह होने के बाद से ही यह दुखी और उदास रहती है; अतएव सम्भव है, इसकी इच्छा मुझसे शादी की न रही हो और किसी दूसरे से विवाह की इच्छा रही हो। पति महोदय इसी चोट से और इसी चिन्ता में सूखने लगे। अन्त में उन्हें क्षय हो गया और बचने की कोई उम्मीद न रही। तब एक दिन उन्होंने पत्नी को बुलाकर कहा कि 'देखो, तुम्हारा यदि पहले से ही किसी से स्नेह था तो उसमें मेरा क्या अपराध! विवाह के बाद मेरे प्रति तुम्हारी उदासीनता बढ़ती

गई; अब मैं अन्तिम समय में तुम्हें अपने बन्धन से मुक्त करता हूँ। मेरी मृत्यु के बाद तुम उस पुरुष से विवाह कर सकती हो, जिससे पहले ही होना चाहिए था।'

स्त्री यह सुनकर रो पड़ी और पति के चरणों में सिर रक्खे हुए उसने रोते-रोते अपने मन के सन्देह की सारी कहानी कह सुनाई। जब पति महोदय की जबानी उसे असली हालत मालूम हुई तो वह और दुखी हुई, रात-दिन रोती और उस दूसरी स्त्री (जिसे उसके पति बहुत चाहते थे) से क्षमा माँगती, उसकी सेवा करती। और पति के जल्द अच्छा हो जाने के लिए व्रत एवं उपवास करती। जब दोनों के दिल साफ हो गये तो पति महोदय के मन से चिन्ता का बोझ उतर गया और दो-तीन महीनों में वह भले-चंगे होगये। तब उन्होंने एक दिन पत्नी को बुला कर पूछा—"क्यों, अब तुम समझ गई कि छोटी सी भूल से घर चौपट हो सकता है? मैं तो मर ही चुका था। यदि तुमने जरा अक्ल से काम लिया होता और पहले ही मुझसे पूछ लेती तो इतना दुःख और कष्ट क्यों भोगना पड़ता, और अज्ञान में ही सही, तुम्हारे द्वारा एक पवित्र स्त्री के साथ अन्याय क्यों होता?" पत्नी ने भरी हुई आँखों से ज़मीन की ओर देखते-देखते कहा—"बहुत क़ीमत देकर अब मैं समझ सकी हूँ। आगे ऐसी ग़लतफ़हमी हम लोगों के बीच न होगी।"

इस घटना की ओर मैं तुम्हारा—तुम्हारा क्या प्रत्येक विवाह-योग्य या विवाहिता बहिन का—ध्यान आकर्षित करता हूँ। यह कभी न ख्याल करो कि तुम्हारे पति का यदि किसी से स्नेह है, घनिष्ठता है, तो वह कलुषित ही है। स्त्री केवल पत्नी ही नहीं होती, वह कन्या भी होती है, बहिन भी होती है और माता भी होती है। तुम्हीं किसी की कन्या हो, किसी की बहिन हो, किसी की पत्नी होगी और आगे चलकर किसी की माता भी हो सकती हो! अब जिसकी तुम कन्या हो, वह भी तुम्हें स्नेह करता है और जिसकी माता होगी, उसका प्रेम और आदर भी तुम्हें प्राप्त होगा। इसी प्रकार जिस पुरुष से तुम्हारा विवाह होगा उसका स्नेह भी तुम प्राप्त कर सकती हो, पर स्नेह होते हुए, सबसे घनिष्ठता और अपनापन होते हुए भी, सब की दृष्टि में सब के भाव और

व्यवहार में भेद होगा। इसलिए कोई स्त्री (जो तुम्हारे भाई को नहीं जानती) तुमको भाई से एकान्त में बातचीत करते या किसी स्नेह-सूचक शब्द से बुलाते देख-सुन ले और उसके मन में कलुषित भावनाएँ उदय हों, तो इसमें दोष उसके हृदय का ही है। पहले तो किसी स्त्री के हृदय में यह शङ्का, यों बात-बात में, उठनी ही नहीं चाहिए और कभी उठे भी तो उसे विचार करना चाहिए कि पति को छोड़ और किसी से शुद्ध और पवित्र भाव रखते हुए क्या उसकी घनिष्ठता नहीं है। कोई मुझे न जाननेवाली यदि अपने भाई से ही इस तरह घुल-मिलकर बात करते देखे तो क्या ऐसी ही शङ्का न करेगी? इसलिए पहले तो अपने मन को इतना शुद्ध, पवित्र और विश्वासमूलक रखना चाहिए कि ऐसी शङ्का ही न उठे, क्योंकि इससे दूसरों की अपेक्षा अपना ही मन ज्यादा ख़राब होता है, दूसरे यदि कभी कोई शङ्का उठे भी तो अपने मन को ऊपर लिखी बातों से समझा कर उस बात को चित्त से निकाल देना चाहिए।

: ७ :

विवाह के बाद—एक सप्ताह

अजमेर
७-११-३०

चिरं० भगवती,

आशा है, तुमने मेरे पिछले पत्र में लिखी बातों पर अच्छी तरह ध्यान दिया होगा। किन्तु एक बहुत ज़रूरी बात, जिसे पहले लिखना मैं भूल गया, यह है कि सुखमय दाम्पत्य-जीवन में विवाह के बाद के आठ-दस दिनों का महत्व बहुत अधिक है। उसे समझना और उसका उपयोग करना प्रत्येक वर-कन्या का कर्त्तव्य है।

विवाह और चाहे जो हो जीवन में एक विचित्र घटना है। कन्यादान के

समय, जब वर-कन्या के हाथ एक में जुड़ते हैं और ऊपर से जल की अविरल धारा गिरती है, तब जीवन में एक नये भाव, एक बहुत ही बड़ी ज़िम्मेदारी का अनुभव होता है। उतनी देर के लिए शरीर और हृदय में जो एक विचित्र कम्पन होता है, दो से एक और एक से दो हो जाने का एक नया भाव पैदा होता है, वह अपूर्व है। वह बात, वह भाव जीवन में सिर्फ़ एक बार, बहुत थोड़ी देर के लिए आता है। जीवन में फिर कभी उस विचित्रता का, उस पुलक का अनुभव नहीं होता। यह आत्म-समर्पण की प्रेरणा है।

एक चिनगारी !

उस समय के बाद से, दो-तीन दिनों और ज्यादा से ज्यादा एक सप्ताह के अन्दर पति-पत्नी का एक-दूसरे के हृदय पर जो प्रभाव पड़ता है वह बहुत करके, बहुत दिनों तक बना रहता है। यह स्वाभाविक है कि जिसे हम अपने जीवन का साथी चुनते हैं उसके बारे में शुरू में जो भाव उदय होते हैं, जो कल्पनाएँ उठती हैं, उन्हीं पर भविष्य में एक-दूसरे के प्रति प्रेम, श्रद्धा और विश्वास की नींव पड़ती है। इसलिए विवाह के बाद पहली बार जब पति-पत्नी एक-दूसरे को देखते हैं तो उस प्रथम दर्शन में दोनों के हृदय में एक-दूसरे के प्रति जो भाव जाग्रत होते हैं, उसी से जीवन के भावी सुख-दुःख का बहुत-कुछ फैसला हो जाता है। आगे चलकर एक-दूसरे के प्रति स्नेहभाव में घटती-बढ़ती भर हो सकती है, पर उस प्रेम के आरम्भ का अवसर यही होता है, जिसका प्रभाव जन्म-भर बना रहता है।

वर-वधू को, विशेषतः बहिनों को—अच्छी तरह जानना चाहिए कि विवाह के दिन, जब पहली बार दोनों एक-दूसरे को देखते हैं, तब उस दृष्टि में, और बाद के कुछ दिनों में (जो पतिगृह में व्यतीत होते हैं) जो भाव-कुभाव एक-दूसरे के बारे में उत्पन्न होता है, उस-पर दोनों के भावी जीवन का सुख-दुःख बहुत दूर तक निर्भर करता है। इसलिए इस समय दोनों के प्रत्येक भाव, शब्द और कार्य में एक-दूसरे के प्रति ममता, श्रद्धा, और आकर्षण होना चाहिए। स्त्री में स्वाभाविक लज्जा और सङ्कोच के साथ पति के प्रति अनुराग, उसकी बातों, भावों

शुभ दृष्टि

और विचारों को समझने की उत्कण्ठा और उसकी बातों का मधुर वाणी में जवाब देने की थोड़ी-बहुत तैयारी होनी चाहिए।

पति-गृह में जाने पर आरम्भ के दिनों में बहू पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी रहती है। पति की माँ-बहिनें, भावजें इत्यादि तथा नाते-रिश्ते की कितनी ही

अनेक रूपों में

स्त्रियों से उसे काम पड़ता है। सभी उसके बारे में अपनी सम्मति स्थिर करतीं और अपने मन के भाव प्रकट करती हैं। कोई उससे कुछ आशा करती है, कोई कुछ। कोई बहू के मुखड़े की सुन्दरता देखने के लिए उत्सुक रहती है, कोई उसे स्वस्थ और परिश्रमी देखना चाहती हैं, कोई उसे चतुर एवं पढ़ी-लिखी चाहती हैं; तो कोई नम्र, सुशील और सेवापरायण। एक बहिन उसे सीने-पिरोने में चतुर और बेल-बूटे एवं क़सीदा काढ़ने वाली अच्छी भाभी के रूप में पाने के लिए उत्सुक है, तो एक सहेली उसे अपने सुख-दुःख का सच्चा साथी बनाना चाहती है। सास चाहती है कि मेरी बहू परिश्रमी हो, प्रेम रखती हो, मुझे घर का काम-काज करती देख बैठी न रह सके और मेरे 'ना-ना' कहते रहने पर भी आग्रह और स्नेहपूर्वक वह काम कर डाले। पति और ससुर की भी यह इच्छा है कि बहू भोजन बनाने में चतुर हो: एक पाव घी में वह चीज बनावे जिसमें एक सेर घी का स्वाद आवे!

इस प्रकार विवाह के बाद पति-गृह में आने पर, अपनी-अपनी इच्छा और आदर्श के अनुसार, भिन्न-भिन्न व्यक्ति बहू से भिन्न-भिन्न प्रकार की

कुछ व्यावहारिक बातें

आशाएँ रखते हैं। ये अशाएँ इतनी अधिक और इतने अधिक प्रकार की होती हैं कि दुनिया में अच्छी से अच्छी और ऊँचे आदर्श वाली कोई एक ही स्त्री उनको पूरा नहीं कर सकती क्योंकि कई बार तो वे स्वयं ही एक दूसरे की विरोधी होती हैं। किन्तु इन बातों से नवागता बहू को जरा भी घबड़ाना न चाहिए। यह उसकी परीक्षा का समय होता है। इस समय ससुराल वाले अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उसका मूल्य आँकते हैं। इस समय लड़की ससुराल में अकेली होती है; कोई उसको समझने वाला, कोई उसका सहायक नहीं

होता। इस अपरिचित कुटुम्ब और समाज में उसे स्वयं ही अपना परिचय देना पड़ता, अपना हृदय दूसरों को समझाना पड़ता है। इसलिए इस अकेलेपन से, इस बोझ से लड़की को घबड़ा कर बैठ न जाना चाहिए और न किसी प्रकार की निराशा, थकावट एवं उदासी प्रकट करनी चाहिए। उसे एक ओर ईश्वर और दूसरी ओर पति में श्रद्धा और विश्वास रखकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी ज़िम्मेदारी को निबाहने में लग जाना चाहिए। उसे बराबर के पद और अवस्था वाली सहेलियों एवं ननदों से मधुरतापूर्वक स्नेह के साथ बोलना चाहिए, बड़े पद या अवस्थावाली जेठानियों तथा अन्य स्त्रियों के प्रति आदर रखते हुए उनकी सेवा करना और उनके काम में हाथ बटाना चाहिए। बच्चों को गोद में लेकर उन्हें स्नेह करने, पास बुलाकर उनसे प्रेम पूर्वक बात-चीत करने एवं उनसे मीठी और अच्छी शिक्षा देनेवाली बातें करने से बहुत जल्द वश में हो जाते और प्रेम करने लगते हैं क्योंकि उनका निर्दोष, सरल और निष्कपट हृदय तर्क एवं बुद्धि के जाल में नहीं फँसा होता, वे जहाँ प्रेम देखते हैं वहीं रीझ जाते हैं।

इसी प्रकार सास ससुर की सेवा में नम्रता, मधुरता और आदर का भाव होना चाहिए। उनके सामने यथासम्भव कम बोलना—धैर्य की बात नहीं करनी चाहिए। बहू के हृदय में सास-ससुर के प्रति वही भाव होना चाहिए जो माता-पिता के प्रति होता है। वे अगर दो कड़ी बात भी कह दें तो सुन लेना चाहिए और जवाब नहीं देना चाहिए, न उन बातों के कारण उनके प्रति भाव या व्यवहार में अन्तर ही पड़ना चाहिए।

ससुराल का कार्यक्षेत्र एक ही समय में कई प्रकार का होता है। आरम्भ में उन सब पर ध्यान देने से अच्छा रहता है। कहीं जूठे बर्तन इधर-उधर पड़े हों, तुमका दूसरे की राह न देखकर खुद उन्हें माँज कर एक जगह, नियत स्थान पर, सजाकर रख देना चाहिए। कहीं गन्दगी देखो तो झट उसे साफ़ कर देना चाहिए। बैठने-उठने, खाने-पीने के स्थान को खूब साफ़ सुथरा रखना चाहिए। घर का साधारण काम-काज कर चुकने पर भी, आवश्यकता पड़े तो, सास एवं जेठानियों के

सेवामय जीवन

पाँव दबाने एवं मीठी-मीठी बातों से उन्हें सन्तुष्ट करने को अपना एक खास काम समझना चाहिए। सबसे मधुरतापूर्वक बोलो और सबसे सरलता एवं सच्चाई की बातें करो। ऐसा नहीं कि ससुराल में एक स्त्री से तुम कुछ कहो और दूसरी से कुछ। प्रायः ऐसा होता है कि सब को खुश रखने के खयाल से कोई स्त्री जब एक से बात करती है तो दूसरी की बुराई करती है और दूसरी से बात करती है तो पहली की बुराई करती है। यह बड़ा खराब, नीचे गिराने वाला और ख़तरनाक ढंग है। इससे सदा बचो। किसी की बुराई न तो दिल में सोचो और न दूसरे से करो। कोई करे भी तो उसपर ध्यान मत दो।

चाहे तुम काम-काज से कितनी ही थकी होओ किन्तु तुमसे कोई काम करने को कहा जाय तो बिना अपनी थकावट और आलस्य प्रकट किये, बिना उलाहना दिये या मन में बुरा भाव लाये, प्रसन्नतापूर्वक उठकर वह काम करना चाहिए। सदा यह खयाल रक्खो कि तुम्हारे इस कष्ट-सहन और परिश्रम का फल तुम्हारे और तुम्हारे पति के लिए, तुम दोनों के भावी जीवन के लिए मीठा होगा। इतनी सेवा और कष्टसहिष्णुता के बाद यदि दो-चार दिन के लिए भी तुम ससुराल से कहीं चली जाओगी तो लोग तुम्हारा अभाव अनुभव करेंगे।

दूसरी बात यह कि इतना करते हुए अपने मन में किसी प्रकार का अहङ्कार नहीं आना चाहिए। अपनी विद्या, अपनी सेवा, अपने परिश्रम पर कभी गर्व मत करो, बल्कि कोई बात कहते या कोई काम करते समय नम्रता की मूर्ति बनी रहो; हाँ, उस नम्रता में बनावट न हो, सच्चाई हो।

बहुत-सी लड़कियाँ अपने को एकाएक ससुराल के अपरिचित समाज के बीच देख घबड़ा जाती हैं। यह स्वाभाविक है, किन्तु यह खयाल करके कि अब हमको यहाँ, इन्हीं लोगों के साथ रहना है, इन्हीं लोगों के सुख-दुःख पर मेरा सुख-दुःख निर्भर है, अपनी निराशा और उदासी दूर कर देनी चाहिए और अपने काम में लग जाना चाहिए। धीरज और शान्ति से सब काम ठीक हो जायँगे।

विवाह के बाद ससुराल जाने पर, आरम्भ में—और यों तो सदा ही—इस

बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे बोलने-चालने, बैठने-उठने में असभ्यता न टपकती हो। बड़ों, छोटों और बराबर वालों से कैसे भले घर की बेटी बोलना, कैसे व्यवहार करना, यह ऊपर मैं बता चुका हूँ। लड़की किस तरह उठती-बैठती है, इसका भी बहुत जगह बड़ा खयाल रक्खा जाता है। यह सब लड़की की अपनी बुद्धि पर निर्भर करता है कि वह अपनी मधुर वाणी, अपने सुविचार, अपनी नम्रता और अपनी सेवा एवं व्यवहार से सब के मन पर अपना अधिकार जमाले। किसका स्वभाव कैसा है, किससे किस तरह का व्यवहार करने से कुटुम्ब की शान्ति बढ़ेगी और सबका जीवन सुखी होगा, इसे सोच-समझकर उससे उसी तरह का—पर हर अवस्था में मीठा—व्यवहार करना चाहिए। थोड़े में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि तुम्हारे प्रत्येक शब्द, प्रत्येक व्यवहार से यह बात टपकनी चाहिए कि तुम एक भले घर की बेटी हो; अच्छी संगति में रही हो और तुम्हारा हृदय उदार, स्वच्छ और निर्मल है।

लेकिन अपने को परिचित करने और दूसरों पर अपना प्रभाव डालने में जल्दबाजी मत करो। तुमको यह आशा नहीं करनी चाहिए कि छः-सात दिन के अन्दर ससुराल वाले तुम्हें उतनी अच्छी तरह समझ जायंगे जितनी अच्छी तरह जन्म देने वाले माता-पिता और जन्म से तुम्हें जानने और देखनेवाले भाई-बहिन समझते हैं। यदि ऐसी आशा करोगी तो धोका खाओगी। जो स्नेह एका-एक—बहुत जल्द बढ़ जाता है, उसकी नींव बहुत कमजोर होती है और जरा सी गलती होते ही, एक धक्के में, टूट जाती है। भगवान् में, पति में, अपने हृदय की पवित्रता में, विश्वास रख कर धीरे-धीरे सबको समझना और अपने को सबके हृदय तक पहुँचाना चाहिए। यह याद रक्खो कि मनुष्य-चरित्र बड़ा गूढ़ है। बहुत से आदमी ऊपर से अच्छे मालूम होते हैं, पर अन्दर से नीच होते हैं। इसी प्रकार बहुत-से आदमी भीतर से अच्छे होते हैं, पर ऊपर से बड़े रूखे लगते हैं इसलिए किसी के बारे में झट अपनी राय मत कायम करो। अच्छी तरह सोच-समझ कर, भली-भाँति परख कर ही किसी के सम्बन्ध में निश्चित राय कायम करो; साथ ही अपनी भूल मालूम हो जाने पर, अपनी राय

बदलने के लिए भी सदा तैयार रहो। दुनिया में आदमी को ठीक-ठीक समझ लेना एक अत्यन्त कठिन काम है। कभी तो जहाँ हमें विश्वास करना चाहिए वहाँ हम अविश्वास करके दूसरों के साथ अन्याय करते हैं और कभी जहाँ सावधानी रखनी चाहिए वहाँ बहुत अधिक विश्वास करके परिस्थिति जटिल कर देते हैं। इसलिए इस विषय में धीरज, उदारता और विवेक से काम लेना चाहिए।

इतनी बातों के साथ मुख्य बात तो यह है कि पति के हृदय को विवाह के बाद के दिनों में तुम अच्छी तरह समझ लो। उन पर विश्वास करके, उनसे सलाह लेकर काम करने से दोनों में एक दूसरे के प्रति प्रीति बढ़ेगी और गृहजीवन में सन्तोष और तृप्ति का अनुभव होगा। दोनों के हृदय एक दूसरे के निकट आते जायँगे।

: ८ :

प्रेम बनाम अधिकार

अजमेर

१२-११-३०

प्रिय भगवती,

आजकल स्त्रियों की शिक्षा और स्वाधीनता की समस्या लेकर अधिकार का नया झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। कहा जाता है कि स्त्रियाँ पुरुषों की गुलाम नहीं हैं; उन्हें भी संसार में पुरुषों के समान अधिकार क्यों न दिये जायँ? जब मैं किसी भारतीय नारी के मुँह से यह बात सुनता हूँ तो मुझे उस पर तरस आती है। यूरोपीय सभ्यता की चमक-दमक नया रंग दिखा रही है। लेक्चर देने, सहभोज में पुरुषों की तरह, मेहमान के स्वास्थ्य के नाम पर, शराब के प्याले खाली करने, व्यापार करने और दूकान खोलने तथा पति जैसे रोज बाहर जाते समय साधारणतः स्त्री से नहीं पूछता वैसे ही

दिन भर, पति से पूछे बिना मित्रों के यहाँ घूमने को स्वतन्त्रता कहकर स्त्रियों को भड़काया जा रहा है। इसके साथ कौंसिलों और म्युनिसिपैलिटियों में जाने, बैठने और अख़बारों में फोटो छपाने का शौक भी स्वतन्त्रता में दाख़िल है। पुरुषों को इन बातों का अधिकार है: वे इस विषय में स्वतन्त्र हैं, फिर स्त्रियों ने क्या अपराध किया है, थोड़े में यही तर्क का सारांश है।

मैं नहीं कहता कि इनमें से मध्यपान की लत के अलावा एक बात भी बुरी है पर मैं तुमसे के साथ, यह कहना चाहता हूँ कि जिस ढङ्ग पर, जिस प्रकार, यह सब हो रहा है, वह अवश्य बुरा है। हमारे लिए इसका पालन कभी अच्छा न होगा। स्त्रियों को पुरुषों के बराबर ही अधिकार मिलें, इसका मैं विरोधी नहीं। पर अधिकार के इस झगड़े के पीछे जो प्रवृत्ति, जो इच्छा काम कर रही है, उसका मैं विरोधी हूँ।

वे और ये !

मैं उच्च शिक्षाप्राप्त और ऊँचे कुलों की अनेक लड़कियों को जानता हूँ, मैंने स्त्रियों को बहुत अधिक स्वतन्त्र रूप में भी देखा है और सन्देह-शील सास तथा बड़ी-बूढ़ियों के पहरे के अन्दर भी देखा है। सभाओं में खड़ी होकर देश और समाज की व्यवस्था पर लेक्चर देने और हमारी 'गँवार एवं अज्ञान' बहिनों की दुर्दशा पर आँसू बहाने वाली स्त्रियों से भी मेरा परिचय है और देवरों से परदा करने वाली ऐसी स्त्रियों को भी जानता हूँ जिनके लिए 'काले अक्षर भैंस बराबर' हैं। पर अच्छी तरह नाप-तौल कर और कसौटी पर कस कर मैं यही जान पाया हूँ कि इन उपदेश देने और 'उद्धार' करने वाली स्त्रियों से गाँव की सीधी-सादी, भोली और अज्ञान स्त्रियाँ स्त्रीत्व के आदर्श के कहीं अधिक निकट हैं। इन दोनों में कौन अच्छी है, कौन बुरी इसका निर्णय नहीं हो सकता। पर जो लोग चरित्र को, हृदय की निर्मलता को, शरीर, बुद्धि और तर्क से अधिक कीमती समझते हैं उनमें से बहुतों को स्त्रियों के वर्तमान आन्दोलन की दिशा देखकर मैंने आशङ्का और असन्तोष प्रकट करते देखा है।

जो बहिनें यूरोप के स्वतंत्र और उच्छृङ्खल गृहजीवन को देखकर, उसकी

चमक-दमक और आकर्षण में, बिना विचारे, बही जा रही हैं और इसी में स्त्रियों की स्वतन्त्रता देखती हैं वे निश्चय ही प्रेम और विवाहित जीवन के हमारे ऊँचे आदर्शों को भूल गई हैं। यूरोप में विवाह विषय-भोग तथा घरेलू जीवन की सुविधाओं के लिए समाज-द्वारा स्वीकृत एक ठेके, एक समझौते के समान है और हमारे यहाँ धर्म के बन्धन में दो प्राणियों के मिल कर एक हो जाने की अवस्था का नाम है। यूरोप में विवाह के बाद भी स्त्री-पुरुष ज्यों के त्यों अलग बने रहते हैं; समाज केवल उनके सहवास—एक स्थान में रहने, और शारीरिक सम्बन्ध—का औचित्य स्वीकार कर लेता है। मैं जानता हूँ कि इस समय बहुत अंशों में हमारे यहाँ भी अवस्था यही है फिर भी आदर्श की भिन्नता के कारण सतीत्व का जितना ऊँचा भाव हमारे यहाँ है उतना और कहीं नहीं है। 'पतिव्रता' के लिए अंग्रेज़ी या यूरोपीय भाषाओं में कोई शब्द ही नहीं है। हमारे यहाँ किसी लड़की की शारीरिक पवित्रता का नष्ट हो जाना इसलिए पाप नहीं है कि वह एक बार गिर जाने पर फिर ऊँचा उठ नहीं सकती या उसमें कोई खास खराबी आ जाती है; यह तो इसलिए है कि विवाहित जीवन का—एक ही पति के अस्तित्व में अपने को भुला देने, दोनों के मिलकर बिल्कुल एक हो जाने का, हमारा जो आदर्श है उससे हम इसमें बहुत दूर हट जाते हैं। यूरोप में एक दूसरे की सहायता से अपने व्यक्तित्व का विकास करना विवाह का आदर्श है; हमारे यहाँ एक-दूसरे के जीवन में मिलकर अपने अस्तित्व को खो देना—एक हो जाना विवाह का आदर्श है।

हिन्दू संस्कृति में विवाह का आदर्श

आजकल 'अधिकार-अधिकार' की जो आवाज़ उठाई जा रही है उसकी जड़ में एक तरह की बदले की भावना है। पुरुष ऐसा करते हैं तो स्त्रियाँ क्यों न करें? पुरुष दूसरा तीसरा, मनमाने विवाह कर सकता है तो पति के मर जाने पर भी स्त्री क्यों व्याह न करे; वह क्यों आजन्म विधवा बनी बैठी रहे। पुरुष कौंसिलों में जाते हैं तो स्त्रियाँ क्यों नहीं जा सकतीं। पुरुष मित्रों के

बदले की यह भावना!

साथ घूमते, अकेले नाटक और सिनेमा देखने जाते, अन्य शिक्षित स्त्रियों से मिलते-जुलते और हँस-हँसकर बात-चीत करते हैं तो स्त्रियों को ही क्यों पतिव्रत का उपदेश किया जाय ?' आजकल स्त्रियों का जो आन्दोलन चल रहा है, उसमें यही तर्क, यही बात बार-बार लाई जाती है। मैं यह मानता हूँ कि ये तर्क भद्दे और निस्सार हैं; इनसे पुरुषों का मुँह बन्द किया जा सकता है पर स्त्रियों को सच्चा सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकता। मैं मानता हूँ कि पुरुषों को कुछ कहने का अधिकार नहीं रह गया है; उनसे स्त्रियाँ ज्यादा वफ़ादार, सहनशील और त्यागी हैं पर मैं यह पूछता हूँ कि क्या इस तर्क से और इस तर्क के अनुसार चलने से स्त्रियाँ ज्यादा सुखी होंगी ? मैं भारतीय स्त्री-आन्दोलन के प्रत्येक नेता से यह कहता हूँ कि इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले आँख मूँदकर दो मिनट सोचो और जवाब दो कि क्या इससे, इस तर्क के अनुसार, पुरुषों के समान स्वतन्त्रता पाकर, उनके समान ही दूसरा-तीसरा व्याह करने, कौंसिलों में जाने और घूमने फिरने की सुविधाएँ मिल जाने से वे सुखी हो जायँगी ? यह एक गम्भीर प्रश्न है जो मैं धारा में बहे जाते हुए प्रत्येक भाई-बहिन से पूछता हूँ।

सदुपयोग और दुरुपयोग

तुम यह मत समझना—एक मिनट के लिए भी ऐसा सोचना मेरे जीवन की गति के साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा—कि मैं स्त्रियों के अधिकार दिये जाने का विरोधी हूँ। नहीं, उलटे मैं सदा से इसका व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनों प्रकार से समर्थन करता रहा हूँ पर आन्दोलन की तह में पैठ कर, इसकी कई प्रधान स्त्रियों से मिलकर, उनका अट्टहास, उनका तर्क, उनकी अस्थिर-चित्तता देखकर मुझे आश्चर्य होता है। तलवार बुरी चीज़ नहीं; उससे किसी दुखिया की रक्षा भी की जा सकती है और एक निर्दोष निर्बल आदमी की हत्या भी की जा सकती है। उसकी बुराई-भलाई उपयोग करने वाले की चित्तवृत्ति और मानसिक अवस्था पर निर्भर है। अधिकार कोई बुरी चीज़ नहीं, पर अधिकार की माँग के पीछे जो बदले की, होड़ की, ईर्ष्या की भावना बोल रही है उसने इस आन्दोलन की सात्विकता, पवित्रता

नष्ट करदी है और इसे मोल-तोल एवं दूकानदारी की चीज़ बना दिया है। जहाँ अधिकार के पीछे यह तर्क हो, यह भाव हो कि हम उसे लेकर सेवा के, कर्तव्य पालन के लिए अधिक योग्य बनें, अपने मार्ग पर अधिक दृढ़ता और सच्चाई से आगे बढ़ सकें वहाँ अधिकार मिल जाने पर मनुष्यता की वृद्धि होती है; वहाँ तलवार का सदुपयोग होता है, उससे सेवा में, आत्म-बलिदान में, परोपकार में काम लेते हैं। जहाँ अधिकार के पीछे यह तर्क, यह भाव हो कि हमारे समाज का एक दल उसे भोग रहा है तो हम भी क्यों न भोगें, वहाँ हृदय में सात्विक प्रेरणा की जगह प्रतिद्वन्द्विता की, प्रतिक्रिया और होड़ की, ईर्ष्या-द्वेष की दौड़ चलती है। ऐसी जगह अधिकार मिल जाने पर हम उसका दुरुपयोग करते हैं; दूसरे दल को गिराकर, दबाकर उससे आगे बढ़-जाने की कोशिश करते हैं। यह तलवार द्वारा हत्या करने के समान है। ऐसी जगह विवेक—भरे बुरे का भाव—नष्ट हो जाता है, केवल यह भाव रह जाता है कि दूसरे दल से आगे कैसे बढ़ा जाय? ऐसे समय यह बात भूल जाती है कि हम अच्छी बात के लिए होड़ कर रहे हैं या बुरी के लिए। मुझे दुःख है कि वर्तमान स्त्री-आन्दोलन में सुधार और आत्म-संयम, विश्वास और आदर्श की अपेक्षा बदले और होड़, अविश्वास और दुकानदारी की भावना अधिक है।

मैं ये बातें न कहता, मैं जानता हूँ कि जो कुछ मैंने कहा है उसे कहना बड़े साहस का काम है और आजकल के फैशन एवं समाज-सेवक की 'पालिसी' (नीति) के विरुद्ध है। मैं जानता हूँ कि ये बातें विरोध का तूफान उठाने वाली हैं पर मैं निन्दा और अपयश के लिए सिर झुकाकर भी ये बातें अधिक से अधिक जोर के साथ इसलिए कहना चाहता हूँ कि मैं स्त्रियों की, बहिनों की सदाशयता का, उनके भोलेपन और उनकी वफ़ादारी का भक्त हूँ। मैं ये बातें इसलिए कहता हूँ कि मुझे स्त्रियों का हितैषी होने का अभिमान है; मैं पुरुष को नीचे गिरते तो देख भी सकता हूँ पर स्त्री को स्त्रीत्व छोड़कर गिरते देख ऐसा मालूम होता है कि हमारी धरोहर का बचा-खुचा हिस्सा भी

पुरुष के नाते नहीं!

जलकर राख हुआ जाता है—जैसे नींव खिसक रही है!

मैं बिना किसी हिचकिचाहट के मान लेता हूँ कि समाज की नींव में घुन लग रहा है। उसका संगठन बिखर गया है। मैं मानता हूँ और पहले भी लिख चुका हूँ कि पुरुष अत्यन्त दम्भी, लोलुप और बढ़-बढ़कर डींग मारनेवाला हो गया है; वह निजी जीवन के सदाचार से गिर गया है; झूठी बड़ाई, झूठी शक्ति, समाज के अन्दर झूठी इज्जत के लिए वह नीच से नीच काम करने को तैयार हो जाता है; स्त्रियों के प्रति वफ़ादारी और सचाई का व्यवहार करना वह भूल गया है। स्त्री उसके लिए मनबहलाव की, वासना-तृप्ति की चीज़ हो गई है। पर इसका यह मतलब नहीं कि स्त्री त्याग और वफ़ादारी के ऊँचे आदर्श से ऊब जाय और पुरुषों की तरह अपने को पतन की खाई में, गिरा दे। विवेक यह है कि लोगों को ऊँचा उठते देखकर हम ऊपर उठें और किसी को नीचे गिरा देख हम उस रास्ते से बचें जिस पर चलने के कारण उसका पतन हुआ; न कि उसकी तरह हम भी नीचे गिर जायँ। स्त्री पुरुष की माता है; उसके गर्भ से जन्म लेकर, उसका दूध पीकर पुरुष बढ़ता है। इसलिए हर हालत में स्त्री का दर्जा पुरुष से श्रेष्ठ है। वह ज्यादा ऊँची चीज़ है इसलिए उसे जीवन में सदा ही ज्यादा त्याग करना पड़ेगा। एक पुरुष के नष्ट हो जाने से समाज की उतनी हानि नहीं होती जितनी एक स्त्री के नीचे गिर जाने से होती है।

स्त्री श्रेष्ठतर जीव है!

फिर जो बहिनें यह समझ रही हैं कि यूरोप की स्त्रियाँ आज भारतीय स्त्रियों से अधिक सुखी और स्वतन्त्र हैं वे भूलती हैं। भारतीय नारी अपनी पश्चिमी बहिन से कम सुखी नहीं। यूरोप में, विशेषतः नगरों में, गृह-जीवन तो नाम-मात्र को रह गया है। होटल में कमरे किराये पर ले लिये जाते हैं; खाना आ जाता है। पुरुष अपनी मनोविनोद की सभाओं (क्लबों) में जाते हैं; स्त्रियाँ अपनी में। कुछ क्लब ऐसे भी हैं जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों जाते हैं। पति यदि ऐसे क्लब में जाता है तो स्त्री दूसरे में। शारीरिक पवित्रता

वहाँ के हाल-चाल!

और सतीत्व के आदर्श को छोड़कर देखें तो भी ऐसा जीवन पति-पत्नी के परस्पर प्रेम और सन्तान के उचित विकास में दूर तक सहायक नहीं हो सकता। हमारे यहाँ पत्नी माता है, पत्नी सखी है; पत्नी गृहणी है पर यूरोप में, सभ्य घरानेमें, पत्नी केवल प्रेमिका है। यह अवस्था ऊँचे, सभ्य, धनी और शिक्षित घरानों की ही अधिक है। गाँवों के सीधे-सादे किसान अब भी, यूरोप में भी, अधिक प्रेमपूर्ण कौटुम्बिक जीवन बिताते हैं। प्रेमिका के रूप में पत्नी को देखने का अर्थ यह होता है कि पुरुष और स्त्री दोनों को माता, मित्र और गृहणी के रूप में अन्य स्त्री पुरुषों की आवश्यकता बनी रहती है और फिर स्त्री सदा ही प्रेमिका रूप में भी प्राप्त नहीं होती; फल यह होता है कि शारीरिक आकर्षण नष्ट होते ही या उसमें कमी आते ही पत्नी की ओर से पति और पति की ओर से पत्नी की उदासीनता बढ़ती जाती है और वे एक-दूसरे से पहले हृदय की, और फिर व्यवहार की दुनिया में दूर हटते जाते हैं। वहाँ स्त्रियों को सब प्रकार के अधिकार तो मिले हुए हैं; वे मित्रों के साथ अलग घूम सकती हैं; वे घर जिसे चाहे बुला सकती हैं; वे पति को परिचय दिये बिना अपने स्त्री-पुरुष मित्रों से पत्र-व्यवहार कर सकती हैं, वे तलाक़ देकर दूसरा, तीसरा विवाह भी कर सकती हैं पर इन बातों का नतीजा यह हुआ कि पुरुष और स्त्री, पति और पत्नी दोनों असन्तुष्ट, अतृप्त-से, छटपटाते हुए, अपना-अपना विकल हृदय लिये, इधर-उधर घूम रहे हैं। उन्हें शान्ति नहीं मिलती है। पुरुष-स्त्री का विरोध इतना बढ़ गया है कि स्त्रियाँ पुरुषों को दोष देती हैं, गालियाँ देती हैं और पुरुष स्त्रियों की हँसी उड़ाते हैं। स्त्रियाँ पुरुषों के विरोध में सभाएँ क़ायम कर रही हैं और पुरुष स्त्री-बहिष्कार मण्डलों की स्थापना कर रहे हैं। इस कटुता में सब अधिकार लेकर भी दोनों असन्तुष्ट हैं, दोनों अपनी-अपनी क़िस्मत को रो रहे हैं। हफ़्तों बीत जाते हैं पति को पत्नी का और पत्नी को पति का पता नहीं चलता। अधिकार का प्रश्न इतना बढ़ गया कि दोनों के हृदय के बीच प्रेम का स्थान भी उसी ने ले लिया। जहाँ पति-पत्नी में प्रेम नहीं है, जहाँ अपने सुख की जगह दूसरे के सुख का भाव अधिक नहीं है वहाँ सुख क्या मिल सकता है? पति बीमार पड़ता है तो पत्नी

दाइयों और डाक्टरों को बुला देती है और रोज़ दो-चार बार बीमार का हाल पूछकर अपने कर्तव्य की समाप्ति समझ लेती है। जो भारतीय स्त्रियाँ पश्चिम के इस चकाचौंध से अन्धी नहीं हो गई हैं वे ऐसी अवस्था में रात-दिन पति का साथ नहीं छोड़तीं; हज़ार नौकर रहने पर भी प्रत्येक काम अपने हाथ से किये बिना चैन नहीं पड़ता। बीमारी बढ़ जाने पर उनके मन में यही आता है कि इनके बदले यह बीमारी मुझे हो जाय। इन दोनों प्रकार के मनोभावों में कितना अन्तर है!

क्या अधिकार से प्यास बुझेगी?

अधिकार एक जड़ वस्तु है। अधिकार के द्वारा धन मिल सकता है; अधिकार के द्वारा यश मिल सकता है; अधिकार से अच्छा मकान, अच्छी मोटर मिल सकती है पर अधिकार के द्वारा हृदय वश में नहीं किया जा सकता; मनुष्य का हृदय जड़ वस्तुओं से तृप्त नहीं हो सकता: वह मशीन नहीं है। सुख के लिए हृदय में प्रेम और शान्ति चाहिए। प्रेम और शान्ति होने पर जड़ वस्तुओं की सुविधा से सुख की मात्रा बढ़ सकती है पर केवल इन्हीं वस्तुओं को लेकर सुख की खोज करना मूर्खता है। सुख हृदय की शान्ति और सन्तोष की एक अवस्था है। यह अवस्था धन और यश से प्राप्त नहीं होती, उलटे बहुधा नष्ट हो जाती है। इसलिए जो बहिनें सुख से विवाहित जीवन बिताना चाहती हैं उनके ही हित और स्वार्थ के ख़याल से यह जरूरी है कि वे इन बातों को अच्छी तरह समझ लें। यदि वे दुनिया की सुविधाएँ चाहती हैं और इसी में सुख समझती हैं तब तो अधिकार के झगड़े में वे खुशी से पड़ें किन्तु वे हृदय का सुख, शान्ति और प्रेम चाहती हैं तो इस मृगतृष्णा के चक्कर में न पड़ें।

इटली की प्रसिद्ध महिला श्रीमती जिना लोम्ब्रोसो फरेरो ने इस सम्बन्ध में एक बार ऊबकर यही बात लिखी थी। वे, नीचे गिराने वाली मनोवृत्तियों (अपराध-विज्ञान) की यूरोप में एक प्रसिद्ध जानकार मानी जाती हैं। उन्होंने अधिकार-प्राप्त स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा था—

"……परन्तु इन विजयों से क्या स्त्रियों के सुख में कुछ वृद्धि हुई?

जब मुझसे यह सवाल किया जाता है तो मैं यही जवाब देती हूँ कि मुझे तो इसमें सन्देह है। मेरे विचार से प्रेम ही स्त्रियों की निश्चित और कभी न बदलने वाली आकांक्षा है। प्रेम उनके स्वर्ग का चमकता हुआ सूर्य है पर शारीरिक आकर्षण के रूप में वाहियात और वासना-पूर्ण प्रेम नहीं, बल्कि वह प्रेम जिसमें माता और बालक की नाईं एक दूसरे का ख़याल और श्रद्धा रहे। स्त्रियाँ ऐसे प्रेम को अपना उद्देश्य बनायें तो स्वतन्त्रता, स्वाधीनता, मताधिकार, सम्पत्ति, शक्ति अथवा वैभव की अपेक्षा इससे उनका अस्तित्व स्थिर—अमर होगा।"

अधिकार के झगड़े में पड़ने के पहले प्रत्येक बहिन अच्छी तरह सोच ले कि वह प्रेममय जीवन चाहती है या अधिकारमय। मेरे निकट तो प्रेममय हृदय से हीन स्त्री, स्त्री ही नहीं है। स्त्री हृदय की देवी है, पुरुष दिमाग़ का—शरीर का राजा है। इसलिए प्रेमहीन पुरुष उतना भद्दा नहीं लगता पर प्रेमहीन स्त्री तो कुटुम्ब, समाज और स्वतः अपने जीवन के लिए भार-रूप है। स्त्री यदि सचमुच स्त्री है तो प्रेम ही उसका सर्वस्व होगा। वह प्रेम से ही विजय प्राप्त करती है और प्रेम ही चाहती है। अधिकार का झगड़ा ही प्रेम के सामने नहीं उठ सकता। यह झगड़ा वहीं उठता है जहाँ प्रेम का अभाव होता है। जहाँ प्रेम है वहाँ स्वार्थ की, अपने सुख की भावना ही नहीं उठती। वहाँ लेने की जगह ज्यादा-से-ज्यादा देने का—आत्मसमर्पण का भाव रहता है। इसलिए कभी असन्तोष का प्रश्न ही नहीं उठता और यदि अधिकार की दृष्टि से भी देखें तो मैं कह सकता हूँ कि क़ानून-क़ायदे से मिले अधिकारों के द्वारा गृहस्थ-जीवन का सुख नहीं बढ़ाया जा सकता। मेरी समझ में तो प्रेम का अधिकार ही सच्चा अधिकार है। जहाँ देने में देनेवाले की इच्छा नहीं; जहाँ देने में देनेवाले को प्रसन्नता नहीं होती, उलटे दुःख होता है वहाँ न तो देने का कुछ अर्थ है, न लेने में कुछ आनन्द है।

तुम क्या चाहती हो ?

इसलिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि त्यागमय, सेवामय, और प्रेममय जीवन सदा अधिकारमय जीवन से अच्छा है। स्त्रियों का आदर्श स्त्रियाँ हैं,

पुरुष नहीं। स्त्रियों को अपना आदर्श, अपना रास्ता सती, सावित्री, सीता, दमयन्ती इत्यादि के प्रकाश में चुनना चाहिए; विषयभोग में पड़े हुए तथा कुरीतियों के शिकार पुरुषों को आगे रखकर नहीं।

दूसरे, हृदय पर अधिकार करने के लिए सेवा और प्रेम से अधिक शक्तिमान दूसरा उपाय नहीं है। ये दोनों अधिकार के माता-पिता हैं। इनसे स्वभावतः ही अधिकार प्राप्त हो जाता है। और यदि प्रेम करके बदले में प्रेम प्राप्त न हो तो भी तुम फ़ायदे में रहोगी क्योंकि इससे तुम्हारा मन अधिक निर्मल और शान्त रहेगा; तुम अपने अन्दर एक अनोखी शक्ति का अनुभव करोगी; दूसरों के सुख को देखकर जलने वाली स्त्रियों के समान तुममें अशान्ति और चिड़चिड़ापन नहीं आयेगा। तुम जहाँ जाओगी अपनी पवित्रता और सेवा से दूसरों का भार हलका करोगी।

अधिकार के माता-पिता

अधिकार के झगड़े में सब से बड़ी बात, जिसे स्त्रियाँ भूल गई हैं, यह है कि पुरुष-स्त्री दोनों को एक साथ रहना है और एक में मिलकर जीवन की, समाज की रचना और सेवा करनी है। दोनों सदा के लिए एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। किसी भी अवस्था में हो, सामूहिक रूप से स्त्रियों को पुरुषों पर और पुरुषों को स्त्रियों पर निर्भर करना ही पड़ेगा। इसलिए इसकी जगह कि पुरुष स्त्रियों की बुराई करें, उन्हें भोग-विलास की पुतलियाँ समझकर हर समय उनके लिए सशङ्क रहें और स्त्रियाँ पुरुषों को स्वार्थी मानकर उनके विरुद्ध विरोध और शङ्का का एक तूफ़ान खड़ा करें, यह ज्यादा अच्छा है कि दोनों हर हालत में एक-दूसरे के दुःख-सुख, एक-दूसरे की कठिनाइयों का सहानुभूति के साथ विचार करें और प्रेम-पूर्वक उन्हें मिल-जुलकर हल कर लें।

क्या दोनों स्वतन्त्र हो सकते हैं?

बहुत-सी स्त्रियाँ प्रेम को, हृदय को, बाज़ार में बिकनेवाली चीज़ के समान समझती हैं। ऐसी स्त्रियाँ जीवन में दुखी और निराश रहती हैं क्योंकि वे सहज ही जिस प्रेम को प्राप्त करना चाहती हैं वह उन्हें नहीं मिलता। इसमें दोष उन्हीं का है। ऐसी

प्रेम का मूल्य प्रेम है!

बहिनें यह समझ लें तो अपना बड़ा उपकार करेंगी कि प्रेम तभी सार्थक होता है जब उसमें सब कुछ चढ़ा देने का भाव रहता है। बिना इस भक्ति और त्याग के भाव के प्रेम का कुछ मूल्य नहीं है। जहाँ ऐसा प्रेम होता है वहाँ कभी असन्तोष और अतृप्ति का अनुभव नहीं होता—वहाँ निश्चय ही प्रेमपात्र पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इसलिए तुम यह अच्छी तरह समझ लो कि प्रेम का मूल्य प्रेम है। यदि तुममें सच्ची प्रीति होगी तो तुम्हारे अन्दर सदा त्याग करने, अपना तन-मन-धन सब कुछ पति के लिए चढ़ा देने की भावना उठेगी। ऐसे प्रेम का फल कभी बुरा नहीं हो सकता। उसमें तुम्हें जीवन की सच्ची शान्ति और हृदय का सच्चा सुख मिलेगा।

इसलिए जिस स्त्री के हृदय में सच्चा प्रेम होता है वह ससुराल के धन-धाम को, हाथी-घोड़े को, नौकर-चाकर को, रुपये-पैसे को नहीं देखती; वह केवल पति को पाकर सन्तुष्ट रहती है। वे स्त्रियाँ बड़ी क्षुद्र हैं और सदा दुखी रहती हैं जो अपनी सुविधाओं के लिए, कभी गहने के लिए, कभी कपड़े के लिए पति से झगड़े मोल लेकर अपने और उसके हृदय के बीच एक दीवार खड़ी कर देती हैं। विवाहित जीवन में पति-पत्नी का एक दूसरे को बुराई-भलाई, कमी-ज्यादती को अपनी ही बुराई-भलाई समझकर सदा एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए, धीरज बँधाना चाहिए और सान्त्वना देनी चाहिए। छोटी-छोटी बातों को लेकर कलह खड़ा कर देने से दोनों एक-दूसरे से दूर होते जाते हैं और अन्त में पछताना ही हाथ रहता है।

इसलिए तुम अपने हृदय को बहनेवाली नदी—गंगा—के समान सदा प्रेम के जल से छलकता रक्खो। प्रेम की इस पवित्र धारा में घर की, आस-पास की सारी मलिनता, सारी बुराई बह जायगी और तुम सन्तुष्ट एवं सुखी रहोगी।

संसार का सबसे बड़ा सुख क्या है?

बिना किसी इच्छा के, बिना किसी स्वार्थ के प्रेम करने में जो सुख है उसका स्थान संसार का बड़े-से-बड़ा अधिकार नहीं ले सकता। *यह दुनिया का सब से बड़ा सुख है।* वे भूलती हैं जो ऐसे अमृतमय सुख का बदला करने को—हीरे को कौड़ियों से बदलने को तैयार हो जाती हैं। विदेशों की

इस चमक-दमक पर न जाना। वहाँ की स्त्रियों से साहस, धीरता इत्यादि गुण अपने अन्दर लेना चाहिए पर पुरुषों एवं स्त्रियों की दलबन्दी के फेर में कभी न पड़ना। यह वह विष है जो जीवन-भर की कमाई नष्ट कर देगा।

आज भी हमारे घरों में स्त्री का जो ऊँचा स्थान है वह संसार में अन्यत्र नहीं है। आज भी बड़े-से-बड़े और पवित्र-से-पवित्र धार्मिक संस्कारों का पालन पत्नी के साथ ही हो सकता है। बहुत प्राचीन कालसे हिन्दू समाज में स्त्री घर की रानी है। वह सच्चे अर्थ में घर की मालकिन है और मातृत्व के मंगलमय भाव से उसका जीवन पवित्र एवं ऊँचा है।

: ६ :

स्त्री-हृदय का हीरा

अजमेर
२७. ११. ३०.

चिरं० भगवती,

पिछले पत्र में मैंने तुम्हें यह बताया था कि आजकल कुछ शिक्षित और असन्तुष्ट स्त्रियों ने स्त्रियों के आन्दोलन में अधिकार का जो झगड़ा खड़ा कर दिया है उसके पीछे कौन-सी भावना काम कर रही है और तुम्हारा, एवं अन्य बहिनों का, उससे दूर रहना अच्छा है। उसी पत्र में मैंने यह भी बताया था कि स्त्री के लिए प्रेम बहुत ही आवश्यक है। इस पत्र में मैं यह बताना चाहता हूँ कि जो प्रेम स्त्री-हृदय के लिए इतना आवश्यक है और जिसके बिना उसे जीवन में सच्चा सुख और रस नहीं मिलता उसका विवाहित स्त्री के मन में क्या आदर्श होता है और स्त्रीत्व के ऊँचे भावों के अनुसार क्या आदर्श होना चाहिए।

सती और पतिव्रता का अर्थ है शरीर से, मन से और वाणी से पति की

मंगल-कामना करना और पति के अतिरिक्त शारीरिक सुख-भोग के लिए किसी भी पुरुष का ख्याल न करना। जो स्त्रियाँ केवल लज्जा अथवा भय से या अन्य किसी कारण से अपनी शारीरिक पवित्रता की रक्षा करती हैं वे सच्चे अर्थ में सती या पतिव्रता नहीं कहला सकतीं। क्योंकि उनके मन में तो अस्थिर और अपवित्र भावनाएँ रहती ही हैं और ऊपर से जो वे बच जाती हैं उसका कारण उनका संयम, उनका सदाचार और आत्म-बल नहीं बल्कि समाज के बन्धन, बेइज्जती का डर और परिस्थिति की जटिलता है। यदि इन बातों की रुकावट दूर हो जाय तो उनको नीचे गिरते देर न लगेगी। इसलिए इसमें उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। सच्ची सती स्त्री वह है जिसके मन में शारीरिक भोग-विलास के लिए पति के सिवा कभी किसी का ख्याल न आवे और सब सुविधाएँ मिलने पर भी जो नीचे न गिरे। यदि उसके पाप-कर्म को देखने वाला कोई न हो, उस पर सन्देह करने वाला कोई न हो, उसके लिए बदनाम होने या किसी प्रकार की सामाजिक एवं कौटुम्बिक हानि की सम्भावना न हो फिर भी उसका मन निर्मल रहे, उसके मन में कोई बुरी भावना न आवे और प्रत्येक अवस्था में पति में उसका स्नेह बना रहे।

सती कौन है ?

हिन्दू नारी इस प्रकार के ऊँचे आदर्श को सैकड़ों वर्षों से निबाहती आई है। उसने इसका सच्चा मूल्य समझा है; इसके लिए पेट में कटार मारकर उसने आत्म-हत्या की है; इसके लिए हँसते हँसते वह आग में जली है। उसने अपनी तपस्या, अपने त्याग और अपने कष्ट-सहन के द्वारा जगत् के सामने स्त्री का एक अपूर्व तेजस्वी रूप प्रकट किया है। इस अधम वासनामय शरीर को उसने अपने पति-प्रेम की अग्नि से पवित्र एवं निर्मल कर दिया है। हिन्दू संस्कृति का इतिहास अनेक महादेवियों के चरित्र से ऐसा उज्वल हो गया है कि इससे अधिक महत्वपूर्ण इतिहास का दूसरा अंग ही नहीं दिखाई देता। गाँव-गाँव में सतियों के देवले और स्मारक बने हुए हैं और विवाह के समय आज भी उनकी पूजा होती है।

वह अपूर्व भाव !

सतीत्व के इस आदर्श भाव ने नारी को कितना पवित्र रूप दे दिया है! पुरुष उसके सामने अशक्त और एक बच्चे-जैसा मालूम होता है। सीता के आगे राम का, सती के आगे शिव का, दमयन्ती के आगे नल का चरित्र नगण्य है। इस नाशमान शरीर को इन महादेवियों ने अमृत से सींचकर अमर कर दिया है।

धर्मग्रन्थों में कहीं-कहीं आदेश है कि पति कैसा ही कुरूप और लँगड़ा-लूला या गुणहीन हो उसकी सच्चे हृदय से पूजा करनी चाहिए। सांसारिक और स्थूल दृष्टि से यह एक बड़ा अन्याय मालूम पड़ता है पर यदि विवाह को केवल शरीर-सम्बन्ध के लिए न समझकर एक आध्यात्मिक बन्धन मानें तो इस बात से एक बहुत बड़ा भाव संग्रह किया जा सकता है। मुझे खुद अभी तक इसका कुछ ठीक अर्थ मालूम न था, पर एक दिन भारत के संसार-प्रसिद्ध विचारक और कवि श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर की एक पुस्तक पढ़ते समय मुझे इसका बिल्कुल ही नया अर्थ मालूम हुआ। जब हम किसी महापुरुष के किसी चित्र को प्रणाम करते हैं तो यह नहीं देखते कि किस काग़ज़ पर, किस रंग से छपा है। काग़ज़ मामूली या भद्दा होगा तब भी हम प्रणाम करेंगे; काग़ज़ अच्छा होगा तब भी हम प्रणाम करेंगे क्योंकि प्रणाम हम काग़ज़ को नहीं करते काग़ज़ के पीछे जो भाव छिपा होता है उसे करते हैं। इसी प्रकार मूर्ति की बात है। जब हम मूर्ति के आगे सिर झुकाते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि पत्थर के आगे झुकाते हैं। पत्थर तो किसी देव-भाव का आवरण है। हम तो देवत्व के उस ऊँचे भाव के आगे झुकते हैं। जब हम अपने माता-पिता को आदर से प्रणाम करते हैं तो उस समय यह नहीं सोचते कि वे सुन्दर हैं या कुरूप हैं या असमर्थ या अशक्त हैं। वे जैसे भी हों, पूज्य हैं। इसी तरह पति के लिए भी, चाहे वह शरीर से कैसा ही हो, ऊँचा भाव हृदय में धारण किया जा सकता है। चूँकि हमारी उपासना और हमारा स्नेह शरीर से नहीं था, स्त्रियाँ पति-भाव की पूजा करती हैं। वह पति है इसलिए पूज्य है, स्नेहयोग्य है; न कि वह खूबसूरत है या गुणवान है इसलिए पूज्य है। जब हम

भाव की श्रेष्ठ पूजा

किसी छोटे या अयोग्य आदमी को भी सभापति की कुरसी पर बिठा देते हैं तो उसके उस पद पर रहते हुए हमें उसका आदर करना पड़ता है, उसके आगे झुकना पड़ता है क्योंकि आदर हम उस मनुष्य के स्थूल रूप या शरीर का नहीं करते बल्कि उस स्थान का, उस पद का करते हैं। पति-पद पर आसीन होने के कारण ही पुरुष, हमारे आदर्श के अनुसार, स्त्री का आदर-पात्र हो जाता है। यह भाव की श्रेष्ठ पूजा है, शरीर या साधन की आसक्ति नहीं है।

पर आज समय बड़ा कठिन आ गया है। प्रलोभन बढ़ गये हैं, कठिनाइयाँ दिन पर दिन ज़्यादा होती जाती हैं, हमारे अन्दर इतना ऊँचा भाव नहीं रह गया है। पुरुष खुद शारीरिक सुन्दरता के पीछे पागल दिखाई पड़ते हैं। किसी लड़की में सब गुण हों पर वह सुन्दरी न हो तो आजकल के पुरुषों की निगाह में वह विवाह-योग्य कन्या नहीं समझी जाती। पुरुष यदि उससे विवाह कर लेता है तो जैसे बड़ा उपकार करता है। यह हमारा मानसिक पतन है। हमने शरीर को गुणों—दया, क्षमा, प्रेम, शील, त्याग, सेवा इत्यादि—से अधिक महत्त्व दे दिया है। इसलिए जब वह रूप थोड़े दिनों के बाद नष्ट हो जाता है तो पति का पत्नी और कुछ अंश में पत्नी का पति के प्रति विराग हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि सब बहिन-भाई रूप की, शारीरिक आकर्षण की निस्सारता अच्छी तरह समझ लें और शरीर की जगह हृदय का सम्बन्ध जोड़ने और बढ़ाने की कोशिश करें। यह तभी हो सकता है जब पति-पत्नी, पुरुष-स्त्री सब में से रूप का मोह दूर हो जाय।

रूप का जादू

एक और बात के सम्बन्ध में यहाँ सचेत कर देना चाहता हूँ जो सदा तुम्हारे काम आयेगी। आज समाज की हालत बहुत खराब है। पुरुष सदाचार से बहुत नीचे गिर गया है। कालेजों और स्कूल में चरित्र बनने की जगह बिगड़ता ही अधिक है। बहुत-से पुरुष इतने अधम हो गये हैं कि वे रात-दिन बस विषय-वासना की ही बातें करते हैं। उनके यार-दोस्त, उनकी हँसी-दिल्लगी, उनका खान-पान, उनके विचार सब स्त्रियों के प्रति कलुषित भाव

साहस की जरूरत है

तक ही बँधे होते हैं। उनके मन में सदा यही भावना रहती है कि अमुक आदमी की स्त्री ऐसी है; अमुक दोस्त को कैसी खूबसूरत स्त्री मिली है और किस प्रकार उससे परिचय बढ़ाया और उसे जाल में फँसाया जा सकता है। समाज में ऐसी कुलटा या पतित स्त्रियाँ भी हैं जो ऐसे पुरुषों की खोज में रहती हैं; पर संस्कारवश स्त्रियाँ पुरुषों से (पति के प्रति) अधिक वफ़ादार होती हैं। आजकल कहीं भी किसी रूपवती स्त्री का पुरुषों की दूषित निगाह से बचकर निकल जाना बड़ा कठिन है। सड़क पर से निकले तो सैकड़ों आँखें उसे पी जाने को तैयार रहती हैं; रेल में स्टेशन वालों से लेकर यात्री तक सभी दर्शन, बातचीत, और मौक़ा मिले तो, स्पर्श के लिए व्याकुल रहते हैं। बार-बार खिड़कियों के सामने आकर खड़े होते और इधर-उधर टहलते हैं। इसलिए ऐसे कठिन समय में स्त्री के लिए ज्यादा साहसी और निर्भय होने की ज़रूरत दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। हिन्दू स्त्रियाँ जरूरत से ज्यादा भोली और सङ्कोची होती हैं। यह भोलापन, सङ्कोच और लज्जा कोई बुरी चीज़ नहीं पर ऐसी जगह जब स्त्री का धर्म, उसका सर्वस्व संकट में हो किसी प्रकार की लज्जा या हिचकिचाहट अपनी सारी जिन्दगी की सब से मूल्यवान चीज़ नष्ट कर देने के समान है। पुरुषों को अभद्र एवं अश्लील बातचीत, इशारे करते या अनुचित भाव एवं झुकाव प्रकट करते देखकर, अनुचित समझते हुए भी, बहुत-सी बहिनें शर्म से, अभ्यास न होने के कारण एवं कुसंस्कार के प्रभाव से चुपचाप अपमान सहती जाती हैं, उधर ऐसे दुष्ट पुरुष का साहस, मौन देखकर, बढ़ता जाता है। और पीछे कई बहिनें बड़ी आपत्ति और संकट में पड़ जाती हैं। इसलिए ऐसे समय हृदय में साहस एकत्र करके जरा भी न डरकर उन्हें डाँट देना चाहिए। पापी आदमी बड़ा कायर होता है। इसलिए डरना नहीं चाहिए। फिर यदि धर्म-रक्षा के लिए प्राण भी देने पड़ें तो उसके लिए सदा तैयार रहना चाहिए। यदि कोई बहिन प्राण देकर धर्म की रक्षा करना चाहे तो किसी पुरुष में यह साहस नहीं है कि उसे पतित कर सके।

अभी एक बहिन उस दिन एक भोली विवाहिता लड़की की बात कह

रही थीं। अभी वह बच्ची है। एक दिन मुहल्ले का एक युवक घर सुनसान देखकर अन्दर आ गया और लड़की का हाथ पकड़ लिया। लड़की परदा करती थी; उस युवक से कभी बोलती न थी फिर भी अपने भोलेपन में वह समझ न सकी कि बात क्या है। पीछे जब लड़के ने उससे अलग कमरे में चलने को कहा तो उसे सन्देह हुआ और बड़ी तेज़ी से रोने व चिल्लाने लगी जिससे युवक भाग गया।

यह भी कैसा भोलापन!

मुझे इस कथा में और उस लड़की के भोलेपन एवं निर्दोष भाव में पूरा विश्वास है, पर उसके माता-पिता एवं संरक्षकों ने उसे यह नहीं सिखाया कि समाज की ऐसी अवस्था है और ऐसी हालत पैदा होने पर स्त्री को अपनी रक्षा के लिए क्या उपाय करना चाहिए। विवाह के पहले लड़की को यह बात अच्छी तरह समझा देनी चाहिए कि स्त्री के लिए सतीत्व जीवन से भी अधिक मूल्यवान है और प्राण देकर तथा सब प्रकार के आचार-विचार की परवाह न करके भी उसकी रक्षा करनी चाहिए। ऐसे अवसर पर संकोच छोड़कर दृढ़ता और साहस लाना चाहिए। मैं जानता हूँ कि इस संकोच का एक बड़ा कारण समाज की वर्तमान अवस्था है। स्त्रियाँ भी और उनके पति, माता-पिता ससुर सभी यह सोचते हैं कि यदि यह बात प्रकट हो गई तो समाज में लोग क्या कहेंगे? निन्दा के इस भय से स्त्रियाँ इस मामले में दिन पर दिन कमजोर होती जा रही हैं। पाप बढ़ रहा है। इस 'चुप-चप' की सत्यानाशी नीति ने समाज को नीचे गिरा दिया है। मैं ऐसे लोगों से पूछना चाहता हूँ कि तुम स्त्री के धर्म और सतीत्व को ज्यादा मूल्यवान चीज़ समझते हो या लोकप्रियता को? समाज की निन्दा कठोर होती है; उसे सहना कठिन काम है पर जहाँ हम ईश्वर के सामने निर्दोष हों वहाँ समाज की निन्दा सहकर भी अपने धर्म की रक्षा करनी चाहिए। स्त्री के लिए सतीत्व से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं है। माता-पिता, सास-ससुर, यहाँ तक कि पति की भी सतीत्व के सामने कोई क़ीमत, कोई मोल नहीं है। जब राम ने सीता के ऊपर शङ्का की थी तो सीता ने सतीत्व के अपूर्व तेज से कहा था—"हे

राम! तुम यह कहते हो? तुम्हारे मुँह से ये शब्द कैसे निकले?" इसका अर्थ यह है कि सतीत्व पति से भी ऊँची चीज़ है और पति की आज्ञा भी उसके सामने कोई चीज़ नहीं है। लोक-निन्दा बुरी चीज है पर समाज को खुश करने के लिए भगवान को, जो सब देख रहा है, धोखा देना, उसकी परवाह न करना और भी बुरी बात है। निन्दा से अप्रतिष्ठा होती है, दुःख होता है; वह बुरी चीज़ है पर सतीत्व पर किसी तरह की चोट होते देखकर निन्दा के भय से चुप रह जाना और भी बुरी बात है। इसलिए निन्दा या यश की परवा न करके जो धर्म है, जो कर्त्तव्य है वह करना चाहिए। कभी न भूलो कि ईश्वर सबसे बड़ा है और सब कुछ देखता है। ऐसा मौका आने पर साहस से काम लो और मरने तक के लिए तैयार रहो।

इससे शिक्षा लो

कई वर्ष पहले की बात है कि एक बहिन अपने पति के साथ एक दिन ताँगे से कहीं जा रही थीं। उसी ताँगे पर एक और आदमी पीछे आ गया। आते ही उसने दो-चार नोट निकालकर उस बहिन को दिखाये। पति महोदय देख नहीं रहे थे पर उस बहिन ने उस आदमी को एक थप्पड़ खींचकर लगाया और छीन कर सब नोट सड़क पर हवा में उड़ा दिये। पीछे तो ताँगे वाले ने भी उसकी खूब खबर ली।

इसी प्रकार हाल में दिल्ली में पुलिस अफ़सर के हाथ पकड़ लेने पर एक बहिन ने उसे एक थप्पड़ लगाया और कहा—"हट जा; तू मुझे गिरफ़्तार कर सकता है, गोली चला सकता है पर हाथ नहीं लगा सकता, न धक्के दे सकता है।"

इस तरह का साहस हिन्दू स्त्री के लिए आज बहुत आवश्यक हो गया है क्योंकि प्रलोभनों के बढ़ जाने, भोग-विलास के साधनों के सस्ते हो जाने और पुरुषों का सदाचार नष्ट हो जाने के कारण और स्वयं स्त्री-समाज में भी अनेक पतिता एवं कुलटा स्त्रियों के उत्पन्न हो जाने से ख़तरे बहुत बढ़ गये हैं और लज्जा के कारण चुप रह जाने की नीति बहुत हानिकर हो गई है।

दूसरी बात यह है कि समाज में स्त्रियों के सतीत्व पर आक्रमण करने वाले

सीधे-सादे एवं मूर्ख मनुष्य अब कम होते जाते हैं और उनकी जगह धोखेबाज, षड्यन्त्रकारी और कार्यचतुर चोरों की संख्या बढ़ती जाती है। पहले जमाने में, किसी सुन्दरी स्त्री को देखकर आक्रमण करके उसके घर से उठा ले जाने की चेष्टा की जाती थी। इसलिए ऐसे समय स्त्रियों की रक्षा के लिए लड़कर मर मिटने को बहुत-से भाई तैयार हो जाते थे और स्वयं स्त्रियाँ भी यह जान कर कि हमारा सतीत्व—हमारा धर्म ख़तरे में है, मरकर भी अपनी रक्षा करने को तैयार रहती थीं। पर आज समाज में स्त्रियों को लूटने वाले बहुत ही चतुर ठग पैदा हो गये हैं। कोई मित्र बनकर, कोई भाई बनकर, कोई हितैषी बनकर स्त्रियों को जाल में फँसाने की कोशिश करते हैं। मैं ऐसे कई धूर्तों को जानता हूँ, जो एक स्त्री को बहिन कहते हैं पर उनके मन में वासना की साँपिन नाच रही है। स्त्री के लिए अपने शत्रुओं को, अपने धर्म पर आक्रमण करने वालों को पहचान लेना सरल है पर इन भाइयों और हितैषियों के असली रूप को पहचाना बड़ा कठिन होता है। पहले ये दुखी बहिनों की सहायता एवं सेवा करके, सहानुभूति प्रकट करके तथा अन्य शिष्ट उपायों से उनसे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करते और फिर अवसर मिलते ही उनके मन में कमज़ोरी पैदा करके उन्हें नीचे गिराने की कोशिश करते हैं।

भक्षक रक्षक-रूप में

अभी हाल में इस तरह का एक बड़ा विचित्र नाटक मेरी आँखों के सामने खेला गया। एक महाशय ने, जिन्हें हम सब लोग विश्वास करते थे, एक बहिन के बारे में कुछ झूठी बातें हम लोगों से कहीं। एक ओर भगवान ऐसे मित्रों से बचाये! यह हो रहा था और दूसरी ओर बेचारी उस बहिन को धोखे में रखकर वह उससे घनिष्टता भी बढ़ाते जा रहे थे। उन्होंने शुरू से अन्त तक उस बहिन को अँधेरे में रखा, उसे धोखा देने की चेष्टा की और उसकी बुराई फैला कर भी उसके हितैषी बने रहे। यही नहीं हममें से प्रत्येक के विषय में एक-दूसरे को उसका विश्वासपात्र बनकर, गलत एवं ऊट-पटाँग बातें इस ढङ्ग से और ऐसे रूप में कहीं कि हर एक का मन दूसरे से फट जाय। इस तरह उन्होंने एक ओर उस बहिन को बहिन

कहकर पुकारा; दूसरी ओर उसके अज्ञान में हममें से प्रत्येक से उसकी बुराई की; तीसरी ओर उसे यह बताया कि और लोग तुम्हारी बुराई करते एवं तुम पर सन्देह करते हैं; चौथी ओर हममें से प्रत्येक के चरित्र-दोष की मनगढ़न्त सूचनाएँ एक दूसरे को दी गईं और साथ ही हिदायत भी कर दी गई कि "मैंने यह बात किसी से नहीं कही। आपको भाई समझ कर कहता हूँ और किसी से इसकी चर्चा न करेंगे।" यह बात प्रत्येक से कही गई। इस तरह महीनों पहले से षड्यन्त्र रचकर एवं अपनी बुराइयों के बचाव के लिए चक्रव्यूह तैयार करके सबको एक-दूसरे की निगाह में गिराने की चेष्टा करके वह महाशय लोगों की आँखों में धूल झोंक रहे थे। पर जैसा सदा होता है, इतना भ्रम और अविश्वास का अन्धकार उत्पन्न करके भी वे सत्य के सूर्य का प्रकाश दबा न सके। वह प्रकट हो गया। *पाप स्वयं अपना जासूस होता है।* उसके लिए किसी गुप्तचर की, किसी पीछा करने वाले की जरूरत नहीं हुआ करती। वह *अपने विषय में दूसरों से भी अधिक सशङ्क रहता है और खुद अपनेआप को ढूँढ़ लेता है।* यही हालत उन हज़रत की थी। सबके मन को अविश्वास एवं एक-दूसरे की बुराई से धुँधला करने में असफलता अनुभव कर वह खुद हरेक से पूछते फिरते थे कि 'आपको मुझपर कोई सन्देह तो नहीं है!' बार-बार सफाई पेश करते, अपने ब्रह्मचर्य की डींगें लगाते और अशान्त-अस्थिर की भाँति दिन-रात घूमते फिरते थे। आँख रखनेवालों के लिए किसी मनुष्य का चेहरा उसकी मनोवृत्तियों का सच्चा दर्पण है। उनका सूखा मुख, उनकी अशान्ति, उनका हरेक से अपने ऊपर सन्देह करने के लिए पूछना, ये ऐसी बातें थीं जिन्होंने बिना किसी के विशेष चेष्टा किये ही उनका पर्दा खोल दिया। पीछे जब सब लोग एकत्र हुए और वे सब बातें सबके सामने आईं, जिन्हें हज़रत ने हर एक से अलग-अलग कह रक्खा था तो सारा जाल स्वयं खुल गया किन्तु इतने पर भी उन्होंने उस बहिन को अन्त तक धोखे में रखा। यहाँतक कि वह उन्हें अभी तक अपना सच्चा हितैषी समझती है और जो सच्चे हितैषी थे, वे आज बुरे बने हुए हैं।

मेरे कहने का मतलब यह कि समाज में ऐसे-ऐसे महानुभाव आज-कल

अवतार ले रहे हैं जो स्त्रियों को धोखा देने की कला में बहुत चतुर हैं और जो महीनों पहले से, अनेक रूपों में, अपना जाल बिछाना शुरू कर देते हैं। ये हमारे समाज के भयङ्कर प्राणी हैं क्योंकि ये मित्र बनकर धोखा देते हैं और जिन्हें धोखा दिया जाता है, उन्हें अन्त तक इसका पता नहीं चलने पाता कि हमें धोखा दिया जा रहा है। ऐसे 'महापुरुषों' से बचना बहिनों के लिए आज ज्यादा कठिन हो गया है। ऐसे-ऐसे उदाहरण और दृश्य देख कर मनुष्य स्वभाव की अच्छाई से ही बहुतों का विश्वास उठ जाता है।

पाप-रहित हृदय से बड़ा कोई रक्षक नहीं

तो फिर समाज में ऐसे वैज्ञानिक चोरों से बहिनें किस तरह अपनी रक्षा करें, यह प्रश्न रह ही जाता है। इसका कुछ ठीक और निश्चित उपाय नहीं बताया जा सकता। यह बहुत करके प्रत्येक बहिन की बुरे-भले को पहचानने की शक्ति और आत्मसंयम की मात्रा पर निर्भर है। *पाप-रहित हृदय से बढ़कर मनुष्य का कोई रक्षक नहीं है।* जो सच्ची सती स्त्री है; जिसने सच्चे हृदय से पति को अपना लिया है और जिसके हृदय में, भगवान के बल पर, यह साहस है कि मुझे कोई नीचे नहीं गिरा सकता, उसे सचमुच दुनिया की कोई शक्ति पतित नहीं कर सकती। जहाँ समाज में पतित पुरुष और पतित स्त्रियाँ हैं वहाँ ऐसे भी बहिन-भाई हैं जिन्हें संसार की कोई निन्दा पवित्र स्नेह की शुद्ध एवं स्वास्थ्यकर वायु से अलग नहीं कर सकती। उनका ध्यान ही दूसरी ओर नहीं जाता। ऐसी देवियाँ धन्य हैं और उन्हें कोई, कितना ही चतुर आदमी क्यों न हो, नीचे नहीं गिरा सकता।

इसलिए नारी-धर्म का, सतीत्व का सबसे बड़ा रक्षक तो भगवान् के अन्दर अगाध विश्वास और अपने हृदय का तेज एवं साहस है। दूसरा उपाय पति के प्रति सच्ची श्रद्धा एवं प्रेम है। तीसरी बात अपना पाप-रहित हृदय और आत्मसंयम का भाव एवं अभ्यास है। साहस अपनी रक्षा के लिए एक जरूरी गुण है। चौथी बात यह है कि वर्तमान समय में प्रत्येक मनुष्य को बहुत समझ-बूझकर और अपनी ज़िम्मेदारियों का ख़याल करके अपने मित्रों का

भगवान् में दृढ़ विश्वास

चुनाव करना चाहिए। ज्यादा आदमियों से घनिष्टता बढ़ाना कभी ठीक और हितकर नहीं होता। हमें जीवन में दो-एक ही सच्चे मित्र, सच्चे बन्धु या सच्ची बहिन चुनने का प्रयत्न करना चाहिए। एक भी भाई या बहिन ऐसी मिल जाय तो समझना चाहिए कि हमें स्वर्ग मिल गया क्योंकि *सच्चे मित्र से बढ़कर दुनिया में दूसरी दुर्लभ वस्तु नहीं है।*

शरीर बनाम मन की पवित्रता

[illegible] सम्बन्ध में एक बात लिखने से रह गई है। मैं यह मानता हूँ कि यदि कोई स्त्री दृढ़ और सच्ची सती हो तो उसे कोई पतित नहीं कर सकता पर मान लो कि एक बहिन अकेली कहीं चली जा रही है, वह सच्ची पतिव्रता और सती है; पति को छोड़ कभी किसी का ध्यान नहीं करती। उसे एकान्त में अकेली देख ८-१० आदमी एक-साथ उस पर टूट पड़े और ज़बर्दस्ती उसका धर्म नष्ट कर दिया तो क्या वह सती या पतिव्रता नहीं रही ? मेरी समझ से, वह पहले-जैसी ही पतिव्रता है क्योंकि स्वतः उसके मन में तो किसी प्रकार की कुवासना उत्पन्न हुई नहीं। जबतक कोई स्त्री अपने मन को पर-पुरुष के प्रति विकारों से बचाये है, तब-तक ज़बर्दस्ती, उसकी अनिच्छा होते हुए, उसका शरीर अपवित्र हो जाने पर भी उसके पतिव्रत या सतीत्व में कोई कालिमा नहीं आ सकती। ऐसी अवस्था में पति का कर्त्तव्य है कि अपनी पत्नी को पहले की भाँति ही अपने हृदय में स्थान दे।

मुझे सतीत्व एवं पतिव्रत के बारे में इतना लिखने की जरूरत न थी पर समय बड़ा खराब आ गया है। मध्य युग में भी बहिनों का जीवन इतने खतरे में न था जितना आज है। उस समय यदि कोई बहिन किसी परम शत्रु को राखी भेजकर भाई मान लेती थी तो वह प्राण देकर, सारी शत्रुता भूलकर, उसकी, उसके धर्म की रक्षा करता था। उस समय 'भाई' कहकर एक बार पुकारने की जिम्मेदारी बहिन समझती थी और 'बहिन' कहकर एक बार पुकारने की ज़िम्मेदारी भाई समझता था। इन शब्दों की क़ीमत क्या है, इसे लोग जानते थे और उसे चुकाने के लिए तैयार रहते थे। अभी मेरे लड़कपन तक

में गाँव के किसी आदमी की बेटी को सारे गाँव वाले अपनी बेटी समझते थे। पर आज समय बदल गया है। हमारी जिह्वा से जिस समय अमृत निकलता है उस समय हृदय में वासनाओं की विषैली साँपिन नाचती रहती है।

: १० :

कुछ साधारण बातें

जबलपुर
२-१२-३०

चिरं भगवती,

विवाह-सम्बन्धी प्रायः सभी बातें पिछले पत्रों में मैं तुम्हें लिख चुका हूँ। अब लिखने की कोई ख़ास बात नहीं रह गई। अन्त में मैं तुमको थोड़े में सभी बातों का तत्व बता देना चाहता हूँ।

हृदय की उदारता

सबसे पहली बात जो तुममें होनी चाहिए, हृदय की उदारता और विशालता है। जीवन में ऐसे अवसर बहुत आते हैं जब झूठी कल्पनाएँ हमें उत्तेजित कर देती हैं; बुद्धि पर परदा पड़ जाता है और लोग अनुमान से ऐसी बातों की कल्पना किया करते हैं जिसके न सिर होता है न पैर। इस प्रकार कभी-कभी झूठे वहम के कारण जो ग़लतफ़हमी पैदा होती है वह अन्त में निराशा एवं दुःख के कारण सच्ची हो जाती है। दिन-रात झूठी-सच्ची बातें सुनते-सुनते मन खट्टा या वहमी हो जाता है। ज़रा-ज़रा सी बात पर सन्देह होने लगता है। एक-दूसरे के चरित्र पर शक करना तथा भेद लेते फिरना इत्यादि ऐसी बातें हैं जिनसे पति-पत्नी के हृदय की खाई गहरी होती जाती है। यह सदा याद रक्खो कि किसी निर्दोष प्राणी पर वहम करना, उसकी निन्दा करना इत्यादि ऐसा पाप है जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। पति-पत्नी दोनों का कर्त्तव्य है कि एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ लें और फिर सदा एक-दूसरे

में विश्वास रखें। जहाँ सच्चा विश्वास होता है वहाँ एक तरह का मानसिक सुख होता है। याद रखो कि विश्वास सन्देह से कल्याणकारी चीज़ है।

दूसरी बात आलस्य एवं बेकारी है। इन बातों से सदा बचना चाहिए। समाज में बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी हैं जो अपना ज्यादा समय दूसरों के घरों की जाँच और बुराइयों की छान-बीन करने में बिताती हैं।

पतन की सीढ़ी

अमुक की स्त्री ऐसी है, अमुक पुरुष अमुक स्त्री के पास बहुत आता है; वह ऐसा है; यह वैसा है, अमुक लड़की उस युवक से रोज़ न जानें क्या-क्या बातें किया करती है, इस प्रकार की दुनिया भर की वाहियात बातें, जब दो-चार निठल्ली स्त्रियाँ एकत्र होती हैं तभी छिड़ जाती हैं। इस भयानक कृत्य के लिए उन्हें न जाने कहाँ से समय मिल जाता है। मैंने ऐसे बहुत से पुरुष देखे हैं जिनके कानों तक घरेलू जीवन की झूठी-सच्ची चरित्र-सम्बन्धी बातें नहीं पहुँचीं पर आज तक ऊँचे-से-ऊँचे विचार की भी कोई स्त्री मुझे नहीं मिली जिसके कानों तक किसी पुरुष या स्त्री की बुराई के सर्टीफिकेट न पहुँचे हों। पुरुष स्वभाव से ही व्यावहारिक और कुछ गम्भीर होता है। इसलिए उसके पास तक पहले तो ऐसी बातों का पहुँचना ही कठिन होता है और पहुँचती भी हैं तो उसे इस ओर ज्यादा ध्यान देने का समय एवं प्रवृत्ति नहीं होती पर स्त्रियाँ ज़रा भी परिचय होते ही, एक ही दिन में आपस में मन का सारा कच्चा चिट्ठा प्रकाशित कर देती हैं। अधिकांश स्त्रियों को ऐसी गुप्त पर बहुत करके झूठी बातों में एक प्रकार का गुप्त और अस्पष्ट मज़ा आता है। ऐसी स्त्रियाँ अपना समय और अपना जीवन भी नष्ट करती हैं; जिन्हें अपना मित्र बनाकर ऐसी बातें कहती-सुनती हैं उन्हें भी चौपट करती हैं और जिनकी झूठी-सच्ची निन्दा फैलाती हैं उनका भी जीवन नष्ट करती हैं। अच्छी स्त्रियाँ वे हैं जो सदा अपने हृदय को अच्छा और पवित्र रखने, अपने घर को सुख-शान्तिमय बनाने तथा अन्य आवश्यक कार्यों में लगी रहती हैं और ऐसी बातों पर ध्यान ही नहीं देतीं। सुख ऐसी ही स्त्रियों को मिलता है जो सदा अपने काम में लगी रहती हैं; जिनके पास न व्यर्थ

बात करने वाली जिह्वा है; न झूठी निन्दा फैलाने का साहस करनेवाला हृदय है। ऐसी स्त्रियाँ जब किसी भाई बहिन को ऊँचे उठते देखती हैं तो हृदय से प्रसन्न होती हैं और जब किसी को नीचे गिरते देखती हैं तो हृदय से दुखी होती हैं पर उससे घृणा की जगह उसपर दया करती हैं और स्वयं उसे ऊँचा उठाने, उसे बचाने की चेष्टा करते हुए उसे बदनामी से बचाती हैं, न कि दो-चार और झूठी बातें अपने मन से गढ़कर उसमें लगा देती हैं। ऐसी स्त्रियाँ धन्य हैं; वे स्वयं सुखी रहती हैं; अपने पति को भी चिन्ताओं से मुक्त रखती हैं और दूसरों को भी सुखी रखती हैं। इसलिए तुम सदा बेकारी से बचो; ऐसी बेकार और निन्दा-प्रिय स्त्रियों और ऐसी बातों से दूर रहो।

तीसरी बात यह है कि विवाहित जीवन में एक-दूसरे के लिए आत्म-त्याग करना पड़ता है। पति के लिए पत्नी को और पत्नी के लिए पति को कष्ट सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। एक की ग़लती दूसरा जब अपनी ग़लती समझेगा तभी सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकता है। जो स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को प्यार करते हैं उन्हें एक-दूसरे के हित का, एक दूसरे के सुख का बड़ा ध्यान रहता है।

चौथी बात यह कि स्त्रियाँ शृङ्गार और गहने-कपड़े में अपना ज्यादा समय और धन नष्ट करती हैं। ईश्वर ने जो शरीर दिया है उसे बदलना कठिन है। यह भी याद रखो कि सुन्दरता काला-गोरा होने में नहीं सौन्दर्य की बेड़ी है। सच्ची सुन्दरता हृदय की सुन्दरता है जो जन्म भर क़ायम रह सकती है और जिन्हें विधाता ने सुन्दर शरीर दिया है वे व्यर्थ के झूठे और सोने-चाँदी के अलङ्कारों से उसे भद्दा और बनावटी बना देती हैं। सादगी से बढ़कर कोई सुन्दरता नहीं है, और याद रखो *विवाहिता स्त्री के लिए पति से बढ़कर कोई गहना नहीं है*। बहुत-सी स्त्रियाँ गहने-कपड़े के लिए पति को बहुत तंग करती हैं। यहाँ तक कि इन छोटी-छोटी बातों को लेकर घर में कलह उठ खड़ा होता है। सबसे पहली बात इस सम्बन्ध में यह याद रखनी चाहिए कि गहने जीवन को बनावटी बनाते हैं। इसमें दिखावे का, भगवान् ने जैसा बनाया है, उससे अधिक सुन्दर दिखाने

का या अपने घर की ग़रीबी को छिपाकर समाज की झूठी इज्ज़त के लिए, अपने को अधिक समृद्ध या सम्पत्तिवान् दिखाने का भाव रहता है। इसमें स्त्री को मनबहलाव एवं भोग की चीज़ के रूप में देखने का भाव है और चोर-डाकू इत्यादि का भी डर लगा रहता है। ये भाव नैतिक दृष्टि से बुरे हैं। सामाजिक दृष्टि से देखें तो एक स्त्री को अच्छे गहने-कपड़े पहनते देख दूसरी स्त्रियों के मन में भी वैसा ही पाने का लोभ होता है, इससे नकल एवं अन्ध अनुकरण की आदत बढ़ती है। राजनीतिक एवं मानवी दृष्टि से यह इसलिए बुरी है कि जब समाज में कितनी ही अभागी बहिनों को पेट भर रोटी नहीं मिलती, जब वे अपने बच्चों को दो पैसे का दूध नहीं पिला सकतीं, न भूख के कारण उनके स्तनों में ही दूध आता है; जब हम देखते हैं कि आज समाज में न जाने कितने भाइयों को रोटी के लिए अपमान सहना पड़ता है, देश के न जाने कितने भाई-बहिन भूखे रह जाते हैं और न जाने कितनी दुखिया बहिनें पेट के लिए अपना धर्म बेचने को बाध्य हो रही हैं, तब गहने पहनना ग़रीबों की, दुखियों एवं अधभूखों की हँसी उड़ाना है। आर्थिक दृष्टि से गहने पहनने की बुराई यह है कि जितना रुपया गहनों में लगता है उतना यदि किसी अच्छे बैंक में जमा कर दें तो बीस वर्ष में वह लगभग दूना हो जाता है पर गहने का तो बीस वर्ष में मूल का आधा भी नहीं मिल सकता। इस तरह जहाँ दो रुपये के चार होते हैं वहाँ गहनों में दो का एक रह जाता है। कितना—चौगुना—अन्तर है। कौटुम्बिक दृष्टि से इसकी बुराई यह है कि पति या घर में कमाने-वाला इन चीज़ों के लिए पिस जाता है और उसे अपने गौरव एवं स्वाभिमान को तिलाञ्जलि देनी पड़ती है। कमाई का जो भाग बच्चों के पालन-पोषण, बड़े-बूढ़ों की सेवा एवं दुखियों की सहायता में व्यय होना चाहिए वह इन व्यर्थ दिखावे की चीज़ों में खर्च हो जाता है। इस तरह गहना नैतिक, राजनीतिक, मानवी, आर्थिक और कौटुम्बिक सभी दृष्टियों से बुरा है। इसके मोह से भगवान् तुम्हें सदा दूर रक्खें।

पाँचवीं बात यह है कि अपने सदाचार और स्वास्थ्य का सदा ध्यान रक्खो। इन दोनों के लिए मन की पवित्रता और सदा काम में लगा रहना

बहुत जरूरी है। निकम्मी, सुस्त और बेकार स्त्रियाँ जल्द कुवासनाओं और बुरी बातों के जाल में फँस जाती हैं, क्योंकि बेकारी एवं आलस्य पाप कर्म की ओर ढकेलनेवाला सबसे बड़ा राक्षस है। पुरुष हो या स्त्री, निकम्मा रहना सबके लिए बुरा है। इसमें पतन की सम्भावना सदा बनी रहती है। दूसरी बात यह है कि जो काम में लगे रहते हैं उनके पास अधिक चिन्ता के लिए समय ही नहीं रहता। कामवाली स्त्रियाँ इसलिए नीरोग, स्वस्थ और सुखी रहती हैं कि उन्हें न चिन्ता करने का समय है, न बीमार होने का शौक़ है।

छठी बात यह है कि तुम्हें सदा प्रसन्न रहने का अभ्यास करना चाहिए। प्रसन्न स्वभाव की स्त्री बड़ी योग्य सहधर्मिणी होती है। खुशमिजाजी स्त्री का सबसे बड़ा गुण है। स्त्रियों के जीवन में छोटी-मोटी ऐसी हँसता हुआ मुख अनेक बातें आती रहती हैं जिनके कारण उन्हें रोना पड़ता है। परन्तु सच्ची गुणवती स्त्री रोने की बात को हँसी में टाल देती है; आँसू को मुस्कराहट में छिपा लेती है। इससे वह अपने स्वास्थ्य की भी रक्षा करती है और दूसरों का बोझ न बनकर, उनकी चिन्ता का कारण न होकर उलटे उनके सुख का कारण बनती है। चिड़चिड़ी और मातमी स्वभाव की, सदा मुँह लटकाये रहने वाली स्त्रियों को कोई प्यार नहीं करता; सब लोग उनसे तंग और दुखी रहते हैं। स्त्री वह भली कि दुःख की अप्रिय बातों को हँसकर टाल दे और दिल से चुभने वाली बातों को सुनकर भी जितनी जल्दी हो सके, दिल से निकाल बाहर करे। ऐसी स्त्रियों को बच्चे प्यार करते हैं, युवक उन्हें अपना सच्चा साथी समझते और बूढ़े, गुरुजन, स्नेह रखते हैं।

सातवीं बात स्त्री की सहनशीलता है। यह स्त्री-जीवन का एक बहुत ही आवश्यक गुण है। इसके होने न होने से जीवन के रूप में बड़ा परिवर्तन हो जाता है। एक अमेरिकन स्त्री ने ठीक ही लिखा है—'एक स्त्री तो साधारण तरकारी को लेकर बड़ा स्वादिष्ट साग बनायेगी और वही तरकारी फूहड़ एवं जल्दबाज़ स्त्री के हाथों में पड़कर महा-निकम्मी और बेस्वाद हो जायगी जिसमें तरकारी अलग और पानी अलग होगा। चीज़ एक ही है; केवल पकानेवालियों में भेद है।

"इसी प्रकार मनुष्य-जीवन की सब बातों का हाल है। ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े हैं जिन पर भाग्य सदा प्रसन्न रहता हो और ऐसे भी मनुष्य थोड़े ही हैं जिन पर सदा दुर्भाग्य का कुचक्र चलता हो। अधिक आदमी ऐसे हैं जिन पर सुख-दुःख का जोड़ा राज्य करता है। हम सब प्रायः माँ-बाप की रक्षा में जीवन आरम्भ करते हैं; एक ही प्रकार शिक्षा पाते और प्रायः एक ही तरह से घर-गृहस्थी का काम-काज सीखते हैं परन्तु परिणाम में, अपने-अपने कामों के अनुसार हम दुखी-सुखी.....हो जाते हैं।

"प्रति वर्ष हममें से सैकड़ों शादी करते हैं..... परन्तु तीन चौथाई घर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। कारण यह कि स्त्री-पुरुष आपस में बड़े स्वार्थ से रहते हैं और परस्पर की सहानुभूति के अभाव में उनकी शादी सफल नहीं होती।

"एक ही मिट्टी से स्त्री-पुरुष दोनों बने होते हैं। न सब पुरुष देवता होते हैं, न सब स्त्रियाँ स्वर्ग की देवियाँ होती हैं। ऐसा कोई घर नहीं है जहाँ झगड़ा न होता हो। स्त्री-पुरुष दोनों को अपनी अनेक इच्छाओं को रोकना पड़ता है। सन्तोष, क्षमा और सहनशीलता इत्यादि के प्रताप से घर को स्वर्ग के समान बनाया जा सकता है।"

इससे तुम जान सकती हो कि जीवन के सुख और कुटुम्ब की शान्ति के लिए सहनशीलता एक बहुत बड़ा गुण है। गृहस्थ-धर्म संयम का धर्म है और विवाहित या गृहस्थ-जीवन परस्पर सहायता और सेवा का जीवन है। उसमें न पति को, न पत्नी को, न देवर को, न जेठ-जिठानी और सास-ससुर को यह सोचना चाहिए कि उन्हीं की बात हो, उन्हीं की बात चले। सबको मिल-जुलकर रहना और अपने मन की इच्छाओं को दबाकर एक दूसरे की सेवा एवं सहायता में ही सन्तोष पाने की कोशिश करनी चाहिए। यह ठीक है कि जब तुम निर्दोष हो और कोई गाली दे तो इसे सह लेना बड़ा कठिन है; पर दुनिया में जितनी अच्छी चीजें हैं, जितने ऊँचे गुण हैं सभी की यही हालत है। सब बड़ी कठिनाई से प्राप्त होते हैं। यदि तुम आरम्भ में कठिनाई सहकर

सहनशीलता सफलता की कुंजी है

और अपने मन पर काबू रख कर सहनशीलता का अमूल्य रत्न प्राप्त कर लोगी तो अपने अन्दर उसके अपूर्व प्रभाव का अनुभव करोगी। दूसरों की निन्दा और गालियों को सह लेना अपने हृदय में स्वर्ग की सृष्टि करने के समान है। दूसरे क्या कहते हैं, यह देखने और दुखी एवं चिन्तित रहने की जगह सदा यह देखो कि तुम ईश्वर के सामने निर्दोष और पवित्र हो। किसी के उलाहने, किसी की निन्दा और किसी की बुराई से तुम्हें दुःख एवं चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हाँ, निन्दा करने वाले आदमी का बुरा नहीं सोचना चाहिए।

इन गुणों को अपने अन्दर पैदा कर लेने से प्रत्येक स्त्री अपने जीवन को बहुत ऊँचा उठा सकती और अपने कुटुम्ब की सुख-शान्ति बढ़ा सकती है।

आकाश और पाताल

यह ठीक है कि सुख परिवार के अन्य स्त्री-पुरुषों के स्वभाव पर भी निर्भर है, पर इन गुणों का उपयोग करने से, एक सीमा तक, स्वभाव भी बदला जा सकता है और यदि दूसरों के स्वभाव में कुछ परिवर्त्तन न हो तो भी अपने हृदय की शान्ति और अपने मन का सच्चा सुख तो बढ़ेगा ही। तुम देख सकती हो कि एक घर में तो सुख-शान्ति का राज्य है; उसमें पति सन्तुष्ट और प्रसन्न हैं; पत्नी हँसमुख, नीरोग और स्वस्थ है, बच्चे हँसते-खेलते रहते हैं; अपनी निर्दोष एवं भोली बातों से सबका मनोरञ्जन किया करते हैं। माता पिता एवं सास-श्वसुर का शान्त और गम्भीर मुख सब को उत्साह देता और धीरज बँधाता रहता है। उनका छोटा-सा घर है; आमदनी भी थोड़ी है पर घर में सब एक-दूसरे को अपना समझते, एक-दूसरे की सुख-सुविधा का ख्याल रखते हैं और हँसते हँसते अपने काम-काज करते रहते हैं। इससे वह छोटा-सा घर स्वर्ग हो रहा है। पर पास ही दूसरे मकान में चिन्ता, कलह, मार-पीट, गाली-गलौज और अशान्ति का राज्य है। घर भी बड़ा है; पति कमाने वाला भी है; व्यापार से उसे आमदनी भी खूब है पर स्त्री फूहड़ है, उसका किसी काम में मन नहीं लगता। कहीं दाल में नमक ज्यादा है, कहीं रोटी जल गई है। पति भी तुनुक-मिज़ाज—जल्द क्रोधित हो जाने वाला—है। वह नाराज़ होता है; पत्नी भी गरम होकर बात बढ़ा देती है। रोज़ लड़ाई-

झगड़े चला करते हैं। पिता दुर्वासा के अवतार हैं। उनको दोष निकालने से छुट्टी ही नहीं मिलती। कभी उनको दाल में रेत और कङ्कड़ मिले मालूम होते हैं, कभी दूध में पानी मिला दिखाई देता है। पतंहू किसी से बात करती है तो उन्हें उसी में उसका पतिव्रत भंग होता दिखाई देता है। घर बिल्कुल गन्दा हो रहा है, कोई चीज़ क़ायदे से नहीं रखी जाती; सब अस्त-व्यस्त है। रसोई के घर में धोने के मैले कपड़े पड़े हुए हैं और सोने के कमरे में तेल का पीपा मौजूद है। पढ़ने की मेज़ पर जूता पड़ा है और किताबों की आल्मारी में दाल-चावल से भरी थालियाँ पड़ी हैं जिनके अन्दर से घुन निकल कर सुरक्षित स्थान की तलाश में घूम रहे हैं, चूहे उछल-कूद मचा रहे हैं जैसे उनके घर कोई उत्सव हो। कहीं जूठन बिखरी है; कहीं फलों के छिलके पड़े हैं जिन पर मक्खियाँ इष्ट-मित्रों एवं स्वजनों के साथ निमन्त्रण जीमने आ विराजी हैं। कहीं बच्चे मैले-कुचैले घूम रहे हैं जिनकी आँखों से कीचड़ निकल रहा है और नाक के द्वार पर स्वयंभू बुलबुले बनते-टूटते रहते हैं। धमा-चौकड़ी, मार-पीट मची है; शान्ति नहीं है।

पास-पास बसे हुए इन दोनों घरों में कितना अन्तर है! दोनों घरों की स्त्रियाँ एक ही प्रकार से पैदा हुई थीं। बहुत करके दोनों का लालन-पालन भी एक ही प्रकार से हुआ होगा और फिर सयानी होने पर माता-पिता या घर-वालों ने एक प्रकार से धूम-धाम के साथ, शादी कर दी होगी। किन्तु एक में सहनशीलता थी, सेवा का भाव था। वह जब बात करती तो मुँह से रस टपकता था, जब बोलती तो मुँह से फूल झड़ते थे। वह कभी दिल खट्टा करने वाली बात न करती थी। कोई दूसरा कड़ी बात कहता तो मीठी बात से जवाब देती। अपनी भक्ति और प्रेम से पति का हृदय उसने जीत लिया; उनकी विश्वासपात्र बन गई और दोनों के दिल एक-दूसरे से मिलते गये। अपनी सेवा और अपने परिश्रम एवं मीठे स्वभाव से उसने सास-श्वसुर को सदा खुश रक्खा; उन्हें कभी बगड़ने का अवसर न दिया। देवरों से हँस कर बोलती और सदा उन्हें प्रसन्न रखने की कोशिश करती है। देवरानियाँ उसके पास जाते हुए ऐसा अनुभव करती हैं मानों स्नेहमयी माँ के पास जा रही हों

और जेठानियों को ऐसा मालूम होता है मानो उनकी छोटी बहिन हो। उसके इस स्वभाव का फल यह हुआ है कि उससे कभी कोई भूल भी हो जाती है तो सब चिढ़ने की जगह उस पर अपना स्नेह प्रकट करते हैं पर इसका मुख्य श्रेय बहू के स्वभाव को है। उसने अपनी सेवा, अपने प्रेम, अपनी मधुरता और अथक परिश्रम से घर को स्वर्ग की भाँति शान्त और सुखमय बना रक्खा है। वह छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखती है, जिसका मनुष्य के दिल पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

तुम्हारे हाथ भी बहुत कुछ है

किसी घर को अच्छा-बुरा, सुखदायक या दुःखदायी बनाना बहुत कुछ अपने स्वभाव पर निर्भर है। यदि तुम्हारा स्वभाव मधुर हो, तुम अपनी अपेक्षा दूसरों के दुःख-सुख का ज्यादा ख्याल रक्खो, कोई कड़ी बात कहे तो भी हँसकर टाल दो और मीठे शब्दों से जवाब देकर उसके क्रोध को जीत लो तो तुम कहीं भी रहो सदा सुखी रहोगी। मैं जानता हूँ कि दुनिया में ऐसे भी लोग और ऐसे भी कुटुम्ब हैं जहाँ बहू में ये सब गुण मौजूद होते हुए भी उसे दुःख ही उठाना पड़ता है। सास-ससुर दूसरे ख्याल के, बहुत संकुचित विचारों से लदे होते हैं, उनके स्वभाव में ही चिड़चिड़ापन और दोष निकालने की मनोवृत्ति होती है। ऐसी जगह पति का कर्त्तव्य है कि पत्नी को सान्त्वना देता रहे पर साथ ही उसका यह भी कर्त्तव्य है कि जहाँ वह अपने ऐसे चिड़चिड़े माता-पिता का ध्यान रक्खे वहाँ पत्नी पर भी ऐसे भयङ्कर अन्याय न होने दे कि उसका हृदय दुखी हो जाय। इसका परिणाम यह होता है कि निराशा के कारण वह सोचने लगती है कि मैंने न जाने क्या पाप किया था जो ऐसे कुटुम्ब में आ पड़ी, जहाँ लाख चेष्टा करने पर भी किसी को मुझसे सुख नहीं है। कई स्त्रियाँ तो यहाँ तक सोचने लगती हैं कि हे भगवान, मुझे कभी स्त्री का जन्म मत देना। यह ठीक है कि इस तरह के विचार मन में लाना एक प्रकार की कमजोरी है पर मनुष्य का चरित्र केवल आदर्शों पर ही गठित नहीं होता। संसार और परिस्थिति का भी उस पर असर पड़ता है। इस प्रकार की निराशा और मनस्ताप का स्त्री के मन, विचार-प्रवाह और स्वास्थ्य

पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। और चूँकि घर का सारा बोझ उसी पर रहता है इसलिए उसके मानसिक दुःख उसी तक नहीं रह जाते; उनके लाख छिपाने और मुँह से न कहने पर भी उसका असर घर के प्रत्येक काम और प्रत्येक आदमी पर पड़ता है। इस दृष्टि से जहाँ सदा हँसमुख और प्रसन्न रह कर कष्टों को सहते हुए अपने मीठे स्वभाव और अपनी सहनशीलता के सब की सेवा करना पत्नी का कर्त्तव्य है वहाँ उसे हृदय में घुसनेवाले अन्यायों से बचाना और उसे सब प्रकार सान्त्वना एवं सहायता देना पति का भी कर्तव्य है। इसी प्रकार अपनी गम्भीरता, अपने वात्सल्य और अपने शुभाशीर्वाद से पतोहू का कल्याण करना एवं अपने पद के गौरव की लाज रखना भी सास-ससुर का काम है।

परन्तु पति अपना कर्तव्य समझे या न समझे, सास-ससुर को अपना काम मालूम हो या न हो, बहिनों का विवाहित अवस्था में अपने कर्त्तव्य का ध्यान सबसे पहले रखना चाहिए। सहनशीलता और मीठे स्वभाव और व्यवहार से यदि तुम दूसरों का स्वभाव न बदल सकी तो भी तुम्हें एक प्रकार का सन्तोष होगा कि मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है और इस भाव के कारण ही तुमको अपने अन्दर एक प्रकार की अपूर्व शान्ति का अनुभव होगा। यह ठीक है कि अपना दुःख-सुख अपने साथ रहने वालों के दुःख-सुख पर निर्भर करता है। पर तुम्हारे हृदय का सच्चा आनन्द तो केवल तुम्हारे ही मन की शान्ति और कर्तव्य-पालन पर निर्भर है। एक विदेशी बहिन ने ठीक ही लिखा है कि हम सब को रोग, शोक और मृत्यु का दुःख देखना पड़ता है। एक ग़रीब स्त्री को बच्चा जनने में उतना ही कष्ट होता है जितना कि एक लखपती की घर वाली को और दोनों को बच्चे की मृत्यु पर भी एक सा ही कष्ट होता है पर बहुत-सी ग़रीब स्त्रियाँ कष्टमय जीवन में भी सन्तुष्ट और सुखी हैं जब कि अनेक धनिक रमणियों का हाहाकार आकाश को कम्पित कर रहा है। बात यह है कि धन-धाम की बाहरी सुविधाओं पर हृदय की शान्ति और सुख बहुत कम निर्भर करता है। इस प्रकार की कठिनाइयों के होते हुए भी तुम बहुत दूर तक अपने कर्तव्य का पालन कर सकती हो और अपने

कर्तव्य-चिन्ता

हृदय को शुद्ध और सन्तुष्ट रख सकती हो। भाग्य के दोष का रोना निराशा और कमजोरी का चिह्न है। तुम ऊपर लिखी बातों पर ध्यान देकर अपनी ज़िन्दगी की दीवार खड़ी करने की कोशिश करोगी तो निश्चय ही तुम्हें अपने अन्दर एक अपूर्व शान्ति और एक विचित्र ज्योति का अनुभव होगा। इससे तुम्हें अपनी कठिनाइयों को सहने की शक्ति प्राप्त होगी और तुम दुःख को भी हँसकर टाल सकोगी। सदा याद रक्खो कि अच्छा या बुरा बनना खुद तुम्हारे हाथ की बात है।

घर को सँभालनेवाली इन बातों के साथ पति का ध्यान कभी न भूलना चाहिए। साधारणतः पुरुष बाहरी दुनिया के कामों में लगे रहते हैं। कोई नौकरी करता है, कोई व्यापारी है, कोई प्रोफेसर या वकील है; कोई पत्र-सम्पादक या उपदेशक है। इन कामों में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं; कितनी ही तरह की चिन्ताएँ सदा सिर पर सवार रहती हैं; प्रलोभन भी कम नहीं आते। अतः पुरुष जब दिन भर का थका-माँदा, चिन्ताओं के बोझ से लदा, घर आता है तो स्वभावतः शान्ति चाहता है। यदि उसकी सहन-शक्ति थोड़ी हुई तो ज़रा-ज़रा सी बात पर वह चिढ़ता है। चतुर गृहणी का काम है कि उससे मीठी-मीठी बातें करके उसके चित्त को शान्त करे। गरमी के दिन हों तो पंखा झले और थोड़ी देर बाद जलपान कराये। उसे सदा हँसते हुए पति और घर के अन्य काम-काजी आदमियों का स्वागत करना चाहिए। स्त्री को पति के काम-काज के बारे में इतना ज्ञान होना चाहिए कि वह उसकी बातों को समझ सके और उसमें अपनी दिलचस्पी रक्खे। पति की चिड़चिड़ी बातों का जवाब भी नम्रता और शान्ति से देना चाहिए। बहुत-सी स्त्रियाँ कड़वी बातों का जवाब भी कड़वा ही देकर बात बिगाड़ देती हैं और पति के हृदय को तो दुखी करती हैं, साथ ही अपनी सुख-शान्ति की जड़ में भी कुल्हाड़ी मारती हैं। समझदार स्त्री वह है जो अपनी हँसी-खुशी और मधुरता में सबका दुःख बहा दे। स्त्री में यदि समझ हो और उसके दिल में पति के प्रति प्रेम हो तो वह स्वभावतः हर समय प्रेममय और रसभरी

कङ्कर का उत्तर फूल !

बातें बोलेगी। यह याद रक्खो कि पुरुष भी प्रेम और सेवा का भूखा है। यदि उसे यह विश्वास हो जाता है कि उसकी घरवाली उसे जी जान से प्यार करती है; उसमें श्रद्धा रखती है तो वह स्त्री की सुविधाओं की ओर बहुत ध्यान देने लगता है। इसलिए प्रत्येक विवाहित बहिन को इस तरह का ढङ्ग रखना चाहिए कि पति को उसके प्रेम का विश्वास बना रहे और प्रत्येक काम में उसे अपने इस प्रेम का परिचय देते रहना चाहिए।

पति के सम्बन्ध में दो-तीन और भी ऐसी बातें हैं जिनका ध्यान रखना चाहिए। पहली बात यह है कि पति भी मनुष्य है; उसमें भी दोष-गुण दोनों ही हैं। यह समझकर सदा उसकी कमज़ोरियों को क्षमा करना और यदि सम्भव हो तो प्रेमपूर्वक उन्हें दूर करने का यत्न करना चाहिए। दूसरी बात यह कि पति के प्रति प्रेम के साथ ही श्रद्धा और भक्ति का भी भाव होना चाहिए। पति को अपना रक्षक और रास्ता दिखानेवाला समझ कर सदा उसका आदर करना और अपने प्रत्येक काम में आदर के उस भाव को व्यक्त करना चाहिए।

पति-सम्बन्धी तीन बातें

तीसरी बात यह कि विवाह होने के बाद प्रत्येक बहिन को चाहिए कि वह जीवन में दुःख-सुख जो आये उसे खेल समझकर ग्रहण करे। जब हम बचपन में या बड़े होकर कोई खेल खेलते हैं तो चोट लगने पर रोते नहीं। तुमने देखा होगा कि जब खेल में कोई बच्चा चोट खाकर रोने लगता है तो अन्य बच्चे उसकी हँसी उड़ाते और तालियाँ पीट-पीटकर और कई तरह की हँसाने वाली बातें कहकर उसे हँसा देते हैं। जब खेल में शामिल हुए तो फिर कोई कष्ट होने पर रोना नहीं चाहिए—प्रसन्नता-पूर्वक सब सहते जाना चाहिए। इसी स्वभाव स्वभाव को 'खिलाड़ी का ढङ्ग' कहते हैं। स्त्रियों को अपना स्वभाव इसी साँचे में ढालना चाहिए और हाय-हाय करने तथा अपनी किस्मत को कोसने की जगह सुख-दुःख जब जो आवे उसे धीरज के साथ हँसते-हँसते सहना चाहिए।

इसके साथ ही गृहस्थी में दो और बातों का ध्यान स्त्रियों को रखना

चाहिए। बहुत से पुरुष ऐसे होते हैं जिनमें काम करने की योग्यता होती है; वे अपने काम में चतुर भी होते हैं पर उनके स्वभाव में निराशा भरी रहती है। ऐसे लोगों को सदा सहायक और साथी की जरूरत रहती है जो उनके कामों में उन्हें उत्साहित करता और उनसे काम लेता रहे। योग्य पत्नी इस काम को अच्छी तरह कर सकती है। पत्नी का दूसरा नाम ही हमारे यहाँ सहधर्मिणी है और जो स्त्री पति की सच्ची सहधर्मिणी होती है वही सच्ची और योग्य पत्नी भी होती है।

इनका भी ध्यान रक्खो !

दूसरी बात यह है कि चाहे रुपये-पैसे की हम जितनी उपेक्षा करें पर वर्तमान समय में दुनिया के प्रत्येक क्षेत्र में रुपये का महत्व बहुत बढ़ गया है। पति जो-कुछ कमाकर लाता है वह घर के खर्च के लिए पत्नी को देता है। पत्नी की योग्यता इस बात में है कि वह उतने ही रुपयों में समझदारी के साथ घर का खर्च चलावे और पति को अधिक के लिए तंग न करे। यही नहीं जो योग्य स्त्रियाँ होती हैं वे तो उसमें से भी, कुछ-न-कुछ बचाती जाती हैं और कोई कठिन अवसर आने या विपत्ति पड़ने पर, जब इज्जत का सवाल आ जाता है, निकालकर दे देती हैं। ऐसी पत्नी पर पुरुष सदा विश्वास और ममता रखता है और उसे पाकर सन्तुष्ट एवं सुखी रहता है।

: ११ :

गृहस्थ जीवन के रहस्य

अजमेर
२१-१-३१

चिरं० भगवती,

मेरा पिछला पत्र मिल गया होगा और आशा है तुमने उस पर ध्यान भी दिया होगा ; हम सब लोग यहाँ अच्छी तरह हैं; यों तो शरीर [illegible] एक न एक

झगड़ा लगा ही रहता है। यह जानकर सन्तोष हुआ कि तुम्हारे इलाज का प्रबन्ध प्रयाग में हो गया है। तुम इस व्यवस्था से पूरा-पूरा लाभ उठाना। ऐसा न हो कि रोग जड़ से अच्छा न हो और अपनी लापरवाही से फिर तुम थोड़े दिनों बाद बीमारी के लक्षण पैदा करके लोगों की चिन्ता बढ़ा दो। सदा अपने स्वास्थ्य का ध्यान रक्खो क्योंकि तन्दुरुस्ती से बढ़कर स्त्री का सच्चा मित्र दूसरा नहीं।

अभी तक मैं तुम्हें विवाह तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली अनेक बातों के बारे में दस पत्र लिख चुका हूँ। यों तो जीवन का कोई एक निश्चित रास्ता नहीं है जिस पर चलने से सब-कुछ सहज ही मिल जाय पर इन पत्रों में मैंने जितनी बातें लिखी हैं उनका पालन करने से निश्चय ही प्रत्येक बहिन योग्य गृहणी बन सकती है।

असली सुख कहाँ है ?

इस बात में बहस की गुंजाइश नहीं कि दुनिया में प्रत्येक स्त्री-पुरुष सुख चाहता है। किन्तु इस प्रबल इच्छा के होते हुए भी सुख बहुत ही कम लोगों को मिलता है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि अधिकांश आदमी ठीक ठीक यह नहीं समझते कि वस्तुतः वे चाहते क्या हैं; न उन्हें यही ज्ञान रहता है कि सुख कैसे मिलेगा और कहाँ तथा किन वस्तुओं में उसकी खोज करनी चाहिए। दूसरे यह कि जो लोग इन बातों को थोड़ा-बहुत समझते हैं वे भी सुख की कीमत चुकाना नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि उन्हें हलवा ही हलवा मिल जाय पर कोयलों से हाथ न काले करने पड़ें, न उसके लिए हाथ-पैर हिलाना पड़े। बहुत से लोग दुनिया की बाहरी वस्तुओं, घर-द्वार, कपड़े-लत्ते, शान शौकत, खान-पान, शारीरिक सुविधा की चीजों में सुख समझकर उनके लिए व्याकुल और पागल बने फिर रहे हैं। इनकी हालत उस हिरन के समान है जिसकी नाभि के नीचे—पेट में कस्तूरी भरी है पर वह इसे न जानकर सुगन्ध की खोज में यहाँ-वहाँ विक्षिप्त-सा घूमता फिरता है। तुम इस बात को अच्छी तरह गाँठ बाँध लो कि सुख कहीं बाहर नहीं है, वह सन्तोष की एक अवस्था का नाम है और अपने ही अन्दर प्राप्त हो सकता है। यदि मनुष्य इसे समझ ले

तो उसके बहुत-से दुःख एवं कष्ट, जो उसी के पैदा किये हुए हैं, अपने आप मिट जायँगे।

इसलिए पहले तो तुम यह याद रक्खो कि तुम्हें दुनिया में सिवाय तुम्हारे दूसरा कोई शान्ति नहीं दे सकता। दूसरे लोग उस शान्ति को बढ़ा-घटा भर सकते हैं लेकिन उसका बीज बोना और अपने जीवन की मिट्टी में उसे अपने हृदय के अमृत से सींचकर लहलहाते पौधे के रूप में ला खड़ा करना तुम्हारा काम है। इसे दूसरा कोई, चाहे पति हो, चाहे भाई-बहिन हों, चाहे माता-पिता हों, नहीं कर सकता।

तुम सवाल कर सकती हो कि इस प्रकार का मन का सुख किस तरह प्राप्त किया जा सकता है? इसके लिए पिछले पत्रों में, और विशेषतः नवें-दसवें में, मैं बहुत-सी बातें लिख चुका हूँ। पर सबसे मुख्य बात यह है कि जो आदमी सुख-सन्तोष का जीवन बिताना चाहे उसे सदा अपनी दिन पर दिन एक के बाद एक निकल कर सामने आने और कभी समाप्त न होने वाली इच्छाओं और वासनाओं को दबाकर रखना चाहिए। मनुष्य की अभिलाषाओं का अन्त नहीं है। यदि वे सदा पूरी होती जायँ तो भी सैकड़ों जिन्दगियाँ खत्म हो जायँगी और उनकी गिनती में कमी न आवेगी। इसलिए जो लोग अपनी इच्छाओं पर क़ाबू न रखकर उसकी पूर्त्ति करने के लिए मारे-मारे फिरते हैं वे कभी एक चीज़ लेकर आराम से नहीं बैठते; सन्तोष और शान्ति क्या चीज़ है, इसे वे कभी अनुभव नहीं करते। उनकी ज़िन्दगी सदा-हाय हाय करते बीतती है; एक न एक कमी का रोना लगा रहता है। कभी यह नहीं है, कभी वह नहीं है। एक चीज़ मिली कि झट दूसरी की ज़रूरत पड़ती है। ऐसे स्त्री-पुरुषों को, चाहे उन्हें कुबेर का ख़ज़ाना भी मिल जाय, कभी सुख प्राप्त नहीं होता। सुख सिर्फ़ उन लोगों को मिलता है जो दुःख में, कष्ट में, अभाव में भी हँसते-हँसते अपने दिन बिता देने की दृढ़ इच्छा करके जीवन के रास्ते पर चल सकते हैं। बहुत-से पुरुष ऐसे हैं जो अपनी मूर्खता से अपने को दुनिया की अनेक अनावश्यक और दो घड़ी झूठा सुख देकर नष्ट हो जाने और जीवन को पहले से भी दुखी एवं पतित बना देनेवाली एक न एक चीज के पीछे सदा पागल रहते

हैं। आज चाहे जैसे हो हजारों रुपया प्राप्त करने के सपने हैं तो कल पार्टियाँ दे देकर बड़े लोगों से जान-पहचान करने की धुन समाई है; आज पुत्र की प्राप्ति के लिए बड़ी-बड़ी औषधियाँ खोजी जा रही हैं तो कल उस पुत्र को पढ़ा-लिखाकर बैरिस्टर बना देने का भूत सिर पर सवार है! बँगले बन रहे हैं; दिवाले निकाले जा रहे हैं; नाच-मुजरे हो रहे हैं; कभी-कभी क्लबों और प्लेट फार्मों (सभामंचों) से स्त्रियों के उद्धार के उपदेश दे दिये जाते हैं और साथ साथ चाय-अंडा, ब्रांडी तथा सिगरेट के धुएँ के बीच देश की दयनीय एव गिरी हुई सामाजिक अवस्था का भी 'वे आँसू का रोना' रो दिया जाता है; इस रोने-गाने को अखबारों में छपाने का शौक भी चर्राता है और टकों के बल से बड़े-बड़े अखबारों में वह तीन-चौथाई पानी मिले दूध का-सा स्वाद देनेवाली स्पीच छप जाया करती है। दलबंदियाँ होती हैं, कहीं कौंसिल का चुनाव है; कहीं म्यूनिसिपैलिटियों के सुधार के लिए पागल हो रहे हैं! विवाद हो रहे हैं; एक-दूसरे पर कीचड़ उछाला जा रहा है! ऐसी-ऐसी बातें छापी जा रही हैं जो निराकार ब्रह्म की तरह अभी तक अदृश्य थीं पर पृथ्वी का भार हलका करने के लिए मानों पुर-परिजन-सहित अवतार लेने लगी हैं! इस तरह अपने जीवन की छोटी-छोटी अभिलाषाओं की पूर्ति में अधिकांश पुरुष पागल से हो रहे हैं। उन्हें जीवन में शान्ति और सुख क्या मिलेगा? जैसे एक क्षण खड़े होकर शान्ति के साथ विचार करने और जीवन का रास्ता निश्चित करने की उन्हें फुर्सत नहीं है। जैसे शराबी या अफीमची या किसी और नशे के गुलाम को उसके बिना चैन नहीं वैसे ही जीवन के इन अशान्त और तूफानी झकोरों के बीच अस्थिर से ये पुरुष घूम रहे हैं! इनमें से बहुत से, जो समझदार हैं, योग्य हैं, विद्वान् और विवेकी हैं समझकर भी कहते हैं, क्या करें भाई अब तो इसमें पड़ गये। वे वैसा इसलिए नहीं करते कि शान्तिपूर्ण ऊँचा जीवन बिताने के लिए उसकी कोई खास जरूरत है बल्कि इसलिए करते हैं कि दुनिया में बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग इसी को अच्छा समझते हैं। ऐसे आदमी सच्चा सुख कभी नहीं पा सकते क्योंकि वे प्रवाह में बहने वाले जीवों के समान सदा इधर-उधर टकराते रहते हैं। ये घर का भी सुख नहीं भोग सकते; कुटुम्ब

इनके लिए एक होटल के समान है जहाँ भोजन किया और रास्ता लिया तथा समाज के ईर्ष्या-द्वेष एवं दम्भमय जीवन को अपनी मानवी भावनाओं एवं परहित-कातरता के कारण वे छोड़ नहीं सकते। अभिलाषाओं के झकोरों में उनका संघर्षमय जीवन बीत रहा है। यह हालत आजकल के युवकों की खास तौर से हो रही है और इसका वर्णन नीचे की कुछ पंक्तियों में श्री रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी 'स्वप्न' नामक कविता-पुस्तक में बहुत ठीक किया है—

भोग नहीं सकता हूँ गृह-सुख,
भूल नहीं सकता हूँ पर-दुख।
अकर्मण्यता से डरता हूँ,
जाता हूँ जब हरि के सम्मुख॥
जीवन का उपयोग न निश्चित,
कर पाया दुविधा-वश अबतक।
यौवन विफल जा रहा है यह,
जैसे शून्य सदन में दीपक॥

जहाँ अधिकांश पुरुषों की यह हालत है; वे कभी एक चीज पर सन्तोष करके, भगवान् के चरणों में विश्वास रखकर सीधा-सादा घरेलू जीवन बिताने और उसी जीवन की सच्ची शान्ति और सुख पाने से विरक्त हैं; वहाँ बहुत-सी बहिनों में भी तरह-तरह की इच्छाएँ एक पर एक, नई-नई कोंपलों की तरह फूटती और बढ़ती जाती हैं। उनका चित्त स्थिर नहीं; कभी उनको इसकी शिकायत है कि मैं घर-गृहस्थी का काम करते-करते मरी जा रही हूँ। मजदूरनी या सहायता करनेवाली किसी स्त्री के आ जाने पर यह शिकायत खड़ी हो जाती है कि वह मेरे काम को और भी बिगाड़ देती है। कभी वह सन्तान न होने से दुखी है तो कभी बच्चों के होने पर उन्हें रात-दिन सरापा करती है कि 'ऐसे बच्चे न होते तो अच्छा था!' कभी लड़के का व्याह करने और पतोहू का मुख देखने की अभिलाषा होती है तो कभी उसके घर में आ जाने पर रात-दिन शिकायतों और दोषों का रजिस्टर खुला रहता है कि 'वह तो रानी बनकर आई है; मेरा भी व्याह हुआ था पर मैं तो ऐसी निर्लज्ज न थी

या फिर 'मूरत-सी बनी बैठी रहती है मानो मैं इसकी लौंड़ी हूँ।' पतोहू के ज्यादा काम-काज सँभालने पर यह बात निकलती है कि 'अब मेरा इस घरमें क्या रहा। मेरी बात कौन पूछता है; जमाना ही ऐसा है; कलियुग है न?' मानों स्वयं खास राम-राज से, हज़ारों वर्ष का अन्तर लाँघकर, बेचारी पतोहू को उपदेश देने के लिए ही पधारी हैं! कभी किसी खास तरह के गहने की लालसा है, कभी फीरोजी साड़ी की धुन है; कभी किसी स्त्री का 'एयरिंग' अच्छा लगता है, कभी किसी के चन्द्रहार को अपनाने की इच्छा होती है! इस तरह की अनेक इच्छाओं को बढ़ाते-बढ़ाते उनका जीवन असन्तोषमय, चिड़चिड़ा और सदा के लिए दुखी हो जाता है और जब अपनी सब इच्छाएँ पूरी भी हो जाती हैं: अपने घर को सुधार लेती हैं, अपने कुटुम्ब का 'उद्धार' कर लेती हैं तो दूसरों की चाल-ढाल देखकर उनका दिल सुलगता है! दूसरों के घरों को सुधारने और उनका बोझ हलका करने के लिए आलोचना एवं छानबीन शुरू हो जाती है। ऐसी स्त्रियों को जीवन में क्या सुख मिलेगा?

इसलिए यदि तुम सच्चा सुखी जीवन बिताना चाहती हो तो पहले अपने मन में बहुत ही थोड़ी और अच्छी इच्छाओं को स्थान दो। उन इच्छाओं के अन्दर भी अपनी अपेक्षा दूसरों की भलाई की भावना अधिक हो। इतने पर भी सदा इस बात के लिए तैयार हो कि यदि वे इच्छाएँ पूरी न हुईं तो भी तुम्हें उसकी चोट न लगेगी, न तुम्हारे उत्साह, काम और रंग-ढंग में अन्तर पड़ेगा। अपने मन में संयम—काबू—रखकर थोड़े में सन्तुष्ट हो जाने और जो कुछ मिले उसके लिए भगवान् को हृदय से धन्यवाद देने की आदत डालो। दुःख में भी यह सोचकर सन्तोष करो कि दुनिया में तुमसे भी दुखी लोग मौजूद हैं।

इसके लिए सबसे अच्छा उपाय यह है, और उसे मैं पहले भी किसी पत्र में लिख चुका हूँ कि सदा अपने को काम में लगाये रक्खो। अपने को काम में इतना लिप्त रखना चाहिए कि दुःख-सुख और विशेषतः दुःख का अनुभव करने, उसपर विचार और छान-बीन करने या अपने अभावों पर रोने और दुखी होने का समय ही न मिले। संसार में तन-मन को भूलकर, एक दिल

होकर काम करने से बढ़कर कोई सुख नहीं है। इससे मन सदा दुःख और अनेक तरह की व्यर्थ की चिन्ताओं तथा झूठी और द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ती जानेवाली अभिलाषाओं से बचा रहता है। निकम्मे रहकर चिन्ता का बोझ बढ़ा लेने से हृदय दुर्बल होता जाता है और ऐसे बहिन-भाई निराशा के सागर में इस तरह डूब जाते हैं कि उनसे दुनिया में कोई बड़ा काम होने की आशा नहीं की जा सकती।

सुखी होनेके लिए दूसरा रामबाण उपाय प्रत्येक अवस्था में सन्तोष करना है जिसकी चर्चा मैं ऊपर भी कर चुका हूँ। यदि तुम सुख चाहती हो तो जिस अवस्था में तुम हो उसी में तुम्हें सुख का अनुभव करना चाहिए। दूसरों की ओर देखकर अपने दुःख से उनके सुख की तुलना करने और असन्तोष का भाव हृदय में उत्पन्न करने से सम्भव है तुम वह अवस्था प्राप्त कर लो पर इससे तुम्हें सुख-सन्तोष तथा शान्ति नहीं मिलेगी। दूसरे के मालपुए और रेशमी साड़ी की ओर न देखो; अपनी रूखी-सूखी रोटी और खादी या गजी की साड़ी पर प्रसन्न और सन्तुष्ट रहो। दूसरे क्या पहनते-ओढ़ते हैं; क्या खाते-पीते हैं इसकी ओर ध्यान न दो। अपने सुख के लिए दूसरों की ओर न देखो और न दूसरों की-सी सुविधाएँ प्राप्त करने की चिन्ता में इतनी डूब जाओ कि वे चीजें भी न मिलें और वर्तमान जीवन का तुम्हारा सुख भी नष्ट हो जाय। जिस अवस्था में हो, उसी अवस्था में सुख ढूँढ़ो और अनुभव करो। *दुनिया में अपने या दूसरों के मन में झूठी महत्वाकांक्षा जगाकर जीवन की शान्ति नष्ट कर देने के समान कोई पाप नहीं है।* असली सुख अपने को छिपा कर रखने, चुपचाप अपना बलिदान करने और आत्म-विसर्जन करने में है। यह कभी मत सोचो कि तुम्हारा बड़ा नाम हो या तुम समाज या देश की बड़ी सेविका बन जाओ। ये भी बुरी बातें नहीं हैं, पर भगवान् के चरणों में अपने को चढ़ाकर शान्ति-पूर्ण और पवित्र जीवन बिताने की इच्छा इससे कहीं ऊँची है; क्योंकि मनुष्य के जीवन का यही उद्देश्य है।

आजकल ज्यादातर लोग, स्त्रियाँ भी और पुरुष भी, समाज में, यह समझते हैं कि विवाह का मतलब भोग-विलासमय जीवन बिताना है। हजारों

वर्षों के संस्कार के कारण विवाह में शारीरिक वासनाओं की पूर्ति के भाव को हम लोग प्रधान मानने लगे हैं। जरा लड़की बड़ी हुई कि चारों तरफ़ से आवाज़ आने लगती है—'राम-राम! लड़की इतनी सयानी हो गई और इसकी कोई रोक-थाम और खोज-फ़िक्र करने वाला नहीं है।' कोई-कोई तो निर्लज्जतापूर्वक यहाँ तक भी कह देते हैं कि 'इस उम्र में तो मैं दो लड़कों की माँ हो गई थी।' इन बातों के अन्दर विवाह को वासना-पूर्ति का साधन समझने की भावना प्रधान है।

प्रत्येक बहिन और प्रत्येक भाई सदा याद रक्खे कि विवाहित जीवन बहुत ही जिम्मेदारी का जीवन है। इसमें प्रत्येक विषय में संयम रखना पड़ता है; यह उच्छृङ्खलता और निस्सार दलीलों तथा दिल्लगियों का जीवन नहीं है। निश्चय ही इस तरह की भावना का कारण समाज में दिन-दिन बढ़ने वाली भोग की प्रवृत्ति है। लोग चञ्चल और अतृप्त-से नाना प्रकार के प्रलोभनों और आडम्बरों में फँसकर विवाहित जीवन को दिन पर दिन विषयी एवं कामुकतापूर्ण बनाते जा रहे हैं। स्त्रियाँ अपने पति-पूजा के संस्कारों के कारण बिना विरोध किये अपने पतियों की तृप्ति के लिए अपने स्वास्थ्य और सौन्दर्य की बलि चढ़ाती जा रही हैं।

जहाँ एक ओर समाज में विवाहित जीवन को भोग-विलास का साधन बना लिया गया है वहाँ दूसरी ओर देश में एक ऐसा भी छोटा-सा दल उठ खड़ा हुआ है जो विवाहित जीवन से शारीरिक भावनाओं को एकदम निकाल देने पर तुला हुआ है। महात्मा गांधी और टालस्टाय की शिक्षाओं ने इस प्रकार के विचार को उत्तेजना दी है और बहुत से लोग तो विवाह के उच्च आध्यात्मिक रहस्य को भूलकर उसे जीवन की कमजोरी समझने लगे हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पति-पत्नी के सम्बन्ध को एकदम भाई-बहिन-जैसा बना देने के लिए चिन्तित हैं। मैं मानता हूँ कि यह पहले प्रकार के भोग-विलासमय जीवन के प्रति एक प्रकार की बग़ावत, एक प्रकार का विद्रोह है! यह दूसरी अति है! मैं मानता हूँ कि इस तरह की शिक्षा का प्रचार करना साधारण मनुष्य का काम नहीं है। ये बातें दिमाग की असाधारण अवस्था की उपज हैं इसलिए

गृहस्थ-धर्म में इनका एक मात्र अर्थ यही हो सकता है कि हमारा जीवन हर हालत में संयमपूर्ण होना चाहिए।

संयम का अर्थ अभाव नहीं है इसीलिए संयम का अर्थ वैराग्य भी नहीं है। संयम का अर्थ इतना ही है कि हमारी अभिलाषाएँ इतनी न बढ़ जायँ कि वे सुख देने के बदले हमारे लिए बोझ बन जायँ; संयम का यह मतलब है कि हम शरीर के विषय-भोग में इतने न पड़ जायँ कि उसी के गुलाम बन जायँ। इस अर्थ के साथ सारे संसार के जीवों में समबुद्धि से एक ही चीज़ को देखना यह तत्वज्ञान की अन्तिम अवस्था में ही हो सकता है; उस समय देश काल और व्यक्ति सब के भेद-भाव मिट जाते हैं। उस समय निश्चय ही पति-पत्नी, भाई-बहिन, माता-पुत्री में कुछ अन्तर नहीं रह जाता। उस समय चाण्डाल और पण्डित में अन्तर का अनुभव समाप्त हो जाता है। पर यह बात तभी हो सकती है जब हम दुनिया के प्रत्येक कर्म से अलग हो जायँ क्योंकि इच्छाओं से ही कर्म का जन्म होता है और कर्म से ही आशा, उत्कण्ठा और अभिलाषाओं का जन्म होता है। यह संसार में रहने वाले साधारण जनों के लिए नहीं है। जो बात एक ऊँची अवस्था के लिए ठीक हो वह एक नीची अवस्था के आदमी के लिए भी हितकर साबित होगी, यह बिल्कुल ग़लत धारणा है।

इसलिए मेरी समझ से महात्माजी या टालस्टाय या हमारे पूज्य ऋषि-मुनियों की संयम की शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि विवाहित जीवन में पति-पत्नी एक-दूसरे को भाई-बहिन मान लें। ऐसा कहना भी उस विशेष भाव के साथ अन्याय करना है जिसको लेकर हमारी अनेक माताओं ने हँसते-हँसते चितारोहण किया है। ऐसा कहने में पत्नीत्व का भी अपमान है और बहिन शब्द के अन्दर जीवन की जो स्मृतियाँ, जो रक्त-मांस की अभिन्नता और पवित्रता छिपी रहती है उसका भी अपमान करना है। कोई भी पति-पत्नी, चाहे उनका जीवन कितना ही निवृत्तिमय हो, चाहे उनके मन में शरीर-भोग की भावना न उठे पत्नीत्व और पितृत्व के उस विशेष भाव से अलग होकर भगनीत्व और बन्धुत्व के भाव में अपने को नहीं ला सकते जो विवाह के

संस्कार के साथ उनके मन में जीवनभर के लिए उदय हो जाता है। किसी स्त्री के मन में, चाहे वह अस्सी वर्ष की हो जाय और उसमें शरीर-सुख की शक्ति और भावना बिलकुल न रह गई हो, पति को भाई समझने का भाव उदय ही नहीं हो सकता; न किसी पति के मन में यह बात उदय हो सकती है। कुवासनाओं से हीन हो जाने की अवस्था में भी, जीवन-भर, पति के लिए पत्नी *पत्नी* ही रहेगी और पत्नी के लिए पति *पति* ही रहेगा।

कोई सिद्धान्त या धर्म, जो मनुष्य की आकांक्षाओं और मन की स्वाभाविक गति को देखकर नहीं बनाया जाता अधिक दिन तक टिक नहीं सकता। जो लोग अवसर देखकर स्वीकार भी कर लेते हैं वे या उनके बाद आने वाले उसके मनमाने अर्थ लगाकर और उसमें मनोनुकूल छूट की बातें खोज कर उसे न केवल अव्यावहारिक सिद्ध कर देते हैं बल्कि उसका दुरुपयोग भी करने लगते हैं। इसलिए सब का ख्याल करके, सबके आचरण-योग्य सिद्धान्तों का बनाना बड़ी ऊँची बुद्धि और अनुभव का काम है। आज जो बातें कही जा रही हैं, हमारे प्राचीन ग्रन्थों में उन सब का वर्णन आया है और ऐसा मालूम होता है कि ये सब प्रयोग हमारे यहाँ किये जा चुके हैं किन्तु निष्फल होने पर छोड़ दिये गये! उसके बाद आश्रम-धर्म की व्यवस्था की गई है। नियमित समय तक ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन, उसके बाद नियमित समय तक गृहस्थ-जीवन और विद्या का व्यावहारिक उपयोग, फिर निश्चित समय तक वानप्रस्थ और निवृत्ति का अभ्यास और फिर कार्यों एवं आकांक्षाओं का त्याग करके संन्यास और आत्म-चिन्तन! इस प्रकार जीवन बिताने की प्रणाली से शरीर, मन और आत्मा तीनों का विकास होता था। इस व्यवस्था की रचना करने वाले ऋषिगण यह जानते थे कि सदा चलने वाला धर्म कभी अतिधर्म नहीं हो सकता; वह संयमपूर्ण साधारण जीवन ही हो सकता है। इसलिए अवस्था के अनुसार अपने अपने समय में प्रत्येक आश्रम को महान् बताया गया है। ब्रह्मचर्य-आश्रम जड़ के समान, गृहस्थ तने के समान, वानप्रस्थ छायादार और थकावट दूर करने वाली डालियों के समान और संन्यास फूल-फल के समान है जिसपर सब मनुष्यों का अधिकार हो जाता है; जन्म देनेवाले वृक्ष का

नहीं। इनका विकास क्रम से ही हो सकता है; एक के पहले दूसरे का नहीं इस तरह हमारे धर्म में संयम के साथ भोग और त्याग दोनों की व्यवस्था है और वही ठीक भी है। इसलिए भगवान् ने गीता में—*युक्ताहार विहारस्य*... अर्थात् 'संयमित, योग्य आहार और विहार...से ही योग सिद्ध होता है।' कहकर इस प्रकार के बीच के रास्ते को ठीक बताया है। दुनिया के अधिकांश विद्वान् समाज-शास्त्रियों का कहना है कि हिन्दू-धर्म के आश्रम-विभाग से अच्छी और वैज्ञानिक समाज-व्यवस्था दूसरी नहीं है।

इसलिए हमारे-जैसे साधारण शक्ति के आदमियों के लिए सबसे अच्छा सिद्धान्त यही है जिसे गीता में भगवान् ने कहा है अर्थात् संयमपूर्ण आहार-विहार। याने आहार—भोजन हलका, सात्विक, थोड़ा और ठीक समय पर हो; इसी प्रकार भोग-विलास में बह जाना, उसी को प्रधान बना लेना अनुचित है। उसमें भी संयम की बहुत ज़रूरत है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से स्त्रियों को विवाहित जीवन में संयम को स्थान देना चाहिए। आज प्रसूति-रोग, क्षय, तथा अन्य नाशकारी व्याधियों से बहुत-सी स्त्रियाँ पीड़ित देख पड़ती हैं। अनियमित आहार और उच्छृङ्खल विषय-भोग ही इसका कारण है। फिर सन्तान उत्पन्न होने में स्त्री के शरीर का सेरों खून कम हो जाता है। इस दृष्टि से भी स्त्रियों को इस ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए।

विवाहित जीवन में केवल शरीर की वासना-तृप्ति में ही नहीं, अन्य बातों में भी स्त्री को संयम रखना चाहिए। बहुत बक बक करना वाणी का असंयम है, फ़ज़ूलखर्ची धन का असंयम है। इन सब बातों से बचना और अपना समय सदा अच्छी बातों में लगाना चाहिए। *याद रक्खो, दुनिया में यदि सबसे कम और मूल्यवान कोई चीज़ हमें मिली है तो वह समय है।* फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि हम उसका सबसे ज्यादा दुरुपयोग करते हैं। यह न भूलो कि जो दिन आज बीत जायगा वह लाख सिर पीटने पर भी कल लौटकर न आयेगा। इसलिए एक-एक मिनट का ध्यान रक्खो और केवल उन्हीं बातों में उसे ख़र्च करो जिनसे तुम्हारा जीवन दिन-दिन शान्त, सन्तुष्ट, सुखी, ऊँचा और संयमपूर्ण बने।

आजकल ज़माना कुछ अजीब-सा है। कौटुम्बिक जीवन को ऊँचा और मधुर बनाने की ओर तो किसी का ध्यान नहीं है पर समाज और देश को ऊँचा उठाने के लिए सभी चिल्ला रहे हैं। यह बात ऐसी ही है जैसे जड़ में पानी न डालकर पत्तियों को सींचना और यह आशा करना कि वे हरी-भरी हो जायँगी। समाज और देश-सेवाव्रती भाइयों के मुँह से अकसर यह बात सुनी जाती है कि युवकों ने देश को ऊँचा उठाने की लड़ाई में कई ग़लत त्याग नहीं किया पर ये लोग यह कहकर मानो अपने ही रास्ते की भूल स्वीकार करते हैं। अरे, आपने अपने युवकों को इस योग्य ही कब बनाया? आपने अपने घरों को, अपने कुटुम्बों को सुधारने और ऊँचा उठाने, अपने घर के प्रत्येक भाई-बहिन को गौरवमय बनाने का प्रयत्न कब किया? इसलिए जहाँ-जहाँ सफलता मिल भी जाती है वहाँ भी नाम के लिए, पद के लिए, अधिकार के लिए—या अन्य छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए दलबन्दियाँ होने लगती हैं; ईर्ष्या-द्वेष, दम्भ और कलह का प्रचार होता है। एक ओर अपनी सफलता पर हम गर्व से फूले नहीं समाते पर दूसरी ओर क्षण भर के लिए यह नहीं सोचते कि इस प्रकार की झूठी सफलता की कितनी जबर्दस्त कीमत चुकानी पड़ती है। इसके कारण समाज में न जाने कितनी विषैली भावनाएँ फैल रही हैं। इसका नाम सफलता नहीं है; इसका नाम उन्नति नहीं है। और इसका कारण यह है कि जिस नींव पर हम अपनी दीवार खड़ी करना चाहते हैं वह ख़राब है और दुनिया के सामने अपनी भी इमारत खड़ी कर देने की जल्दी में हम उस नींव को सुधारने का धीरज धारण करना उचित नहीं समझते। जो कुटुम्ब समाज की जीवन-शक्ति का सोता है, उसमें सुधार करने, उसे प्रेम-पूर्ण और मधुर बनाने, उसे स्वस्थ जल-वायु पहुँचाने का प्रयत्न आज कितने लोग कर रहे हैं? मैं देश की हित-चिन्ता में पड़े हुए या समाज-सुधार में रात-दिन बितानेवाले अपने अनेक ऐसे मित्रों को जानता हूँ जिनका घरेलू जीवन बहुत ही दुःखपूर्ण और अयोग्य है पर अपनी धुन में ये इधर ध्यान ही कब देते हैं? बिहार के मेरे एक मित्र हैं जो इस समय एक प्रतिष्ठित नेता माने जाते हैं पर उनका

गृह-जीवन सब सुखों का मूल है

गृह-जीवन बहुत दुःखपूर्ण है। वे घर से सदा भागते फिरते हैं। उन्हें शान्ति नहीं मिलती है। उनकी पत्नी अलग दुखी है; उनके माता-पिता अलग अपनी खिचड़ी पकाते रहते हैं। लड़के उच्छृङ्खल जीवन बिता रहे हैं। वे बेचारे हृदय में बड़े दुखी हैं। कभी-कभी उनकी इच्छा होती है कि सब कुछ छोड़कर घर को आदर्श शान्ति गृह बनाने की कोशिश करें और लड़कों का भविष्य हाथ में ले लें। पर जो बोझ उन्होंने उठा रक्खा है उससे कुछ ऐसी आसक्ति हो गई है कि छूटता नहीं। आज देश में इस तरह के कुटुम्ब तीन-चौथाई होंगे जिनका समय और जीवन इस तरह बीत रहा है कि अपने, समाज के, देश के और मनुष्यता के विकास के लिए वे बिलकुल निकम्मे और अनुपयोगी होते जा रहे हैं। परस्पर जैसा सम्बन्ध होना चाहिए वैसा नहीं है। स्त्री का सह-धर्मिणी नाम बिलकुल व्यर्थ-सा हो रहा है। पुरुष बाहरी दुनिया के कामों में इस तरह डूबते जाते हैं कि घर की उन्हें सुध नहीं। स्त्रियाँ मन-मारे दुखी और उदास-सी घरों में पड़ी किसी तरह जीवन के दिन काट रही हैं। जो योग्य हैं समझदार बहिनें हैं, जिनके हृदय में पति-भक्ति की यथेष्ट मात्रा है वे पति को चिन्ता से मुक्त रखने के लिए अपने दिल के रोने को दिल में ही छिपाकर रखती हैं। वे रोते हुए दिल पर हँसी का परदा भी डालना चाहती हैं। यह *स्त्री का त्याग है*; यह उसकी महत्ता है। पढ़ी-लिखी न होकर भी विवाह के तत्व को उसने पूरी तरह जीवन में मिला लिया है और विवाह के समय की जानेवाली प्रतिज्ञाओं का अर्थ न समझकर भी उसने उनका उससे कहीं अधिक पालन किया है जितना उन प्रतिज्ञाओं का मतलब है। दूसरी ओर सब कुछ समझने-बूझने की बुद्धि और करने की ताक़त रखकर भी, इन प्रतिज्ञाओं के महत्व की व्याख्या करके भी, पुरुष—पति—अपनी पत्नी में अपने को मिला नहीं सकता है। वह पत्नी का उपयोग अन्य बातों के लिए करना चाहता है; उसकी दुनिया में पत्नी है पर और भी बहुत-सी बातें हैं; पर पत्नी के लिए तो पति ही परमधर्म है, वही उसकी दुनिया रूपी परिधि या गोलक का केन्द्र है। उसके लिए वह सब कुछ छोड़ सकती है—छोड़ती ही है पर पति, जब वह अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता हो तब भी, उसके लिए—उसके सुख के

लिए, उसकी तृप्ति के लिए बाहरी दुनिया को छोड़ना नहीं जानता। दुनिया के प्रलोभनों, संसार के सामने अच्छे रूप में प्रकट होने की इच्छा के आकर्षण के सामने वह बहुत कमज़ोर साबित होता है। अभी एक दिन पतिव्रत के माहात्म्य के सम्बन्ध में एक बहिन से मेरी बातचीत हो रही थी। पुराणों में आई हुई सती नारियों की कथाओं में कितना दूध है और कितना पानी है यह मैं नहीं जानता पर उसे मैं इस समय की स्त्रियों में एक आदर्श नारी समझता हूँ। वह बोली—'यदि मैं उन्हें किसी स्त्री के साथ दुष्कर्म करते अपनी आँखों से भी देखलूँ तो उनके प्रति मेरी भक्ति कम नहीं हो सकती। मैं उन्हें छोड़ने की कल्पना भी नहीं कर सकती। उनको वे देखें: मेरे लिए हर हालत में वे एक हैं!' इससे बढ़कर त्याग की, इससे ऊँचे भक्ति-भाव की कल्पना और क्या की जा सकती है? पर जहाँ उसने पति के लिए अपने सब सुखों का बलिदान कर दिया; उन्हीं को सुखी करने को उसने अपना परम धर्म माना तहाँ पति महोदय ने उसके सुखों के लिए अपने कार्यक्रम में परिवर्तन करना, अपने जीवन की धारा से जरा भी हटकर उसके लिए अपने सुखों को छोड़ने का उदाहरण नहीं उपस्थित किया।

समाज की उन्नति का मूल आधार सुखमय, शान्त और सन्तुष्ट गृह-जीवन है और यह तभी हो सकता है जब पुरुष-स्त्री, पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के अस्तित्व में अपने को मिला देने, एक-दूसरे के अन्दर खो जाने की कोशिश करें। व्यक्ति और कुटुम्ब के अच्छा होने से समाज की उन्नति अपने आप हो जायगी क्योंकि व्यक्तियों एवं कुटुम्बों के मिलने से ही समाज बनता है पर यदि व्यक्ति और कुटुम्ब को ऊँचा उठाये बिना समाज-सेवा की यूरोपीय प्रणाली का प्रचार किया जायगा तो समाज की भौतिक समृद्धि बढ़ जायगी पर व्यक्ति अर्थात् समाज का निर्माण करने वाले लोग दिन पर दिन गिरते और कमजोर होते जायँगे और स्वभावतः व्यक्तिगत और सार्वजनिक दो प्रकार के, और बहुत करके परस्पर-विरोधी, जीवन बनते जायँगे जैसा कि आज भी हो रहा है। जहाँ व्यक्ति एवं कुटुम्ब की पवित्रता और उन्नति का भाव प्रधान रहता है वहाँ व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार का जीवन ऊँचा होता जाता है क्योंकि

समाजिक जीवन का अच्छा होना व्यक्तिगत जीवन पर उससे अधिक निर्भर है जितना व्यक्तिगत जीवन का अच्छा होना सामाजिक जीवन पर निर्भर है। प्राचीन समय में भारत की उन्नति इसलिए हुई थी कि हमारा उद्देश्य समाज सेवा उतना नहीं, जितना आत्मशुद्धि करके शान्त एवं संयत जीवन बिताना था। उसी से अपने आप समाज की सेवा हो जाती थी। जब समाज-सेवा का भाव प्रबल हो जाता है तो व्यक्तिगत जीवन के संस्कार की ओर से ध्यान हट जाता और दूसरों की उन्नति के उपदेश में ही अपनी उन्नति का खयाल आ जाता है; इससे समाज का भी पतन होता है। वह ऊपर से उन्नत और समृद्ध दिखाई देकर भी भीतर से निस्सार, खोखला और अशान्त रहता है। कहते हैं कि एक बार बीरबल की सलाह से अकबर ने एक बावड़ी खुदवाई, उसमें पानी नहीं था। उसने आज्ञा दी कि रात को सब लोग इसमें एक-एक घड़ा दूध छोड़ जायँ। रात को अँधेरे में प्रत्येक ने सोचा कि सब तो दूध छोड़ेंगे ही यदि मैं चुपके से एक घड़ा पानी डाल जाऊँ तो उतने दूध में क्या मालूम होगा? सुबह देखा गया तो बावड़ी पानी से भरी थी और दूध का नाम भी न था!

समाज की भावना जहाँ प्रधान होती है वहाँ यही होता है। पर यदि लोगों ने केवल अपने कर्तव्य का ध्यान रक्खा होता तो बावड़ी दूध से भरी होती। अच्छी तरह समझ लो कि गृह या कुटुम्ब समाज की सब प्रकार की शक्ति का सोता है: वह समाज, देश और मनुष्यता का मूल पोषण-गृह ('नर्सरी') है। जो आदमी एक आदर्श कुटुम्ब के, सुखमय शान्त गृह-जीवन के विकास में अपना समय और अपनी शक्ति लगाता है वह निश्चय ही समाज की जड़ मजबूत करता और उसकी सच्ची सेवा करता है। इसलिए तुम सदा याद रक्खो *सुन्दर, शान्त और सन्तुष्ट गृह-जीवन सब सुखों का मूल है।* जबतक यह न होगा, न देश की सच्ची उन्नति होगी; न समाज को सच्चा रास्ता दिखाई देगा!

समाज में बहुतेरी स्त्रियाँ अपने पति की चिन्ता न बढ़ाने के लिए अपने

दुःख छिपा रखती है। पति यदि दुनिया के बाहरी कामों में ही लग जाय तो पत्नी के लिए सब-कुछ समझते हुए भी अनमनी रहना स्वाभाविक है। मनुष्य में बुद्धि है पर हृदय भी है बल्कि बुद्धि से हृदय की शक्ति अधिक है, और विशेषतः स्त्री के अन्दर—जो पुरुष की भाँति बुद्धि का देवता नहीं हृदय की देवी है। ऐसी स्त्रियाँ यद्यपि पति के कार्यों, समाज एवं देश की उनकी सेवाओं से अपने अन्दर गौरव का अनुभव करती हैं फिर भी उनका ध्यान सदा पति की ओर ही लगा रहता है! अपने एक घनिष्ट और आदरणीय बन्धु ने एक दिन मैं स्त्रियों के हृदय की इस भावना के सम्बन्ध में बात-चीत कर रहा था तब उन्होंने कहा कि 'स्त्री की यह चिन्ता शरीर के मोह के कारण है। यदि हृदय मिल जाय और प्रेम ऊँचे दर्जे पर पहुँच गया हो तो ऐसा अनुभव करने की ज़रूरत नहीं।' मुझे उनकी यह बात कोरी दलील-सी-मालूम पड़ी। मैंने उनसे आदरपूर्वक कहा, ऐसी बात नहीं है। मनुष्य के दूर हो जाने या मरने पर विशुद्ध शारीरिक मोह के कारण ही दुःख नहीं होता। मनुष्य के हृदय में, बुद्धि में, ज्ञान में जो कुछ प्रेम, नीति और अनुभव है उन्हें वह शरीर के द्वारा ही प्रकट कर सकता है। उसके पास जो कुछ है उसे प्रकट करने का एकमात्र साधन शरीर है। शरीर से ही वह देश की सेवा करता है; शरीर के साधन द्वारा ही वह ज्ञान देकर हमें ऊँचा उठाता है, बिना शरीर के वह जो कुछ है उसे न प्रकट कर सकता है, न उसका फ़ायदा किसी को पहुँचा सकता है, इसलिए देही या शरीरधारी के पास न रहने पर उसके अन्दर जो कुछ अच्छा है उसका लाभ भी नहीं मिलता या बहुत कम मिलता है। इसी-लिए जिन्हें हम भक्ति करते हैं, जिन्हें व्यक्तिगत या सार्वजनिक मामलों में अपना रास्ता दिखाने वाला समझते हैं उनके पास न रहने या दुनिया के कूच कर जाने पर जीवन में सूनेपन का, अभाव का अनुभव होता है। और इसीलिए जिसे हम प्रेम करते हैं, जिसको अपने जीवन के लिए, अपनी उन्नति और विकास के लिए आवश्यक समझते हैं उसके पास न रहने पर उसके अनुभव का, उसकी सहानुभूति और प्रेम का, उसकी बुद्धि और ज्ञान का लाभ

क्या यह शरीर का मोह है ?

नहीं उठा सकते; उसके न रहने पर या दूर चले जाने पर जैसे अपने जीवन की कमाई दूर चली जाती है। पत्नी पति को ही सर्वस्व समझती है अतः उसके लिए यह अनुभव होना स्वाभाविक है; इस दर्द को, इस अभाव को पुरुष, जिसके लिए दुनिया में सान्त्वना की, आशा की बहुत-सी जगहें हैं और जिसके पास और बहुत से काम हैं, अपनी दलीलों के बल पर समझ नहीं सकता!

इसलिए यद्यपि यह स्वाभाविक है कि जो स्त्री जितनी ही पतिभक्त होगी, पति को जितना ही अधिक प्रेम करती होगी वह उसकी अनुपस्थिति और अभाव का उतना ही अनुभव करेगी फिर भी तुम बहिनों को सदा यह सोचना चाहिए कि यद्यपि यह देखना, इसका ध्यान रखना और पत्नी को सब प्रकार सुखी एवं सन्तुष्ट करना पतियों का कर्तव्य है पर यदि वे अपना कर्तव्य पालन न कर सकें तो तुम लोग अपना कर्तव्य न भूलो। तुम्हारा कर्तव्य यही है कि जरूरत पड़ने पर पति के सन्तोष के लिए अपने उन सुखों का भी त्याग कर दो जिन पर न्यायतः तुम्हारा अधिकार है!

विवाह की वेदी पर पति पत्नी के साथ जिस प्रतिज्ञा में बँधता है उसके अनुसार वह अपनी सहधर्मिणी को बहुत थोड़ा देता है। पत्नी उसे अपनी सारी स्वतन्त्रता, अपना प्रेम, अपना शरीर, अपने प्राण अपना सर्वस्व सौंप देती है। उसके बदले पति—पुरुष उसे क्या देता है? वह अपनी स्वतन्त्रता अपने पास रखता है; वह अपनी दुनिया, अपने सिद्धान्त की रचना करने का अधिकर भी अपने पास रखता है। वह चाहता है कि मैं इस दुनिया में पत्नी को जिस जगह और जिस आसन पर बैठा दूँ वहीं बैठने में वह सन्तोष मानकर चुपचाप मेरी आराधना करती रहे; मुझे सब कुछ मानकर मुझसे प्रेम करे और जीवन के प्रत्येक विषय में मुझे ही अपना पथ-प्रदर्शक बनाये। इतनी साधना के बाद वह पत्नी को इस योग्य समझता है कि कभी-कभी दुनिया की झंझटों से थोड़ा समय निकाल कर उससे दो-चार मीठी बातें कर ले और प्रेम की लम्बी-चौड़ी व्याख्याएँ करके उसे भुलाये रक्खे! पति का यह थोड़ा-सा प्रेम ही पत्नी की

खोया हुआ प्रेम

वह सारी पूँजी है जो उसे इस तपस्या के कारण मिलती है। इस पूँजी के बल पर ही वह दुनिया को भूलकर केवल पति के लिए सब कठिनाइयाँ उठाती है ऐसी हालत में स्त्रियाँ इस प्रेम को सुरक्षित रखने के लिए प्रयत्न करें या उसके इधर-उधर होने की आशङ्का से चिन्तित और दुखित हो जायँ तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है।

पति के इस प्रेम को स्त्रियाँ बहुत सम्हाल कर रखती हैं, पर साधारण पुरुष के मन में जब तूफान आता है तो वह अपने को सम्हाल कर रख नहीं सकता—उसका वह असंयत प्रेम उसके अंग-अंग से फूट कर बह निकलता है! उसके प्रेम का यह ज्वार, यह तूफान जब शान्त होता है तो वह अतृप्त-सा दुनिया के कामों में अपने को भुलाने की कोशिश करता है। आरम्भ का वह आकर्षण, वे प्रेमभरी बातें कमजोर पड़ने लगती हैं। इसके विरुद्ध स्त्री आरम्भ में अपने को बहुत छिपाती है। उसके हृदय में बहुत धीरे-धीरे उफान आता है और वह धीरे-धीरे एवं चुपचाप ही अपनी बलि चढ़ाना पसन्द करती है पर उसका दान फिर जीवन भर कभी समाप्त नहीं होता; वह सदा देती ही रहती है। उसका प्रेम दिन पर दिन गहरा और व्यापक होता जाता है।*

फ्रांस के विश्वविख्यात लेखक अनातोले फ्रांस ने एक जगह बिलकुल ठीक लिखा है—"*स्त्री वादा नहीं करती पर पुरुष के लिए अपना सब कुछ निछावर कर देती है। पुरुष बहुत वादे करते हैं पर समय आने पर मुकर जाते हैं।*" इसलिए स्त्रियों की सारी आशा पति के उस थोड़े-से, कृपा करके दिये हुए प्रेम पर ही अवलम्बित है। इसके बिना उसका जीवन सूना हो

---

*भर्तृहरि ने सच्चे झूठे स्नेह का वर्णन करते हुए लिखा है—

आरम्भ गुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्ध परार्द्ध भिन्ना छायेव मैत्री खल सज्जनानाम्॥

अर्थात् सच्ची मित्रता दोपहर के बाद बढ़ने वाली छाया के समान पहले छोटी रहती है और फिर धीरे-धीरे बढ़ती जाती है।

जाता है। इसलिए बहिन! विवाह होने के बाद तुम सदा इस बात का ध्यान रखना कि तुमसे कोई भी छोटे-से-छोटा ऐसा काम न हो जिससे पति के मन पर उसका खराब असर पड़े। पुरुष बहुत जल्दी घबरा जाता है और एक बार जो प्रेम खो जाता है वह फिर लौटाया नहीं जा सकता। तुम्हें उसे बहुत सँजोकर रखना चाहिए। तुम्हारी जरा-सी गलती, जरा-सी दिल खट्टा करने वाली बात तुम्हारे सारे जीवन को सूना कर दे सकती है, फिर चाहे न्याय तुम्हारे ही पक्ष में हो।

हमारे धर्मशास्त्रों में विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है। विवाह में पाणि-ग्रहण के समय ही वर कहता है कि 'तू सुखपूर्वक मेरे साथ रहकर उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाली हो।' इसमें सङ्कोच की न सन्तान की इच्छा कोई बात है, न बुराई है। विवाह को भोग-विलास का स्वाभाविक है। साधन न बनाकर समाज को, देश को, संसार को अच्छे पुत्र एवं अच्छी कन्याएँ भेंट करने का साधन बनाया गया था। समाज के ख्याल से तो सन्तानोत्पत्ति उचित है ही पर यदि मानसिक और आध्यात्मिक भावनाओं की दृष्टि से देखें तो भी यह मालूम होगा कि मनुष्य के अन्दर सन्तान की इच्छा स्वाभाविक है।

पहली बात तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य के मन में अमर होने, अपने को सदा सुरक्षित रखने की भावना प्राकृतिक है। इसीलिए वेद में प्रार्थना है—

'मृत्योर्माऽमृतं गमय'

अर्थात् 'मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।' मनुष्य की प्रत्येक इच्छा, प्रत्येक भाव-भंगी एवं अंग-सञ्चालन में अपने बचाव की प्राकृतिक क्रिया दिखाई पड़ती है। इसका मतलब यही है कि वह निराशा से, मृत्यु से बचकर अमर रहना चाहता है। लेकिन वह जानता है कि प्रत्येक शरीरधारी के लिए मृत्यु अनिवार्य है इसलिए वह स्वयं तो सदा जीता नहीं रह सकता पर अपने ही रक्त-मांस से बना हुआ अपना एक रूप, अपना एक प्रतिनिधि दुनिया में छोड़ जा सकता है—कुल या वंश चलाने की भावना के मूल में यही बात है।

दूसरी बात यह है कि जब हम बच्चों के निर्मल जीवन को, उनके भेद-भाव-

रहित भावों को, उनके निर्दोष विनोद को देखते हैं तो स्वभावतः मन में आता है कि अहा ! इनका जीवन कितना सुन्दर, कितना निर्मल है ! दुनिया की कठिनाइयों एवं बुराइयों से ये दूर हैं। तब अपने लड़कपन के दिन याद आने लगते हैं, वर्तमान अवस्था में कठोरता और बनावट के अनुभव होने लगते हैं और मन में आता है कि क्या अच्छा हो, वे दिन फिर आ जायँ। किन्तु वे दिन आते नहीं, आ भी नहीं सकते; इसलिए सन्तान के, बच्चे के रूप में उन्हें लाने की भावना, कभी साफ़-साफ़ या अस्पष्ट-सी, मन में उदय होती है। यह जीवन की आरम्भिक याद है जो बड़े होने पर संसार के परदे में छिप जाती है किन्तु बच्चों को देखकर, परदे को हटाकर बाहर झाँकने लगती है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध महिला-कवि श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'मेरा नया बचपन' नामक एक कविता में इस भाव को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है। उन्होंने माता के हृदय की सच्ची भावनाएँ लिखी हैं। कविता बड़ी है, सब की सब देना तो कठिन है पर कुछ अंश, जो प्रसंग के अनुकूल हैं, यहाँ देता हूँ—

बार-बार आती है मुझको
मधुर याद बचपन तेरी।
गया, ले गया तू जीवन की
सबसे मस्त खुशी मेरी॥

× × ×

वह सुख का साम्राज्य छोड़कर
मैं मतवाली बड़ी हुई।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई सी
दौड़ द्वार पर खड़ी हुई॥

× × ×

दिल में एक चुभन सी थी
वह दुनिया सब अलबेली थी।
मन में एक पहेली थी
मैं सबके बीच अकेली थी॥

मिला, खोजती थी जिसको
हे बचपन ! ठगा दिया तूने।
अरे ! जवानी के फंदे में
मुझको फँसा दिया तूने॥
सब गलियाँ इसकी भी देखीं
उसकी खुशियाँ न्यारी हैं।

माना मैंने युवा काल का
जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का
उदय मोहने वाला है॥
किन्तु यहाँ झंझट है भारी
युद्ध-क्षेत्र संसार बना।
चिन्ता के चक्कर में पड़कर
जीवन भी है भार बना॥
आ जा, बचपन ! एक बार फिर
दे दे अपनी निर्मल शान्ति।
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली
वह अपनी प्राकृत विश्रान्ति॥

× × ×

मैं बचपन को बुला रही थी
बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन बन-सी फूल उठी
यह छोटी सी कुटिया मेरी॥

× × ×

पाया मैंने बचपन फिर से
बचपन बेटी बन आया।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर,
मुझमें नवजीवन आया॥
मैं भी उसके साथ खेलती
खाती हूँ तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वयं
मैं भी बच्ची बन जाती हूँ॥
जिसे खोजती थी बरसों से
अब जाकर उसको पाया।
भाग गया था मुझे छोड़कर
वह बचपन फिर से आया॥

इस प्रकार सन्तान की इच्छा अपने बचपन को फिर से लौटा लाने का भी एक प्रयत्न है। इन आध्यात्मिक और मानसिक कारणों के अतिरिक्त इसके व्यावहारिक कारण भी हैं। बात यह है कि विवाह के बाद पति ही पत्नी का एकमात्र सखा रह जाता है। वहीं से उसको सांत्वना मिल सकती है; वहीं से सुख मिल सकता है। किन्तु पुरुष प्रायः संसार के अनेक प्रकार के काम-काज में अपने को ऐसा फँसा लेता है कि वह स्त्री को सर्वदा साथ रखने या स्वयं साथ रहने की अपनी जिम्मेदारी को बहुत थोड़ी मात्रा में पूरी कर सकता है। इसलिए स्त्री को—पत्नी को—जीवन का एक सहारा ढूँढ़ने की जरूरत पड़ती है। उसे एक ऐसी चीज चाहिए जिससे वह अपना मन बहला सके; जिसके लिए अपने जीवन में स्फूर्ति और साहस लाने की आवश्यकता अनुभव हो; जिसपर वह अपनी ममता, दया, स्नेह इत्यादि कोमल भावनाओं को निछावर कर सके; और जैसे वह पति पर निर्भर करती है वैसे ही कोई उस पर भी पूरी तरह निर्भर करने वाला हो; जैसे वह पति के बिना रह नहीं सकती, जैसे पति ही उसका सर्वस्व है, वैसे ही कोई उसकी भी उतनी ही आवश्यकता समझे; उसके बिना रह न सके। बच्चा ही वह वस्तु है जो इन

भावों की भूख मिटा सकता है। इसके अतिरिक्त बच्चा पति-पत्नी के विवाहित प्रेम को दृढ़ करनेवाला बन्धन भी है। इसलिए पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में सन्तान की इच्छा अधिक प्रबल होती है। सन्तान माता की आशा है और उसके दिल की शान्ति है। आरम्भ से लेकर अन्त तक, उसका जीवन कर्तव्यमय है। इस कर्तव्यमय मरुभूमि में वह बच्चा ही हरियाली है जहाँ चलते-चलते थक जाने पर वह साँस लेती और थकावट दूर करती है। बच्चों का अभाव या उनका मूल्य पुरुष पूरी तरह समझ नहीं सकते। श्रीमती सुभद्राकुमारी ने गौरवमयी आत्मतृप्ति के साथ लिखा है—

परिचय पूछ रहे हो मुझसे
कैसे परिचय दूँ इसका ?
वही जान सकता है इसको,
माता का दिल हो जिसका।

इसीलिए हिन्दू-धर्म में नारी के आदर्श की सफलता माता के रूप में प्रकट होने में मानी गई है। कन्या में बालपन की सरलता होती है; नारी में भोग-विलास की प्रधानता होती है; और माता में दया, ममता और वात्सल्य के भाव उमड़ते रहते हैं इसलिए माता, लड़की के समान ही पवित्र मानकर पूजा करने योग्य बताई गई है।

माता हो जाने पर नारी के त्यागमय जीवन का, उसकी मंगलमयी और सदा देनेवाली मूर्ति का आदर्श पूरा होता है। सन्तानवती स्त्री के मन में जीवन के प्रति बहुत ही संयत और उच्च कोटि का भाव जाग्रत होता है। यह ठीक है कि बहुत-सी स्त्रियाँ माता होने पर भी माता नहीं बन पातीं और उस अवस्था में भी उनका रमणी रूप ही प्रधान रहता है फिर भी अधिकांश स्त्रियों में बच्चों के कारण स्वतः संयम का भाव जाग्रत होता है।

पर सन्तान-प्रेम का यह मतलब नहीं कि ढेर के ढेर बच्चे पैदा होते चलें। सन्तान उत्पन्न कर देने से ही माता-पिता का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। उनके पालन-पोषण, उनकी शिक्षा-दीक्षा की ज़बरदस्त ज़िम्मेदारी भी उन पर पड़ती है। निर्बल एवं अयोग्य बच्चों की अपेक्षा एक सबल और होनहार सन्तान

अधिक गौरव की बात है। फिर अधिक सन्तान की इच्छा असंयम और भोग-विलास का कारण बन जाती है। इसलिए प्रत्येक विवाहित बहिन सदा यह खयाल रक्खे कि माता बन जाना तो सरल है पर माता की ज़िम्मेदारी और उसके पद के गौरव को संभालना बड़ा कठिन है।

हिन्दू-धर्म में बहिनों, बहुओं और माताओं के लिए अनेक प्रकार के व्रत इत्यादि रखने की व्यवस्था है। भाई के लिए, पति के लिए, पुत्र के लिए, भैयादूज, वट-सावित्री, दुर्गाष्टमी, पुत्रदा एकादशी इत्यादि व्रत और त्यौहार व्रत स्त्रियाँ करती हैं। इनमें कुछ तो बड़े ही पवित्र व्रत हैं। जैसे भैयादूज, वट-सावित्री, हरतालिका इत्यादि। इनमें भाई की हित-कामना और प्रेम-पूर्ण सम्बन्ध को क़ायम रखने की भावना, पतिव्रत धर्म का महत्व और प्रभाव तथा पति के कल्याण की कामना भरी हुई है। *यह भी स्त्री-जाति की उच्चता और महत्ता का प्रमाण है कि वह* अपने भाइयों, पुत्रों और पतियों के लिए, उनके मंगल और कल्याण के लिए धर्म की शरण लेती है; उपवास करती है; स्थिरचित्त भगवान् को पुकारती है जब कि भाई, पुत्र और पति इन *अबलाओं* की रक्षा के लिए कोई भी ऐसी बात करते देखे नहीं जाते।

आजकल, समय के साथ, अच्छी बुरी सभी बातों से श्रद्धा उठती जाती है। तर्क करने, विवाद करने की भावना बढ़ती जाती है और यद्यपि एक सीमा तक इसकी ज़रूरत है, पर यह भूल जाना ठीक नहीं है कि ऊँचे आदर्शों की स्थापना और इतिहास का निर्माण उन्हीं लोगों के द्वारा होता है जिन्हें अपने अन्दर, अपने काम के अन्दर अटूट विश्वास और श्रद्धा होती है। इस श्रद्धा से मनुष्य का मन कोमल, दूसरों के दुःख को समझनेवाला, अनुभवशील और नम्र होता है इसलिए उसमें अच्छी बातों की—धर्म की भावना बड़ी प्रबल होती है।

त्यौहारों का, व्रतों और उत्सवों का भी आजकल 'बायकाट' होता जा रहा है। यह सब एक प्रवाह में बिना तौले, बिना जाने-बूझे बहते चले जाने की प्रवृत्ति है। एक ओर कट्टरों में धर्म की जो अन्धी और बुद्धिहीन व्याख्या दिखाई

पड़ती है वही आजकल के बहुत 'सुधारकों' में भी पाई जाती है। जैसे कट्टर-पन्थी प्रत्येक नई चीज़ को देखते ही नाक-भौं सिकोड़ते हैं वैसे ही नवीनपन्थी प्रत्येक पुरानी बात को तोड़ने पर तुले हुए हैं। इन दोनों की जीवन-धारा में विशेष अन्तर नहीं है। पहला दल प्राचीन के प्रति अन्धा है और जो स्वयं करता है बस उसी को ठीक सिद्ध करके दिखाना चाहता है और दूसरा दल नवीन के प्रति अन्धा है, जो प्रत्येक नई बात को—नाचने से लेकर सिगरेट पीने तक हरेक बात को—ठीक कहकर पुरानों की हँसी उड़ाता है। दोनों की मनोवृत्तियां अन्धी, अमौलिक और गुलाम हैं। चाहिए यह कि जहाँ भी अच्छी बात हो लेने के लिए हम सदा तैयार रहें।

इस दृष्टि से हमारे यहाँ बहुत से त्यौहार, व्रत और उत्सव ऐसे हैं जिनका भाव बड़ा पवित्र है। उनको रोकना नहीं चाहिए; हाँ उनमें उचित सुधार करने और उन भावनाओं को जगाने की कोशिश करनी चाहिए जिनके लिए वे प्रचलित किये गये थे। तुम्हें इन त्यौहारों के बाहरी आडम्बरों में, जिनसे देव पूजा की जगह पेट-पूजा अधिक होती है, न पड़ कर केवल उनके भावों का अनुसरण करना चाहिए। त्यौहारों का जाति के जीवन में बड़ा महत्व है। वे किसी खास और स्मरण रखने योग्य घटना की यादगार होते हैं। उस दिन उस घटना की चर्चा, आलोचना, विचार करना चाहिए और उसमें जो अच्छी बातें, अच्छे भाव हों उन्हें अपनाना चाहिए।

ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है स्त्रियों के मन में निराशा घर करती जाती है। एक दिन एक बहिन को मैंने खाने को एक फल दिया तो वह बोली—

चिरयौवना

'भाई! अब मैं तो बूढ़ी हो चली; क्या मेरे इन चीज़ों को खाने के दिन हैं? (बच्ची को दिखाकर) उसे दे दो।' इस बहिन की अवस्था पच्चीस वर्ष से भी कम है, जो जवानी की खास अवस्था है; पर उसके मुँह से ऐसी बात सुनकर मैं तो भौंचक रह गया! इस वाक्य में त्याग नहीं है, वैराग्य नहीं है; निराशा और दुःख अधिक है। आज-कल हमारे देश की स्त्रियों का स्वास्थ्य, उमंग-उत्साह, सब कुछ बीस से तीस की आयु के अन्दर ही चला जाता है। आज-कल जब हम एक

तरफ २०—२२ वर्ष की युवती लड़कियों को देखते हैं और उनसे उनकी चालीस-पचास वर्ष की माताओं और पचास-साठ वर्ष की सासों को मिलाते हैं, जिनके उनके समान कई लड़के-लड़कियाँ होती हैं, तो दिल में चोट-सी लगती है। सास और माँ भली-चंगी, स्वस्थ और उमंग वाली हैं और बहू या कन्या अपने पीले मुँह और दिन-दिन छीजते हुए शरीर को लिये अपाहिज और पंगु-सी हो रही है। आजकल की परदे से बाहर रहकर स्वस्थ जल-वायु का लाभ उठाने वाली स्त्रियों को आज से तीस वर्ष पहले ब्याही गई परदे में मकान की गन्दी चहारदीवारी के बीच रहने वाली स्त्रियों से मिला लो। इनकी शादी बहुत लड़कपन में दस-बारह की अवस्था में हुई थी; इन्होंने भोग-विलास का जीवन बिताया; सुधार की कोई भी सुविधा इन्हें नहीं मिली; साल-साल के ८-८, १०-१० हृष्ट-पुष्ट सन्तानें मौजूद हैं फिर भी आज-कल की बहुत-सी लड़कियों और आधे दिन रोगी रहने वाली बहुओं से इन्हें मिला लो। वे इनकी कलाई भी सीधी न कर सकेंगी! क्या यही उन्नति का मतलब है? सौ में पचहत्तर स्त्रियाँ आजकल स्त्री-रोगों की शिकार हैं। चाहिए तो यह था कि परदे के बाहर स्वस्थ जल-वायु में रहने के कारण, अधिक ज्ञान होने के कारण ये पहले की स्त्रियों से अधिक स्वस्थ होतीं; पर बात बिल्कुल उल्टी है। इससे समाज की सारी सन्तति निकम्मी होती जा रही है। जब पहले की स्त्रियाँ पानी के चार-चार, पाँच-पाँच, भरे घड़े लेकर चलती थीं आज की फैशनेबिल लड़कियों के लिए हैण्डबेग भी भारी हो रहा है। अपने बच्चे तो इनसे सम्हलते ही नहीं। अपनी माताओं, बहिनों और बेटियों की यह हालत देखकर रोना आता है। प्राचीन आर्य नारियों में बुढ़ापा जल्द सुना नहीं जाता था और जो अपने तेज से बहुत दिनों तक जवान और स्वस्थ रह सकती थीं, आज उनकी सन्तति की यह दशा है! क्या राणा प्रताप और शिवाजी आजकल की शौकीन कामिनियों के गर्भ से पैदा हो सकते हैं? क्या स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द को ये बीस वर्ष में चश्मा लगाने वाली बूढ़ी लड़कियाँ जन्म देंगी? क्या अर्जुन और भीष्म, याज्ञवल्क्य और वशिष्ठ, बुद्ध और शङ्कर को पिलाने योग्य पवित्र दूध इनकी छाती में है? क्या ये उस सीता को जन्म देंगी जो अपने बायें हाथ से

उस धनुष को उठाकर एक तरफ रख देती थी जिसे राम ने बड़े अभिमान से तोड़ा था ? क्या ये उस सावित्री को जन्म देंगी जिसने यम को मार भगाया था ? क्या वे तेज से भरी उस सती की माता होने योग्य हैं जिसने भरी सभा में पिता का अपने पति के अपमान के लिए फटकार कर अपने को आग की लपटों में भस्म कर दिया था ? या इनके गर्भ से वे राजपूतानियाँ उत्पन्न होंगी जो सतीत्व के लिए कटार मार कर अपना अन्त कर लेती थीं या अपने युद्ध-भूमि से भागे हुए पतियों को देखकर कह सकती थीं कि ये हमारे पति नहीं हो सकते, इन्हें दरवाजे के अन्दर न घुसने दो ? आज जब हमारा देश स्वतन्त्र होगया और उसकी गौरव-पताका फहराने वाले युवक युवतियों की जरूरत है तो ये बहिनें क्या इन्हें इसी मरकटे शरीर से जन्म देंगी ? यह याद रक्खो कि देश की बहिनों के स्वास्थ्य पर ही देश का भविष्य निर्भर है क्योंकि उन्हीं की गोद में जाति का निर्माण होगा और उन्हीं का दूध पीकर संसार को शान्ति का सन्देश देनेवाले बच्चे समाज के आँगन में खेलेंगे।

इसलिए तुम सदा अपने स्वास्थ्य पर ध्यान रक्खो। स्त्रियों का अपने स्वास्थ्य की ओर से उदासीन रहना और उसकी उपेक्षा करना न केवल अनुचित है वरं एक सामाजिक पाप है। प्रत्येक स्त्री को सदा यह आशा-भरोसा और हिम्मत रखनी चाहिए कि साठ वर्ष की अवस्था में भी जवान बनी रहूँगी। हमारे देश की एक बड़ी-बूढ़ी अँग्रेज स्त्री नेता अपने को 'बयासी वर्ष की युवती' कहती थीं और उनका उत्साह, उनका परिश्रम और कभी न थकने वाली उनकी शक्ति देखकर जवानों को शर्म आती थी। बहुत से लोग जवानी बनाये रखने की बात करते शर्माते हैं, पर यह इसलिए कि जवानी को भोग-विलास का साधन समझते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि जवानी में उत्साह है; जवानी में ऊँचा उठने और अच्छे से अच्छा काम करने की लगन है; जवानी में उत्तम भावों को जाग्रत करने का जोश है; जवानी में कर्त्तव्य पालने की शक्ति है; जवानी में सजीवता और आत्मनिर्भरता है; इसलिए जवानी बुरी चीज नहीं है। बुढ़ापे में रोग है; बुढ़ापे में निराशा है। इसीलिए देवता कभी बूढ़े नहीं होते; भगवान को बुढ़ापा कभी नहीं

आता। इसलिए सदा जवान बने रहने की कामना कोई बुरी बात नहीं है; बशर्ते कि विषय-भोग के लिए वह न हो।

दूसरी बात यह भी है कि पति-पत्नी के प्रेम में, हृदय से हृदय मिल जाने पर भी, कुछ न कुछ शारीरिक आकर्षण होता ही है। इसलिए यदि पत्नी पति का प्रेम सदा बनाये रखना चाहे तो भी उसे खूब प्रसन्न और स्वस्थ रहना चाहिए। स्वस्थ न रहने से घर के और कामों में भी विघ्न पड़ेगा और दिन-दिन लोग उससे ऊबते जायँगे।

बहिनों को अपने स्वास्थ्य का इतना ज्यादा ध्यान रखना चाहिए कि चालीस वर्ष की अवस्था में भी वे बीस-पच्चीस की मालूम पड़ें। यह बात अचरज की मालूम होगी पर असम्भव नहीं है। तुम पूछोगी कि वे कौन-से उपाय हैं जिनसे ऐसा हो सकता है। नीचे मैं वे बातें लिखता हूँ—

१. अविवाहित अवस्था में माता-पिता, भाई-बहिनों और विवाहित अवस्था में पति, सास-श्वसुर, देवर-देवरानियों और जेठ-जेठानियों तथा ननद इत्यादि के प्रति प्रेम रक्खो। प्रेम का अर्थ यह है कि सदा तुम्हारा हृदय उनके सुख, उनकी भलाई और उनके प्रति सद्भावों से उछलता रहे। प्रेम से बढ़ कर स्वास्थ्य को अच्छा बनाने वाला दूसरा पदार्थ नहीं है। प्रेम जीवन का अमृत है; प्रेम जीवन का रस है। जिसके हृदय में प्रेम भरा हो उसे दुनिया की कोई कठिनाई निराश नहीं कर सकती; उसका हृदय सदा उमंगों से भरा-पूरा रहता है।

२. सदा दुःख को दबाकर अपने को सुखी अनुभव करो और कड़ी बात को भी हँसी में उड़ा दो। सब से सदा मीठी बात बोलो; जिससे तुम बोलो उसके हृदय में उत्साह भर जाय; वह नाच उठे।

३. सदा संयम से रहो। संयम का मतलब यह है कि हलका, और जल्द हजम होने वाला भोजन करो और उठना-सोना, नहाना धोना, खाना-पीना और पढ़ना सब काम नियत समय पर हो।

४ कभी सुस्त मत बैठो। अपने को काम में लगाये रक्खो और अपने काम अपने हाथ से करो।

५. सदा अच्छे भाई-बहिनों के पास बैठो। गन्दी और दिल लुभाने वाली बातें करने वाली स्त्रियों या पुरुषों के पास न जाओ। अपने मन को बुरे विचारों से बचाओ। अच्छी बातों को ध्यान में रक्खो। केवल दिल बहलाने के ख्याल से कोई किताब मत पढ़ो; जिससे तुम्हें कुछ फायदा हो, कुछ शिक्षा मिले, जिससे तुम अच्छी बातें सीख सको, ऐसी ही किताब अपने पास रक्खो और ऐसी ही पढ़ो और उस पर बुद्धि से विचार करो। जो अच्छी बात हो उसे मन में गाँठ बाँध लो।

६. चिन्ता कभी न करो; भगवान् में विश्वास रख कर इसके लिए अपने को तैयार रक्खो कि जब जो बात, जो कठिनाई आ पड़ेगी उसे सह लोगी पर उस चिन्ता से हमेशा दुखी और उदास रहना ठीक नहीं है। इससे बहुत जल्द बुढ़ापा आ जाता है। हाँ, कोई गलती हो जाय तो मन में निश्चय करलो कि आगे से वह नहीं होने पावेगी।

७. सारे काम नियम और व्यवस्था से करो। हर चीज, हर काम, और हर बात में कायदा और तरतीब होनी चाहिए।

८. भूत-भविष्य की चिन्ता न करके वर्तमान को अच्छा बनाने और उसमें सुख पाने की कोशिश करो।

९. थोड़ा कसरत रोज करो। स्त्रियों के लिए चक्की चलाने, चर्खा कातने स्वच्छ हवा में थोड़ी दूर टहलने और मकान तथा कपड़ों की सफाई करने की कसरतें बहुत उपयोगी हैं।

१०. अपने हाजमे का हमेशा ध्यान रक्खो। पेट में खराबी न आने दो, जितनी भूख हो बस उतना ही खाओ। इतने पर भी यदि पेट में कोई खराबी आ जाय या पाखाना साफ न आवे तो तुरन्त उसकी दवा करो। गरम दूध में मुनक्के डालकर पीने, नीबू का रस चाटने और गुलकन्द (सिर्फ गरमी में) खाने से पेट की मामूली खराबी दूर हो जाती है। दर्द या ज्यादा खराबी मालूम हो तो योग्य डाक्टर या वैद्य से सलाह लो। यह याद रक्खो कि सारी बीमारियों की जड़ हाजमे की खराबी है। पेट की गड़बड़ी से आँखें कमजोर हो जाती हैं; सिर में दर्द होने लगता है; दाँत में बदबू और कीड़े पैदा हो जाते हैं;

मुँह मुरझा जाता है; जुकाम और पेट में जलन तथा दर्द बना रहता है; बवासीर, प्रदर, मधुमेह इत्यादि रोग हो जाते हैं; चक्कर आने लगता है, नींद नहीं आती और भोजन बेस्वाद मालूम पड़ता है। इसलिए सदा पेट को साफ रक्खो।

११. सोते समय मुँह खोलकर और बाल बिखरा कर सोओ। कमरे की कम-से-कम एक खिड़की जाड़े में भी खुली रखनी चाहिए। जलती लालटेन या आग सोने के कमरे में कभी न रक्खो; नहीं तो विषैली गैस नाक के द्वारा शरीर में समा जायगी और फेफड़े कमज़ोर हो जायँगे। हमेशा बालों को बाँध कर रखने से वे कमज़ोर हो जाते हैं। सोने के पहले सिर में तेल अच्छी तरह लगाओ और बालों को बिखरा कर सोओ। जैसे हमें हवा की जरूरत होती है वैसे ही बालों को भी होती है। रात को नौ बजे सो जाओ; दस बजे के बाद जागना बड़ी खराब बात है। इसी तरह चार बजे सुबह उठ जाना स्वास्थ्य के लिए बहुत फायदा करता है। उठ कर भगवान् का स्मरण करो और कुल्ला करके नाक बन्द करके धीरे-धीरे एक ग्लास पानी रोज पिया करो, फिर थोड़ी दूर टहलो और तब टट्टी इत्यादि दूसरे कामों में लगो।

१२. कभी क्रोध न करो; न चिढ़कर बोलो। याद रक्खो कि जिस पर क्रोध किया जाता है, उसकी अपेक्षा जो क्रोध करता है उसके स्वास्थ्य पर ज्यादा खराब असर पड़ता है।

दो बातों से बचो!

गृहस्थी में सदा दो बातों से बचो। एक यह कि कभी झगड़े-लड़ाई में न पड़ो, न खुद कोई झगड़ा खड़ा होने दो और दूसरी यह कि माता-पिता भाई-बहिन से या विवाह के बाद पति या ससुराल में और किसी से, बहुत सम्हालने पर भी यदि जरा भी झगड़ा हो जाय तो उसे खुद प्रेम से, नम्रता से क्षमा माँगकर तय कर लो। दूसरों को पंच न बनाओ नहीं तो वह तुम्हारी कमजोरियों से फायदा उठाकर कभी तुम्हीं को नीचे गिराने की कोशिश करेंगे। यह मत ख्याल करो कि क्षमा माँगने में कमजोरी या हेठी है। नहीं, इससे तुम्हारे हृदय में पवित्रता आयेगी और तुम्हारे अन्दर अच्छे विचारों की

वृद्धि होगी।

× + +

वह एक साधारण गृहस्थ के घर, गृहस्थी की कठिनाइयों के बीच, पैदा हुई थी। कठिनाइयों के बीच लाड़-प्यार की जितनी सुविधाएँ मिल सकती हैं, उतनी उसे मिलीं। लड़कपन के दिन पूरे न हुए थे कि शादी हो गई—गृहस्थी का बोझ सिर पर आ पड़ा। रात-दिन की चिन्ता, अपने दुःख को छिपाकर सबको प्रसन्न रखने की उत्कण्ठा में उसका शरीर गलने लगा। कभी यह नाराज, कभी उनको मनाना है; कभी ससुर बीमार हैं; कभी पति की तबियत ठीक नहीं है, दवा-दारू करनी है। अभी दवा देकर उठी तो देखा मकान साफ करना है, बर्तन माँजने को पड़े हैं। उनसे निबटी और नहा-धोकर खाना पकाने को आग जलाई और आटा गूँधने लगी। आधा भोजन तैयार हो गया था कि मालूम हुआ दो मेहमान और आये हुए हैं। बेचारी ने सोचा था कि जल्दी से भोजन से निबटकर दवा इत्यादि तैयार कर दूँगी और पति के दर्द करते हुए शरीर में थोड़ी मालिश करूँगी, तबतक मेहमानों का बोझ आ पड़ा। रात को देर से सोने के कारण आँखों में जलन हो रही है; सिर भारी है, घर में पति के स्वास्थ्य को देखकर चिन्ता से हृदय दुखी है। उधर मेहमानों को जल्दी ही खा-पीकर किसी से मिलने जाना है। किसी तरह राम-राम करके खाने-पीने का काम खत्म हुआ तो फिर बर्तन माँजने में लगी! बर्तनों से निबटी तो देखा नहाने के घर में ढेर के ढेर कपड़े पड़े हैं। साफ़ करते-करते बाहों में दर्द होने लगा और किसी तरह काम ख़त्म किया। फिर देखा कि धोती एक जगह से फट रही है जिसे न सी दिया तो और भी फट जायगी। झट उसमें लग गई। उधर पति के पास बैठकर उनसे दो-चार मीठी बातें करने, उन्हें शान्ति देने, उनकी सेवा करने को जी चाहता है, इधर शाम होने को आई। फिर भोजन की तैयारी में लगना है। अभी दाल-चावल, शाक-भाजी सब पड़ी हैं। उन्हें साफ़ करना है। उसके बाद फिर वही खटराग चला! इस तरह बिना एक मिनट की शान्ति और विश्राम के उसका

इस चित्र की ओर देखो!

जीवन बीत रहा है।

पीछे सन्तानवती होने पर सन्तान की बड़ी भारी जिम्मेदारी आ पड़ी। उसका पालन-पोषण करने में रात की नींद भी गायब होने लगी! उसे नहलाना धुलाना, खिलाना-पिलाना, कपड़े साफ़ करना, खेलाना-झुलाना!—काम बढ़ता ही गया और उसे कभी इतनी फ़ुर्सत न मिली कि देखे मैं क्या थी, क्या हो गई हूँ। कैसा कंचन सा शरीर था, चेहरे पर कितनी कान्ति, कितना तेज था। मन में बड़ी-बड़ी उमंगें और बड़े-बड़े हौसले थे पर एक-एक करके सब उसने त्याग दिये! और—

बदले में उसे क्या मिला? उसके त्याग की कानोंकान किसी को खबर न हुई। उसके जीवनव्यापी बलिदान की कहानियाँ अख़बारों में नहीं छपीं। उसका हाल किसी ने न जाना; उसकी प्रशंसा के लिए सबके ओठ चुप हैं—हाँ, निन्दा और डाँट-फटकार की बौछारें कभी-कभी उसकी तरफ आ निकलती हैं; उसकी आँखों के कोनों में सजीव मोती के दो-चार दाने उदय होते हैं; दुनिया की ओर हसरत और निराशा से देखते हैं और फिर चुपचाप ढुलककर मिट्टी में मिल जाते हैं! इसे भी कोई नहीं देखता। फिर भी निन्दा और कठिनाइयों से भरे इस मार्ग से वह चुपचाप अपनी गृहस्थी का बोझा उठाये जीवन की मंज़िल पर चली जा रही है।

\+ \+ \+

यह एक साधारण स्त्री का चित्र है। अमेरिका की एक बहिन अपने देश की ऐसी साधारण स्त्रियों के बारे में अपनी एक पुस्तक में लिखती हैं—

'मेरी इच्छा होती है कि यदि मुझे बहादुरी के तमग़े बाँटने का संयोग प्राप्त हो तो मैं साधारण स्त्री को सबसे अच्छा तमगा दूँ। यह बात ठीक है कि उसने कभी तूफ़ान से डूबते जहाज को किनारे नहीं लगाया, न किसी डूबते हुए आदमी को नदी से निकाला और यह भी सच है कि भागते हुए घोड़े को नहीं पकड़ा और न किसी जलते हुए मकान में से किसी के प्राणों की रक्षा की अथवा और किसी प्रकार से किसी हिम्मत के काम में कोई वीरता दिखाई।

'उसने केवल इतना किया कि तीस-चालीस वर्ष तक गृहस्थी में स्थिर रही और बीमारी, ग़रीबी के बीच अकेली रहकर चुपचाप अनेक निराशाएँ सहीं और इन विपत्तियों को ऐसी हिम्मत के साथ बर्दाश्त किया कि किसी को कानोंकान ख़बर न होने दी। ऐसी साधारण स्त्री के सामने बहादुर सिपाही भी सिर झुकाकर उसकी वीरता के लिए अभिवादन करेगा।

'उसकी शकल से कोई बहादुरी या उच्चता का भाव प्रकट नहीं होता। वह एक साधारण स्त्री है जिसके साधारण कपड़े, थका हुआ चेहरा तथा काम से घिसे हुए हाथ होते हैं। इस स्त्री को सैकड़ों बार तुमने देखा होगा परन्तु कभी उसे प्रणाम करने का विचार न आया होगा; परन्तु वास्तव में एक शूरवीर सिपाही की तरह मनुष्य-जीवन की लड़ाई में वह बहादुरी की प्रशंसा पाने की हकदार है।

'इस बात को वर्षों गुज़र गये जब वह नई जवानी के साथ हृदय में उमंगें भरे हुए विवाहित हुई थी। उसने अपने मन में बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रक्खी थीं।

\+ \+ \+

'एक-एक करके उसकी सब आशाएँ नष्ट हो गईं। उसको जो पति मिला वह भला आदमी था परन्तु थोड़े ही दिनों पीछे उसका स्वभाव बदल गया। अब वह स्त्री के रूप या शृंगार की प्रशंसा नहीं करता, न उससे अब मीठी-मीठी बातें करता है; न इसके लिए उसके पास अब समय है। धीरे-धीरे उसके विवाह का सुख दूर हो गया और प्रेम और आनन्द के सुखमय मार्ग की जगह उसके सामने कर्त्तव्य और चिन्ता का कठोर मार्ग फैला हुआ है।

'हर रोज़ वह सिलाई करती, भोजन बनाती, और घर की सफाई करती और यह सब उस आदमी के लिए जो इस सेवा के बदले उससे दो मीठी बातें नहीं करता था। उसके सिवाय जब उसका मिज़ाज बिगड़ता तो रुखाई के साथ झगड़ा करता। जब उसका मिज़ाज शान्त होता तो भूखे पशु की भाँति भोजन करता और अख़बार लेकर एक कोने में बैठ जाता; स्त्री बेचारी अपना मन मारे अपनी गृहस्थी के काम में फँसी रहती।

'भाग्य से पति में रुपया पैदा करने का गुण था; वह बड़े परिश्रम से

जीविका उपार्जन करता था पर संसार में सभी ऐसे भाग्यशाली नहीं हैं! ऐसे भी हैं जिन्हें पेट की चिन्ता हर समय लगी रहती है; स्त्रियों को दरिद्र जीवन काटने को मजबूर होना पड़ता है। यह स्त्री का ही काम है कि थोड़ी आदमनी में गुज़र करती है तथा पति एवं बच्चों के सुख के लिए उसे अपना पेट काटना पड़ता है: वह एक रुपये में पाँच रुपये का काम निकालती है।'

तुम साधारण स्त्री के इस चित्र को ध्यान से देखो। वह कितना बलिदान देती है, वह कितने सुखों को छोड़ती है; कितने पदार्थों के लिए उसे मन मारना पड़ता है; वह घर में सब को अच्छा खिला देती है और स्वयं क्या खाती है, इसका किसी को पता नहीं चलता, न कोई पता चलाने की परवा करता है। कभी-कभी सब को खिलाने के बाद इतना ही बचता है कि अधपेट खाना पड़ता है; कभी शाक खत्म हो जाता है और नमक से सूखी रोटी चबानी पड़ती है, किन्तु इसका पता किसी को चलने तक नहीं देती।

जब वह थकी होती है या भीतर-ही-भीतर बुखार से हड्डियाँ चिलकती रहती हैं तब भी घर का सब काम किये जाती है। रोते हुए बच्चों को चुमकार कर सुलाती हैं और जब बच्चों को शीतला, चेचक इत्यादि कठिन रोग हों तो भी अपने प्राणों को ख़तरे में डालकर उन्हें कलेजे से चिपकाये रखती है। एक तरफ पति या किसी बच्चे की बीमारी से उसका दिल करता है कि खूब रोये और दूसरी तरफ दूसरे रोते बच्चे को चुमकारती और कलेजे पर पत्थर रखकर हँसती और उसे भी हँसाती है। सम्भव है, यह लड़का आगे जाकर उसी का विरोधी निकल आवे किन्तु वह अपने स्नेह में इन बातों का विचार किये बिना अपने कर्तव्य का पालन कर रही है। इस मौन त्याग और अविचल धीरज के सामने किस सिपाही की बहादुरी ठहर सकती है? इस जीवन-व्यापी तप के सामने किस देशसेवक का त्याग तुलना के लिए पेश किया जा सकता है?

मैं चाहता हूँ कि तुम अपने सामने यश और धन के लिए ललचनेवाली स्त्रियों की जगह साधारण स्त्री का यह चित्र रक्खो! मैं जानता हूँ कि देश या समाज में ऐसी स्त्री को कोई नहीं पहचानता; किसी के हाथ उसके स्वागत के

लिए नहीं उठेंगे; न तुम्हारे इस चुनाव की कोई प्रशंसा करेगा; किन्तु इतने पर भी मैं कहूँगा कि वह उन लोगों से कहीं महान् है जिनकी बातों पर हजारों तालियाँ एक साथ बज उठती हैं या जिनके लिए सभाओं में सबसे आगे कुर्सियाँ सजाकर रक्खी जाती हैं! ऐसी स्त्री आँख से देखने की चीज़ नहीं है, कान से सुनने की कहानी नहीं है, सिर झुकाने लायक मूर्ति नहीं है; हृदय में रखने, दिल में अनुभव करने की चीज़ है। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा नाम हो; मैं नहीं चाहता कि तुम उपदेश देने योग्य विदुषी बनो; मैं नहीं चाहता कि रानी बनकर लोगों पर हुक्म चलाओ। मैं चाहता हूँ कि तुम ऐसी ही एक साधारण स्त्री बन जाओ!

× × ×

दुनिया की राय तुम्हारी कसौटी नहीं है

दुनिया में आगे चलकर तुम पर अनेक ऐसी कठिनाइयाँ आयेंगी जिनकी तुम्हें कल्पना भी न होगी। जब तुम बिलकुल पवित्र और निर्दोष होगी बहुत-से स्त्री-पुरुष तुम्हारा नाम धरेंगे और निन्दा करेंगे। समाज की निन्दा से बढ़कर चोट पहुँचानेवाली चीज़ दूसरी नहीं है और विशेषतः जब एक आदमी निर्दोष हो और उसकी निन्दा की जाय तो मनुष्य पर से उसकी श्रद्धा उठ जाती है। पर तुम कभी निन्दा से विचलित होकर कोई काम न करना। भगवान् के सामने पवित्र रहो और उसके चरणों में अपने को छोड़ दो। मैं जानता हूँ यह कठिन है। दुनिया बहुत गिर गई है इसलिए वह साधारण सुधार को, एक स्त्री-पुरुष की साधारण घनिष्टता को या पवित्र प्रेम को भी अपने ही तराजू से तौलती है। उसके ऐसे नाप-जोख को सह लेना बड़ा कठिन काम है। पर सदा यह वाक्य याद रक्खो—*"पाप-रहित हृदय से बढकर दूसरा रक्षक नहीं है।"*

निन्दा-भय से, यदि तुम सच्ची और निर्दोष हो तो, अपने सिद्धान्तों से डिग जाना ठीक नहीं। जो मनुष्य निन्दा पर कान देकर आदर्श से गिर जाता है वह ईश्वर का अपमान करता है और उसके प्रति अविश्वास प्रकट करता है। *सदा याद रक्खो कि जो सत् है, सच्चा है वह मर नहीं सकता, वह*

निन्दा का विष पीकर भी बना रहेगा; जो नाशवान् है, नष्ट होने योग्य है, वही नष्ट होता है।

इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम अपने को इतना ऊँचा उठा लो कि न तो कोई निन्दा तुम्हें तुम्हारे उचित मार्ग से हटा सके और न यश की कोई भावना तुम्हें झूठे मार्ग पर चला सके। इसी में तुम्हारा गौरव है। याद रक्खो जब सीता और सती निन्दा से न बच सकीं तो साधारण स्त्रियों के जीवन की झूठी-सच्ची कहानियाँ फैलने में आश्चर्य की क्या बात है? इसलिए कोई काम लोगों की खुशी या नाराज़ी के कारण मत करो बल्कि यह सोचकर करो कि वह अच्छा काम है।

ऊपर मैं लिख चुका हूँ कि तुम साधारण स्त्री को अपना आदर्श बनाना। उस स्त्री का चित्र भी तुम्हारे सामने खींचकर रखने की चेष्टा मैंने की है। पर उसके अतिरिक्त प्राचीन आर्य-नारियों में से सीता और दमयन्ती दो के चरित ऐसे हैं कि प्रत्येक स्त्री उन्हें अपना आदर्श बनाकर जीवन ऊँचा उठा सकती है। सीता के चरित में पति के प्रति प्रेम है, जीवन की कठिनाइयों को सहने का साहस और हौसला है, लज्जा है पर अपने आदर्श और अपने धर्म के पालन की दृढ़ता भी है। राम के राज्य छोड़कर जंगलों में जाने के समय वह उन्हें राज्य छोड़ने के सङ्कल्प से हटातीं नहीं; इसके बारे में वे एक शब्द भी नहीं कहतीं, यद्यपि कुछ ही समय पहले उनका ब्याह हुआ और वे सदा सुख के पालने में झूलती रहीं। पर भोग-विलास में उनकी आसक्ति नहीं थी। उन्हें इसे छोड़ते ज़रा भी दुःख नहीं हुआ। हाँ, पति जंगलों में मारा-मारा फिरे और वे राज-भोग भोगें, यह उनकी कल्पना के बाहर था। इसलिए राम के समझाने पर, घर पर ही रहकर सास-ससुर की सेवा करने को कहने पर भी, वह न हिगीं और राम के हिचकिचाने और वन की कठिनाइयाँ बताने पर बोलीं कि 'आप मेरे पति हैं, आपके चरणों में मेरी अगाध श्रद्धा है; आपके बिना मैं जी भी न सकूंगी। आपके साथ जंगल भी मुझे स्वर्ग हो जायगा।' इसपर भी जब राम साथ ले जाने को राजी न हुए तो सीता, अपूर्व तेजस्विता के साथ, बोलीं

तुम्हारे तीन आदर्श

"मेरे पिता मिथिलाधिप राजा जनक ने आपको पुरुष शरीरधारी स्त्री नहीं समझा था, अतएव उन्होंने आपको अपना दामाद बनाया। जो सती है, जो आपके साथ बहुत दिनों तक रह चुकी है, लड़कपन में ही जिसके साथ आपका व्याह हुआ है, उस स्त्री को आप नट के समान दूसरे को देना चाहते हैं!"*

× × ×

इसी प्रकार की तेजस्विता सीता ने तब दिखाई थी जब हनुमान ने लंका में उनसे कहा कि "माँ! तुम मेरी पीठ पर बैठ जाओ। मैं एक छलाँग में समुद्र लाँघ कर तुम्हें भगवान रामचन्द्र के पास पहुँचा दूँगा।" सीता ने तब कहा था—"वत्स! मैं इस तरह यहाँ से नहीं जा सकती। जब राम वीरों की भाँति शत्रु को मार कर, विजय प्राप्त करके मुझे ले चलेंगे तब जाऊँगी।" अग्निपरीक्षा के समय भी सीता ने ऐसी तेजस्विता दिखाई थी। पति के लिए उन्होंने राज-पाट, भोग-विलास छोड़ा; सास-ससुर सब को छोड़ दिया; लंका में वियोग में दुबला पतला हो गईं; पर उनका प्रेम केवल शरीर का मोह नहीं था; उसमें तेजस्विता थी, उसमें गौरव था। सीता की पति-भक्ति ऐसी न थी जो उचित अनुचित का कुछ विचार नहीं करती। वह पति-भक्त थीं; पर साथ ही उनमें साहस, गौरव, तेज और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रह कर धर्म-पालन करने की भी शक्ति थी। अपने सतीत्व और अपनी पति-भक्ति का ज़रा भी अपमान उन्होंने कभी सहन नहीं किया। पति के मन में भी कालिमा आ गई तब भी उन्होंने सफाई न देकर राम से, बड़े गर्व और दुःख से कहा—'हे राम! तुम ऐसा कहते हो?' उस पतिव्रत के लिए स्वयं पति—राम—को भी छोड़ने का साहस उनमें था। आज देश में उनके समान ही पतिभक्ता त्याग-शीला, धर्म-परायणा पर तेजस्विनी स्त्रियों की आवश्यकता है।

---

*किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम्॥
स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितो सतीम्।
शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि॥
—वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड सर्ग ३०, श्लोक ३,८

मेरी सम्मति में, सीता के बाद, दमयन्ती को तुम अपना तीसरा आदर्श चुन सकती हो। दमयन्ती ने पति के लिए क्या-क्या नहीं सहन किया? उसके पति नल जब जुए में सब कुछ हार कर, नंगे-भूखे जंगलों में घूमते तो दमयंती परछाईं की तरह सदा उनके साथ लगी रहती। उसने पति के लिए सब कुछ छोड़ा। उसका हृदय पति के प्रेम से भरपूर था, इसलिए घास पर सोने में उसे मखमली गद्दों से भी अधिक सुख होता था और कंटे उसे फूल के समान लगते थे। उसकी भक्ति और धीरज को देखकर जब नल दुःख से अधीर हो रात को उसे सोती छोड़ कहीं चले गये और एक व्याध ने उसका सतीत्व भंग करना चाहा तो उसने अविचल धैर्य और अद्भुत साहस एवं तेज के साथ अपने नारी धर्म की रक्षा की थी। सीता जहाँ सच्चे अर्थ में एक तेजस्विनी *सहधर्मिणी* एवं एक तपस्विनी नारी थीं वहाँ दमयन्ती एक प्रेममयी पत्नी और सच्ची *जीवन-संगिनी थीं*। कोई भी बहिन इनके जीवन से पति-प्रेम और तेजस्विता, त्याग और आदर्श पत्नीत्व के भाव ग्रहण करके स्त्री जाति का गौरव बढ़ा सकती हैं।

\+ \+ \+

विवाह के पहले जितनी बातें विवाहित जीवन के बारे में योग्य कन्या को जाननी चाहिएँ, मैंने लिख दी हैं। हमारे देश में प्रायः विवाह के बाद, विदा करते समय, लड़की को थोड़े में उपदेश करने की प्रथा है। पर उन सब बातों को मैंने पहले ही लिख दिया है जिससे ब्याह होने के बाद ससुराल में तुम्हारे जीवन का सद्व्यय हो किन्तु आज मुझे महान् ऋषि कण्व का वह उपदेश याद आ रहा है जो उन्होंने शकुन्तला को पति के घर भेजते समय दिया था। उसमें थोड़े में सब बातें आ गई हैं, इसलिए उसे भी लिख देता हूँ—

"गुरुजनों-बड़ों की सेवा करना; सौतों* के साथ प्यारी सखी के समान आचरण करना: स्वामी कभी तिरस्कार भी करें तो क्रोध में आकर अनुचित

---

*उस समय पुरुष बहु विवाह करते थे जो राजा-महाराजाओं एवं धनी लोगों में आज भी प्रचलित है।

एवं विरुद्ध काम करना; परिवार के सब लोगों के साथ बहुत उदारता का व्यवहार करना, भोग की वस्तुओं में अभिलाषा मत रखना। इस तरह रहने वाली स्त्रियाँ योग्य गृहणी होती हैं, इसके विपरीत आचरण करनेवाली कुल के लिए पीड़ा के समान हो जाती हैं।"[1]

इसी तरह साधारण स्त्रियों के मुँह से मैंने एक टूटा-फूटा गीत सुना था, जिसके कुछ अंश याद हैं—

पहनो-पहनो री सुहागिन ज्ञान-गजरा।
दया-धरम की ओढ़ चुनरिया शील का नेत्रों में डालो कजरा।
पहनो-पहनो री०॥
लाज करो तुम पर पुरुषों से अपने पति का देखो मुखड़ा।
सास ससुर की सेवा करियो कबहुँ पती से न कीजो झगड़ा।
पहनो-पहनो री सुहा०॥

अर्थात् "ऐ सुहागिन! यह ज्ञान की माला पहन ले। दया-धर्म की चूनरी ओढ़ और आँखों में शील-सङ्कोच का काजल दे। दूसरे पुरुषों से लज्जा रखना और अपने पति की ओर ही ध्यान रखना। सास-ससुर की सेवा मन लगाकर करना और पति से कभी झगड़ा न करना।"

थोड़े में यह सब शिक्षाओं का निचोड़ है।

स्त्रियों के सम्बन्ध में, उनके आदर्श के सम्बन्ध में, बहुत लिखा जा सकता है पर मैंने तुम्हें थोड़े में सारी बातें बताने की चेष्टा की है जिससे न केवल तुम एक योग्य गृहिणी बन सको, वरं भगवान् ने तुम्हें जो स्त्री का जन्म दिया उसका आदर्श पूरा हो; तुम्हारा जन्म सफल हो और दुनिया से

---

[1] शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूमिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।

अभिज्ञान शाकुन्तल, अंक ५

विदा होते समय तुम्हें इस बात का सन्तोष—गर्व नहीं—रहे कि मैंने *अपना कर्तव्य पालन किया है।*

दुनिया में लिखने की बातें बहुत हो सकती हैं पर मैंने तुम्हें जो ग्यारह पत्र लिखे हैं उनमें लिखी हुई बातों पर ध्यान दोगी तो वही बहुत होगा। भगवान् ने हम लोगों को धन नहीं दिया, रूप नहीं दिया, यश नहीं दिया, बल नहीं दिया पर जो निर्मल मन और दुर्बल शरीर दिया है उससे भी हम लोग बहुत ऊँचा उठ सकते हैं। परवा नहीं. उस उठने को दुनिया न जाने; परवा नहीं उस उठने में लोग निन्दा के काँटे मार्ग में बिखेरें; परवा नहीं, सच्चे हितैषी और मित्र भी बदल जायें पर हमारा मन पवित्र रहे; हमारा विश्वास उस परम पिता के अन्दर अटल रहे जिसके निर्णयों पर दुनिया की निन्दा और दुनिया से मिलनेवाला यश अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। जिस समय हमें कोई देखनेवाला न हो उस समय भी हममें पाप की भावना न आवे और आवे तो हम एक मिनट के लिए भी न भूलें कि यद्यपि वहाँ कोई मनुष्य उपस्थित नहीं है भगवान् सब देख रहा है।

हम लोगों के पास दुनिया में गर्व करने लायक और कोई पूँजी नहीं है इसलिए हमें अपने सुविचारों और सद्गुणों को विकसित करने की ज़्यादा आवश्यकता है। हमारे पास वह धन नहीं है जिसके ढेर में बहुत से पाप छिप सकते हैं या जिसके द्वारा बहुत-सा पुण्य सहज ही ख़रीदा जा सकता है; हमारे पास यश नहीं है जिसके अन्दर हम अपने हृदय की मलिनता को छिपाकर निर्द्वन्द्व दुनिया में घूम सकें; हमारे पास बल और रूप नहीं है जिससे हम लोगों को अपने अनुकूल उपयोग करने का झूठा हौसला करें; हमारे पास बस यही छोटा-सा शरीर है और उसके अन्दर वह हृदय है जो किसी को दिखाया नहीं जा सकता पर जिसके सहारे दुनिया की सम्पूर्ण कठिनाइयों को पार करके भगवान् के चरणों तक पहुँचा जा सकता है।

मैं चाहता हूँ कि प्रेम तुम्हारी पूँजी हो; सेवा तुम्हारा साधन हो; त्याग तुम्हारी साँस हो और निष्पाप हृदय तुम्हारा रक्षक हो।

: १ :

जगज्जननी !

तेरे हृदय की स्नेह-गंगा में स्नान कर न जाने
छाती के अमृत ने न जाने कितनों को अमर बनाया है ! तेरे नेत्रों की ज्योति से न जाने कितने अभागों को प्रकाश मिला है; तेरी भौंहों के सञ्चालन से इतिहासों के न जाने कितने पन्ने लिखे गये हैं। तेरी गोद में दुनिया कब से जन्म ले रही है; कब से पल रही है और कब से नष्ट हो रही है ! दुःख में आतङ्क में, प्रसन्नता में, मृत्यु में सदा तेरी शीतल गोद में दौड़कर छिप जाने को प्राणी लालायित है ! कभी कन्या के रूप में, कभी नारी के रूप में, और कभी माता के रूप में तू सदा रही और रहेगी! जो कुछ जगत् में है वह तुझ से है; तेरे बिना कुछ नहीं हो सकता।

माँ, आज तेरी वह महिमा लोग क्यों भूल गये हैं ! तू तो अनादि काल से ज्यों की त्यों अपने कर्त्तव्य में स्थिर है ! आँधी हो, तूफान हो; धूप हो, बादल हो; महल हो या सूनी झोपड़ी हो; सुख हो या दुःख हो; स्वास्थ्य हँस रहा हो या बीमारी रो रही हो तू तो अविचल है। तू तो माता ही है; तू तो और नहीं हो सकती ! पर हम तो और हो गये। क्यों ऐसे हो गये माँ ? एक दिन वह था जब मनुष्य मनुष्य का भाई था; मनुष्य ही क्यों पशुपक्षी इत्यादि जीवों से भी मनुष्य मिल गया था; तब ईर्ष्या-द्वेष, दम्भ, लोभ, छल-कपट कहाँ था ! तब तो हमारे घर में जीवन का बोझ बढ़ा देने वाली इतनी सामग्री न थी। ज़रा-सा शरीर था, और उसके अन्दर पृथ्वी में भी समा न सकने वाले प्रेम के अमृत से भरा विशाल हृदय था ! वह क्या तेरा पराक्रम न था !

उसके बाद—

अभिमान की आँधी में, तेरे स्नेह के आँचल की छाया से दूर भटक गये। दुनियादारी बढ़ गई, भाइयों के मन में भाइयों को कुचलने, विजय करने, अपने चरणों में झुकाने की अभिलाषा जाग उठी ! लड़ाइयाँ हुईं; भाई ने भाई का खून बहाया और गर्व की साँस ली। बड़े-बड़े राष्ट्र, बड़े-बड़े

देश बन गये, दलबन्दियाँ हुईं। ईर्ष्या-द्वेष, लोभ और होड़ का सोता वह चला। तेरे स्नेह की वह मन्दाकिनी हमारे हृदय के मरु-प्रदेश में खो गई! तब से वही अहङ्कार और अभिमान का अविराम खेल पृथ्वी पर चल रहा है! आज यह हारता है, कल वह जीतता है। आज यह गिरा, कल वह उठा!

माँ! ओ जगज्जननी! आज तेरे बच्चों की क्या दशा है? सब है, पर तेरी वह आदर्श मूर्ति कहाँ है? उसके बिना तो जैसे यह सब कुछ नहीं। संसार के समस्त जल से हमारी प्यास, हमारी आग न बुझेगी; हमें तेरे दूध की ज़रूरत है। बिना उसके न हम सच्चे हिन्दू होंगे, न सच्चे भारतीय होंगे, न सच्चे मनुष्य होंगे।

माँ, तुझे प्रणाम है। तू अपने बच्चों की सुधि ले!

: २ :

यह अविराम क्षय !

जब हमें ज़रा-सी बीमारी हो जाती है तब हम छटपटाने लगते हैं; डाक्टरों और वैद्यों के पास दौड़ते फिरते हैं और जब हमारा एक रुपया खो जाता है तो हमारा मन उदास हो जाता है, आगे से हम सावधान रहने का निश्चय करते हैं पर यह एक आश्चर्य की बात है कि बच्चों की मृत्यु के रूप में जो महामारी दिन-दिन बढ़ती जा रही है, उसके निराकरण के लिए हम चुप हैं! हमारी जो बहुमूल्य सम्पत्ति आये दिन मिट्टी में मिलती जा रही है उसके लिए हमें परवा नहीं है। जो मनुष्य ज़रा-सी हानि और ज़रा-से दुःख में पागल हो जाता है वह यह व्यापक क्षय देखकर भी अचल है। क्या यह कम अचरज की बात है?

हमारी भूलों के कारण दिन-दिन बच्चों की मृत्यु-संख्या बढ़ती जाती है। १६२१ की सरकारी मर्दुम-शुमारी के अनुसार सारे हिन्दुस्तान में प्रति एक हज़ार पैदा हुए बच्चों में १६८ मर जाते हैं। कुछ लोगों के हिसाब से प्रति

हज़ार २०५-६ बच्चे मरते हैं। यह तो औसत है। पर बम्बई, बंगाल और संयुक्तप्रान्त में मृत्यु-संख्या बहुत ज्यादा है। बम्बई में प्रति हज़ार ६३७ बच्चे जन्म लेने के बाद, पहले वर्ष के अन्दर ही, मर जाते हैं। संयुक्तप्रान्त में भी प्रति हज़ार पौने तीन सौ के क़रीब बच्चे मर जाते हैं। इस भयङ्कर क्षय का कहीं ठिकाना है! माताएँ कहती हैं कि 'मरना-जीना तो ईश्वर के अधीन है; उसपर हमारा क्या वस है? नहीं तो कौन माता अपने बच्चे की मृत्यु चाहेगी?'

मैं यह नहीं कहता कि कोई *माता* अपने बच्चे की मृत्यु चाहेगी; मेरा कहना तो यह है कि ऐ माताओ! जिन बच्चों को ९-१० महीनों तक अपने पेट में रखकर, अपने शरीर के रक्त-मांस से बढ़ाकर और कठिन पीड़ा सहकर जन्म देती हो, उन्हें किस तरह रखना चाहिए कि वे बड़े होकर अपने अच्छे कर्मों से तुम्हारे मातृत्व को गौरवान्वित करें, यह तुम भूल गई हो। आजकल माता-पिता सिर्फ़ बच्चा पैदा कर देना ही अपना काम समझते हैं। बच्चों का पालन-पोषण किस तरह किया जाय कि वे स्वस्थ, सुगठित एवं तेजस्वी शरीर वाले युवक-युवतियों के रूप में संसार में आवें, उन्हें किस तरह की शिक्षा-दीक्षा दी जाय कि उनमें सच्चे मानवी भावों का विकास हो, इन बातों की ओर हमारा ध्यान नहीं है। ग़रीबों के घरों में बच्चे गन्दी एवं बदबूदार गद्दियों पर जुएँ के बीच पड़े रहते हैं; शरीर में मैल भरी रहती है; टट्टी-पेशाब में हाथ-पाँव सने रहते हैं; उनको उपयुक्त दूध इत्यादि नहीं मिलता, इससे वे गन्दे, अनुपयुक्त और मुरदे-से हो रहे हैं। अमीरों के घरों में अन्ध लाड़-प्यार में ही बच्चे का भविष्य बिगड़ जाता है, उसका शरीर दुर्बल और कमज़ोर कर दिया जाता है। हम बच्चों को छाती से चिपटा लेने में जितना आनन्द पाते हैं, उतना यह सोचने में नहीं पाते कि क्या करने से वे मनुष्यता का, समाज का, देश का सिर ऊँचा करनेवाले होंगे। इस प्रकार कुरीतियाँ, अज्ञान, अनियमित और असंयत प्रेम, दरिद्रता और बच्चों का पालन किस तरह करना चाहिए यह न जानने के कारण देश में हज़ारों बच्चे रोज़ मर रहे हैं। और जो बच जाते हैं वे भी दुबले, कमज़ोर और

अयोग्य निकलते हैं तथा जवानी तक पहुँचते-पहुँचते बूढ़े हो जाते हैं।

मैं मानता हूँ, मरना-जीना आदमी के बस की बात नहीं है। पर इसका मतलब सिर्फ़ यह है कि कोई आदमी सदा जीवित नहीं रह सकता; एक न एक दिन मरेगा; उसकी मृत्यु न हो ऐसा नहीं हो सकता। पर इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि हम अपनी लापरवाही, अपने अज्ञान और अपने अन्ध-विश्वास से मृत्यु को नज़दीक बुला सकते हैं और अपनी सावधानी, संयम, ज्ञान और व्यवस्था से उसे दूर हटा सकते हैं। अकाल-मृत्यु शब्द का मतलब ही उचित समय से पहले मर जाना है। प्राचीन समय में लोग अपने संयम और व्यवस्थित जीवन के कारण बलिष्ठ, तेजस्वी और दीर्घजीवी होते थे। आज भी यदि हम बुद्धि से काम लें तो हमारी सन्तानें वैसी हो सकती हैं।

पर यह तभी हो सकता है जब माताएँ अपना कर्तव्य समझें; जब वे यह समझ लें कि उनकी गोद में उनके जो बच्चे पल रहे हैं आगे जाकर उनपर न केवल उनका सुख-दुःख बल्कि सारे संसार का सुख-दुःख निर्भर है। माताओ ! तुम सच्ची माता बनोगी तो तुम्हारे पुत्र तुम्हारे गौरव को बढ़ानेवाले होंगे। याद रक्खो, दुनिया का भविष्य पुरुषों के हाथ नहीं, तुम्हारे हाथ है। पुरुष तो तुम्हारी गोद में जन्म लेता है, तुम्हारी ही गोद में पलता है। आज के पुरुष चाहे नष्ट हो गये हों, चाहे तुम पर अन्याय करते हों पर कल के पुरुषों को तो तुम बिल्कुल ही अपनी इच्छा के अनुसार रच सकती हो क्योंकि बच्चे माता के पास ही रहते हैं; माता की गोद में ही उनका चरित्र बनता है। उनका बनना बिगड़ना तुम पर निर्भर है, पिता पर नहीं।

अपने बच्चों को किस तरह तुम स्वस्थ, दीर्घजीवी, योग्य, चरित्रवान् और बुद्धिमान् बना सकती हो यह सब सच पूछो तो तुम्हारी अपनी समझ और योग्यता पर निर्भर है। क्योंकि उन्नति का कोई एक रास्ता नहीं है; फिर सब का स्वभाव, परिस्थिति, वातावरण, सुविधा अलग-अलग होती है। इस पर भी आगे, थोड़े में, जो बातें लिखी हैं उनपर ध्यान देने से तुम्हारा रास्ता बहुत सरल हो जायगा।

: ३ :

स्त्रीत्व से मातृत्व तक

सबसे पहली बात तो यह है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को 'माता' एवं 'पिता' के पद का गौरव और उसकी जिम्मेदारी समझनी चाहिए। अनियन्त्रित भोग-विलास में डूबने वाले लोग न केवल अपने शरीर और सामाजिक अपराध मन की तीनों शक्तियों को नष्ट करते हैं बल्कि सदा के लिए अपने कुल और अपनी भावी सन्तानों को कमजोर और अयोग्य बना जाते हैं। इस दृष्टि से विवाहित जीवन को भोग-विलासमय जीवन बना लेना न केवल एक नैतिक पाप है वरं सामाजिक अपराध भी है। इसे प्रत्येक बहिन-भाई अच्छी तरह समझ लें।

दूसरी बात यह है कि माता के शरीर के खून से ही बच्चे का शरीर बनता है। एक बच्चा होने में उसके शरीर का कई सेर खून नष्ट हो जाता है और पैदा होने के बाद भी उसे माँ के लिए दूध की जरूरत पड़ती है वह माता के अच्छे एवं स्वस्थ, शरीर में ही यथेष्ट मात्रा में मिल सकता है। इसलिए जबतक स्त्री का शरीर स्वस्थ, बलिष्ठ, नीरोग तथा बच्चे की जिम्मेदारियों को सम्हालने योग्य न हो उसे माता बनने की चेष्टा न करनी चाहिए। साधारणतः १६-१७ वर्ष की अवस्था में नीरोग एवं स्वस्थ लड़कियों का शरीर गर्भ धारण करने और मातृत्व की जिम्मेदारियों को सम्हालने योग्य होता है; पर इसके बाद भी दो तीन वर्ष बचाये जायँ और पति पत्नी ब्रह्मचर्य-पूर्वक रह सकें तो उनको भी लाभ होगा और भावी सन्तान को भी।

उपयुक्त आयु

भारत में स्वस्थ लड़कियों को प्रायः १२ से १५ वर्ष की अवस्था के अन्दर

नियमित रजःस्राव होने लगता है। प्रति अट्ठाईस दिन के बाद लगातार तीन या चार दिन तक नियमित मात्रा में यह रजःस्राव होता है।

मासिक धर्म

इसे ही मासिक धर्म भी कहते हैं। यह प्रायः चालीस-पैंतालिस वर्ष की अवस्था तक होता है। अधिक स्वस्थ स्त्रियों को ५० वर्ष तक भी होता देखा गया है। स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिए इसका ठीक समय पर होना बहुत जरूरी है। यदि किसी लड़की को ऐसा न हो तो शीघ्र ही योग्य लेडी डाक्टर से इसकी दवा करानी चाहिए। जिन स्त्रियों का स्वास्थ्य ख़राब रहता है, या जिन्हें कब्ज की या कोई भीतरी बीमारी होती है, मासिक धर्म के समय उनके पेट में बड़ी पीड़ा होती है; कमर-दर्द शुरू हो जाता है और सिर भारी रहने से चक्कर भी आने लगते हैं। यह अच्छी बात नहीं है। मासिक धर्म में कमर-दर्द और पेट में पीड़ा नहीं होनी चाहिए। हाँ, शरीर में थोड़ी सुस्ती और कमज़ोरी का अनुभव जरूर होता है। जिन स्त्रियों को नियमित समय पर और उचित मात्रा में रजःस्राव नहीं होता उनकी कमर और पेड़ू में बहुत दर्द हुआ करता है; सिर दर्द बढ़ता जाता है और दाँत एवं आँखें कमज़ोर हो जाती हैं। प्रायः स्त्रियाँ इन बातों को बहुत छिपाती हैं, जिसका परिणाम अन्त में बड़ा खराब होता है। चक्कर आने लगते हैं और हिस्टीरिया के दौरे भी आने शुरू हो जाते हैं। इसलिए ऐसी शिकायत होने पर इलाज का ठीक इन्तज़ाम करना चाहिए।

खान-पान एवं व्यवहार

रजोदर्शन के समय से लेकर चार दिनों तक शरीर को बहुत सम्हालकर रखना चाहिए। शरीर में कमज़ोरी आ जाने के कारण ठण्ड लग जाने का ऐसे समय बड़ा भय रहता है। इसलिए जाड़े के दिनों में तो स्नान से भी बचना

---

*बाज़-बाज़ स्त्रियों को ३५ दिन में भी होता है और बराबर पाँच दिन तक रहता है। बहुतों को ऋतुधर्म के बाहरी लक्षण प्रकट ही नहीं होते, फिर भी बच्चे होते हैं।

चाहिए या खूब धूप निकल जाने पर ही गर्म पानी से स्नान करना चाहिए। आरम्भ के तीन दिनों तक यदि स्नान न करके गर्म पानी से हाथ-मुँह धो लिये जाँय तो भी ठीक होगा। साधारणतः हिन्दुओं के यहाँ इन चार दिनों में स्त्रियाँ किसी को छूती नहीं, न उनके हाथ का बनाया भोजन करने का नियम है। पति को छूने का तो बिल्कुल निषेध-सा है। आजकल इसके विरुद्ध भी आवाज़ उठाई जा रही है। समय बदल गया है, बहुत-सी स्त्रियाँ आज बड़े-बड़े स्कूलों में अध्यापिका का काम करती हैं या और काम कर रही हैं। उनके लिए छूत बचाना कठिन है। पर यह व्यवस्था स्त्रियों के लिए नैतिक और शारीरिक दोनों दृष्टियों से लाभदायक है। एक तो यह कि इस अवस्था में शरीर बहुत कमज़ोर हो जाता है इसलिए स्त्रियों को पूर्ण विश्राम करना चाहिए और परिश्रम के कामों से बचना चाहिए। यदि छूने का क्रम जारी रक्खा जाय तो बहुत से काम सदा की तरह ही उनको करने पड़ेंगे, इससे यथासम्भव छूत मानने में कोई हर्ज नहीं है पर आजकल व्यवहार में इसका अनर्थ भी होता है। छूत तो मानते हैं पर बहुत-से ऐसे घरेलू काम मान लिये गये हैं जो छूत से अलग हैं और इस अवस्था में भी स्त्रियों के सिर आ जाते हैं। जैसे सूखे बर्तन माँजना, ऊनी चीज़ें बुनना, दाल-चावल साफ़ करना, घर की सफ़ाई इत्यादि। सच पूछो तो इन कामों से भी इस हालत में स्त्रियों को बचना चाहिए।

यह छूत लाभकारी है

इन दिनों मन भी बड़ा उत्तेजित रहता है, कुवासनाओं के प्रबल हो जाने का भय बना रहता है। विविध मनुष्यों के स्पर्श से यह उत्तेजना बढ़ सकती है। पति के प्रति इस तरह की भावना उत्पन्न होने की आशङ्का अधिक रहती है इसलिए पति को छूने (और कहीं कहीं तो देखने तक) का बिल्कुल निषेध है। संयम की दृष्टि से यह उचित ही है।

नैतिक दृष्टि से

भोजनादि बनाने का निषेध इसलिए है कि आग के पास बैठने से बीमार पड़ जाने का भय रहता है। आँखें कमज़ोर हो जाती हैं। दूसरे शरीर के विकारग्रस्त रहने से ऐसे भोजन का प्रभाव भी भोजन करने वालों के मन पर

अच्छा नहीं पड़ सकता।

इसलिए आजकल हमारे यहाँ इस हालत में छूतछात की जो साधारण परिपाटी प्रचलित है वह स्वास्थ्य की दृष्टि से बुरी नहीं है। पर हाँ, ऐसा भी न होना चाहिए कि यदि भूल से कोई बच्चा या और कोई छू जाय तो उसे जाड़े के दिनों में भी नहाने के लिए बाध्य किया जाय। यह छूत का तात्पर्य नहीं, उसकी *अति* है।

इन तीन दिनों तक स्त्री को एकान्त में ही अधिक समय व्यतीत करना चाहिए और अच्छी बातें सोचने, अच्छी पुस्तकें पढ़ने में मन लगाना चाहिए। चित्त को स्थिर और शान्त रखना चाहिए और कमरे में जितने भी शृङ्गारमय चित्र इत्यादि हों उन्हें अलग दूर रख देना चाहिए; कम्बल पर सोना और कम्बल ओढ़ना अच्छा है पर बहुत-सी स्त्रियों को जाड़े के दिनों में सरदी से काँपते देखा गया है। उनके पास पहनने-ओढ़ने को बहुत कम रहता है; वे एक कोने में सिकुड़ी पड़ी रहती हैं। यह बड़ी ख़राब बात है। ऐसी अवस्था में शरीर की पूरी-पूरी हिफ़ाज़त न होने से अनेक रोगों के पैदा हो जाने का भय बना रहता है।

रहन-सहन

भोजन की ओर भी स्त्रियाँ प्रायः कुछ ध्यान नहीं देतीं। पर इसका मन और शरीर दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ऋतु-धर्म के समय स्त्रियों को बासी, खट्टा, चरपरा और तेल से बना भोजन हरगिज़ न करना चाहिए और ताज़ा, हलका एवं सात्विक भोजन करना चाहिए। खट्टी चीज़ें नुक़सान और मामूली मीठी चीज़ें फ़ायदा करती हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ विश्राम करने का मतलब चुपचाप चारपाई पर पड़े रहना समझती हैं पर यह उनकी भारी भूल है। दिन को सोना हर हालत में नुक़सान करता है। ज्यादा कमज़ोरी मालूम होने पर तकिये या दीवार के सहारे पाँव फैलाकर आराम करना चाहिए। इस अवस्था में स्त्रियों को सिर्फ़ अच्छी बातें ही करनी चाहिएँ, इधर-उधर बकवाद करते फिरना ठीक नहीं है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध इत्यादि दुर्भावों को मन में न आने देना चाहिए।

भोजन और विश्राम

चौथे दिन स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहनकर स्त्री को पहले थोड़ी देर भगवान का ध्यान करना चाहिए और उससे अपने को सन्मार्ग पर चलाने और अपने कुटुम्बियों के कल्याण की कामना करनी चाहिए। फिर पति, देवर, भाई, पुत्र, प्रिय सम्बन्धी इनमें से जिसमें अधिक गुण हों और जो उपस्थित हो, उसका दर्शन करना चाहिए। पति हों तो उन्हें जाकर प्रणाम करना चाहिए।

एक जरूरी बात

गर्भाधान

हिन्दू-धर्मशास्त्र में विवाह और सन्तानोत्पत्ति को धर्म-साधन का एक प्रधान अंग माना गया है। इसीलिए इसमें संयमपूर्ण जीवन बिताने और आवश्यकतानुसार उपयुक्त सन्तान उत्पन्न कर समाज को भेंट करने में शर्म की कोई बात न थी। पर आज-कल हम लोगों ने विवाह और विवाहित जीवन को इतना भोग-विलासमय और अप्राकृतिक बना लिया है कि हमारे अन्दर, अपने मन में, जमी हुई कालिमा के कारण, स्वभावतः इन विषयों की चर्चा करते शर्म आती है। वेद में, उपनिषद में, स्मृतियों तथा वैद्यकग्रन्थों में विस्तार के साथ इन बातों का, वैज्ञानिक ढङ्ग से वर्णन किया गया है। और हमारे यहाँ सोलह संस्कारों में विवाह और गर्भाधान दो मुख्य संस्कार माने गये हैं। बड़े-बड़े आचार्यों का कहना है कि गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुष की मनोवृत्ति, स्वास्थ्य, परिस्थिति इत्यादि के अनुकूल ही सन्तान उत्पन्न होती है। इसलिए सदैव विषय-भोग में लिप्त न रहकर शुभ घड़ी और मुहूर्त्त में, जब मन प्रसन्न और स्थिर हो तथा ऊँचे सात्विक भावों से पूर्ण हो स्वस्थ और अधिक दिनों तक ब्रह्मचर्यपूर्वक संयमपूर्ण जीवन बिताने के बाद, गर्भाधान करने की हमारी प्राचीन प्रथा हँसने योग्य नहीं है, न उसमें शर्म की कोई बात है; बल्कि आज-कल की शर्मीली, असंयत भोग-विलासमय विवाहित जीवन-प्रणाली से कहीं ऊँची और अच्छे परिणाम से भरी हुई है।

यह शर्म की बात नहीं है

इस प्रकार के गर्भाधान से संयमी, सुन्दर नीरोग और बलिष्ठ सन्तान होती है और माता-पिता का सुयश उससे बढ़ता है।

कई बाहरी लक्षणों से बच्चे के पेट में आने का पता चतुर एवं बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ चला लेती हैं। गर्भ-धारण के बाद मासिक रजःस्राव प्रायः बन्द हो जाता है। पहले महीने में कभी-कभी कुछ मिचलाहट-सी आती है और सुबह उठते समय बड़ा आलस्य मालूम पड़ता है। एक-डेढ़ महीने बाद दाइयाँ एवं घर की बूढ़ी स्त्रियाँ स्वयं ही सब बातों का पता लगा लेती हैं।

यों तो सदा अच्छी बातों पर विचार, सात्विक आहार और शान्त स्वभाव स्त्रियों के चरित्र के आभूषण हैं पर जब उनको यह पता चल जाय कि पेट में बच्चा है, तब उन्हें अपने स्वास्थ्य और मन को अधिक अच्छा बनाने की सदा कोशिश करनी चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि इस समय माता का जैसा रहन-सहन होगा, वैसी ही सन्तान होगी।

पहले पाँच महीने

गर्भ-स्थिति के बाद के पाँच महीनों में बच्चे के शरीर के भिन्न-भिन्न अंग बनते हैं। पहले यह गर्भ एक छोटे दाग़ या छींटे के समान होता है। परन्तु धीरे-धीरे बढ़कर दूसरे महीने में एक इञ्च, चौथे महीने में पाँच से छः इञ्च और तौल में १६-२० तोले या एक पाव के क़रीब हो जाता है। पहले चार महीने में उसकी आँखें, नाक, कान, मुँह, हाथ-पैर, तथा

शारीरिक विकास

लड़की-लड़के के भेद-सूचक अंगविशेष बन जाते हैं। इसके बाद हड्डियाँ गठित होतीं और सिर का ढाँचा पूरा होता है। जिस रूप में बच्चा उत्पन्न होता है, वह रूप तो प्रायः सात महीनों में पूरा होता है किन्तु साधारणतः बच्चे के सारे शरीर का ढाँचा पाँच महीनों के अन्दर बन जाता है।

अब यह बात ध्यान रखने की है कि माता के शरीर के खून से ही बच्चे का शरीर बनता और बढ़ता है और जो कुछ वह खाती है उसका उसके खून और शरीर पर बड़ा असर पड़ता है। इसलिए हृष्ट-पुष्ट सन्तान उत्पन्न करने के लिए यह ज़रूरी है कि गर्भ-धारण के बाद स्त्री विषय-भोग से दूर रहे, संयम से काम ले और खाते-पीते, उठते-बैठते सोते-जागते हर समय

गर्भिणी का स्वास्थ्य

अपने शरीर का, अपने स्वास्थ्य का, अपने मन का, ध्यान रक्खे। गर्भवती स्त्री को यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि उसके स्वास्थ्य पर ही उसके पेट में स्थित एक जीव की ज़िन्दगी निर्भर है। इसलिए उसे सदा नीरोग और प्रसन्न रहना चाहिए। उठने-बैठने में सावधानी रखना चाहिए। जोर से चलना, कूदना या उछलना, ज्यादा गरिष्ट और देर से हजम होनेवाले पदार्थों को खाना एवं एकदम आलसी बनकर बैठ रहना—इन बातों से बचना चाहिए! बहुत-सी स्त्रियाँ यह समझकर कि हमें दो जीवों के लिए भोजन करना है, ऊट-पटांग, बिना मात्रा का विचार किये बहुत अधिक भोजन करती जाती हैं और प्रायः सोंधी चीजें, चाट इत्यादि खाया करती हैं। बहुत-सी तो सोंधी मिट्टी, खपरैल, कुल्हड़ वगैरा भी तोड़कर खा जाती हैं। पर इन बातों का क्षणिक परिणाम चाहे जो हो अन्त में स्त्री और बच्चे दोनों के स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पड़ता है। भूख के मुताबिक हलका, सादा और जल्द हजम हो जानेवाला भोजन हमेशा फ़ायदा करता है। आरम्भ में मिचलाहट आती है। ऐसे समय दूध, साबूदाना, मूँग की दाल की खिचड़ी इत्यादि जल्द हजम हो जानेवाली चीज़ें और आम, अनार, नारंगी, अंगूर इत्यादि फल खूब खाने चाहिएँ। घी दूध का उपयोग भी अधिक हो पर इस बात का सदा ध्यान रहे कि कब्ज न होने पावे। इसके लिए रोज़ भोजन के बाद एक चम्मच खाने का साफ़ सोडा (सोडा बाइकार्ब) पानी के साथ या दूध के साथ मिलाकर लिया जा सकता है। इससे पेट साफ़ रहेगा, जलन नहीं होगी और खूब भूख भी लगेगी। गर्भवती स्त्री को कड़ा जुलाब कभी न लेना चाहिए अन्यथा बच्चे के विकास में बाधा पड़ेगी और उसके बनते हुए शरीर पर इसका बड़ा खराब असर पड़ेगा। कभी-कभी कच्ची-पक्की सौंफ खाँड के साथ फाँक लेने से भी पेट साफ हो जाता है और भूख भी बढ़ती है। पान में, या यों अलग भी, थोड़ी केसर रोज़ खाने से बच्चे के शरीर का रंग साफ़ और अच्छा निकलता है।

दूसरी बात यह कि गर्भिणी स्त्री को प्रसन्न और शान्त मन के साथ रात को शय्या पर जाना चाहिए और जहाँ तक हो नौ बजे रात से पाँच या छः बजे सुबह तक अर्थात् ८-९ घंटे अवश्य सोना चाहिए। दिन को भूलकर भी

न सोना चाहिए; हाँ, गर्मी के दिनों में भोजन के बाद कुछ देर लेट सकती है।

इस प्रकार गर्भ-स्थिति के बाद के पाँच महीनों में स्त्री जितनी ही नीरोग, प्रसन्न, संयमी और स्वस्थ होगी तथा जितनी ही खून बढ़ानेवाली सात्विक चीजें खायगी बच्चे का शरीर उतना ही सुगठित और बलिष्ठ होगा। अपने स्वभाव को स्त्री जितना मधुर और शान्त रक्खेगी उतनी ही उत्तम सन्तान पैदा होगी।

शेष साढ़े चार महीने

अन्तिम साढ़े चार महीनों में बालक का सिर और दिमाग़ बनता है; हड्डियाँ सुगठित होती हैं और उसके संस्कार एवं प्रवृत्तियाँ बनती हैं इसलिए यद्यपि गर्भ-धारण के समय से ही गर्भिणी को अपने स्वभाव में शान्ति, मधुरता, संयम, प्रेम एवं अन्य सात्विक वृत्तियों को बढ़ाना चाहिए पर अन्तिम साढ़े चार महीनों में तो उसे अपना चित्त बहुत ही संयत और शान्त रखना चाहिए; आलस्य की जगह उत्साह और हर्ष से उसका चेहरा खिला रहे और वह सदा अच्छी भावनाओं, अच्छी बातों को मन में स्थान दे; अच्छी एवं चरित्र बनाने वाली पुस्तकें पढ़े। किसी से लड़ाई-झगड़ा न करे; किसी पर चिढ़कर, क्रोध करके जली-कटी बातें न करे; और अपने सोने के कमरे में सुन्दर, बलिष्ठ और सात्विक आदर्श के महात्माओं के चित्र टाँगकर रक्खे जिससे उनपर उसकी निगाह पड़ती रहे। इससे सन्तान पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

माता के मनोबल का प्रभाव

बहुत से लोग समझते हैं कि सन्तान देना और उसे अच्छी-बुरी बनाना ईश्वर के अधीन है। योंतो दुनिया में सब कुछ ईश्वर की ही मर्जी पर है और उसी की इच्छा सबके अन्दर काम कररही है पर ईश्वर ने मनुष्य को विवेक और बुद्धि दी है जिसके सहारे वह अनेक आश्यचर्यजनक काम कर सकता है। ईश्वर की दी हुई इसी बुद्धि की सहायता से मनुष्य चाहे जैसी सन्तान उत्पन्न कर सकता है। सन्तान का भला-बुरा होना, यदि सम्पूर्णतः नहीं तो, बहुत कुछ माता के ऊपर निर्भर है। यह कोई नई बात नहीं बता रहा हूँ। शुकदेव, अभिमन्यु, युधिष्ठिर, बुद्ध, नैपोलियन, सिकन्दर इत्यादि दुनिया के

अनेक महापुरुषों पर गर्भ की अवस्था में ही माताओं के रहन-सहन का प्रभाव पड़ा था।

कहने का तात्पर्य यह है कि माता-पिता और विशेषतः माता या गर्भवती के मनोबल का पेट में स्थित बच्चे पर बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ता है। और यह प्रभाव अन्तिम साढ़े चार महीनों में बहुत बढ़ जाता है क्योंकि चार साढ़े चार महीनों के बाद बालक का हृदय बनने लगता है इसलिए अन्तिम साढ़े चार महीनों में गर्भिणी को बहुत सावधानी से रहना चाहिए।

मैं भावी माताओं और गर्भवती बहिनों से जोर देकर कहना चाहता हूँ कि दुनिया का भविष्य तुम्हारे हाथ है। तुम जिस तरह रहोगी, जैसा सोचोगी, विचारोगी, तुम्हारी सन्तान भी वैसी ही होगी। इसलिए पहले इस बात को गाँठ बाँध लो और फिर सच्चे हृदय से, दृढ़ता-पूर्वक विश्वास के साथ तुम इस बात का निर्णय शुरू में ही कर लो कि तुम कैसी सन्तान चाहती हो। दुनिया में बहुत-से गुण हैं। उनमें किस गुण का होना तुम अपने पुत्र या पुत्री में सबसे अच्छा या आवश्यक समझती हो? कोई माता शूर-वीर पुत्र चाहती है, कोई देशभक्त चाहती है, कोई ज्ञानी और बुद्धिमान चाहती है, कोई तेजस्वी और चरित्रवान चाहती है, कोई त्यागी, सन्तोषी और संयमी चाहती है। इसके अतिरिक्त साधारण स्त्रियाँ रूपवान पुत्र चाहती हैं पर यह कोई बड़ी अच्छी कामना नहीं है। इसी प्रकार कोई सती-साध्वी कन्या पसन्द करेगी, कोई रूपवती और सुगठित शरीर वाली को अच्छा समझेगी, कोई तेजस्वी और परिश्रमी कन्या के लिए लालायित होगी और कोई सीधी-सादी, विनयी और धीरजवान लड़की पसन्द करेगी। इनमें तुम जिसे चाहो, उसे चुन लो। इसका निश्चय कर लेना बहुत जरूरी है कि तुम कैसी कन्या और कैसा पुत्र चाहती हो। मेरी समझ से, अच्छा पुत्र वह है जो भगवान् में विश्वास रक्खे, पाप से डरनेवाला, त्यागी और सदाचारी हो। इसी प्रकार अच्छी कन्या वह है जो विनयी, मृदुभाषिणी, धीरजवान और साध्वी हो। इस प्रकार के पुत्र और पुत्री की कामना करके, या जिन गुणों को तुम ज्यादा अच्छा समझो उनका निश्चय

जैसी चाहो बना लो

करके अन्तिम साढ़े चार-पाँच महीनों में सदा यह प्रार्थना करो कि ऐसी सन्तान हो। इसके साथ तुम्हारा आचरण भी वैसा ही होना चाहिए जैसा तुम अपनी सन्तान के अन्दर देखना चाहती हो। अर्थात् यदि तुम सच्चरित्र, शान्त स्वभाव का,त्यागी और सन्तोषी पुत्र चाहती हो तो तुमको सदा अपना स्वभाव शान्त रखना चाहिए, तुम्हारे मन में कोई बुरी भावना नहीं आनी चाहिए, दूसरों के प्रति तुम्हारा व्यवहार मधुर, ईर्ष्या-द्वेष एवं लोभ से रहित होना चाहिए और विषय-भोग से दूर रहना चाहिए, इसी प्रकार सोचो कि यदि पुत्र की जगह कन्या हुई तो वह सती साध्वी और विनयी हो और स्वयं भी वैसा ही रहन-सहन तथा विचार रक्खो। एक क्षण भी व्यर्थ की बातों में न गँवाओ।

त्यागी और सच्चरित्र—यदि तुम त्यागी, धार्मिक, सच्चरित्र एवं शान्त सन्तान चाहती हो तो राम, बुद्ध, ईसा, गांधी, सावित्री, सीता, दमयन्ती इत्यादि की जीवनियाँ पढ़ो; उनके जीवन की उन बातों को बार-बार याद करो जिन्हें तुम अपनी सन्तान में देखना चाहती हो। यदि मिल सकें तो उनके चित्र कमरे में सदा आँख के सामने रक्खो। यदि पुस्तकें न मिल सकें तो उनकी कथाएँ सच्चरित्र स्त्री-पुरुषों से सुनो। तुम स्वयं अपना जीवन वैसा ही बनाने की कोशिश करो।

शूर-वीर—यदि शूर-वीर और हृष्ट-पुष्ट सन्तान चाहती हो तो लक्ष्मण, कर्ण, अर्जुन, सिकन्दर, नेपोलियन, शिवाजी, राणा प्रताप, चाँद बीबी, लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी) की जीवनियाँ पढ़ो और उनके चित्र देखा करो। राजपूतों की वीरता-भरी कहानियाँ पढ़ा करो।

देशभक्त—देशभक्त सन्तान के लिए भिन्न-भिन्न देशों की स्वतन्त्रता की कथाएँ, मैजिनी, गेरीबाल्डी, मैकस्विनी, खुदीराम, कन्हाई लाल, तिलक, चितरंजन दास, लाजपतराय, मोतीलाल, इत्यादि की जीवनियाँ पढ़ो; उनके चरित्र एवं चित्र पर सदा ध्यान रक्खो।

ज्ञानी—ज्ञानी संतान के लिए प्राचीन ऋषि-मुनियों, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ इत्यादि के चित्र-चरित्र पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सन्तों के भजन और जीवनियाँ भी उपयोगी हैं।

इसी प्रकार जैसी सन्तान की इच्छा हो उसी तरह के आचार-विचार पठन-पाठन में लगा रहना चाहिए और रोगी, अन्धे-लूले-लँगड़े, चिड़चिड़े, लालची, विषयी स्त्री-पुरुषों के दर्शन से भी, यथासम्भव, बचना चाहिए। घर में कोई रोगी हो तो उसके बारे में बहुत ज्यादा न सोचना चाहिए अन्यथा बच्चा रोगी होगा। घर-गृहस्थी के कामों में यथासम्भव सहायता करते हुए भी किसी बात की अधिक चिन्ता न करनी चाहिए।

तुम देख सकती हो कि एक ही माता-पिता की भिन्न-भिन्न सन्तानें भिन्न-भिन्न और कभी-कभी एक दूसरे के विरोधी स्वभाव की होती हैं। इसका कारण यही है कि गर्भावस्था में माता-पिता के जैसे विचार और आचार होते हैं उसका उन पर प्रभाव पड़ता है। गर्भावस्था में यदि माता पिता का जीवन चिन्ता और दुःखों में बीतेगा तो सन्तान का स्वभाव भी बहुत करके, करुण, उदास, चिन्तित और दुःखमय होगा। इससे इस विषय में खूब सावधानी से काम लो और अपने शरीर और मन को सदा नीरोग, स्वस्थ, शान्त, प्रसन्न और सुविचारों से भरा पूरा रक्खो। यह मत भूलो कि तुम्हारी ज़रा सी गलती से तुम्हारी सन्तान का सारा जीवन नष्ट हो जायगा और फल-स्वरूप तुम्हें भी आगे बहुत कष्ट भोगने पड़ेंगे।

दुनिया के अनेक विद्वानों का कहना है कि पिता की अपेक्षा माता का सन्तान पर ज्यादा प्रभाव पड़ता है। बच्चा माता के पेट में, उसी के रक्त-मांस से बढ़ता है; और पैदा होने पर उसी का दूध पीता है। वही उसे सुलाती खिलाती-पिलाती है; उसी की गोद में वह बढ़ता है; उसी के लाड़ प्यार, क्रोध और प्रसन्नता से उसके संस्कार बनते हैं। बच्चे के जीवन का वही केन्द्र है; वही उसकी रक्षा है, वही उसकी छाया है; बिना उसके उसका जीना कठिन है। बिना पिता के बच्चा माता के साथ बिना किसी असुविधा का अनुभव किये हुए बढ़ सकता है पर यदि दुर्भाग्यवश माता की मृत्यु हो जाय तो बच्चा, बहुत करके, मर ही जायगा और बच गया तो भी, रोगी, अनाथ, दुःखी, और उदास होगा। इन सब बातों से सहज ही सन्तान पर माता के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। इसलिए माता होने वाली बहिनें

सदा इन बातों को याद रक्खें तो उनका भला होगा।

गर्भ का विकास

मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि बिल्कुल आरम्भ में गर्भ एक जरा से दाग़ के समान, बीच में कुछ उभरा, होता है। दूसरे महीने एक पैसे के बराबर, चौथे महीने पाँच-छः इञ्च लम्बा और एक पाव वज़न का और नवें महीने, सब अङ्गों के ठीक-ठीक बन जाने पर, लगभग बीस इञ्च लम्बा और तौल में साढ़े तीन सेर रहता है।

पेट में बच्चे का पोषण और विकास माता के खून से ही होता है। गर्भस्थिति के प्रायः दो महीनों बाद नाल बनता है। यह नाल बच्चे की नाभि से लगा रहता है और इसका सम्बन्ध माता के खून एवं रस की नाड़ियों से रहता है। इसलिए गर्भिणी जो खाती-पीती है उसी के द्वारा बने रस और खून से बच्चे का विकास होता है। इससे सिद्ध होता कि गर्भिणी का स्वास्थ्य जितना ही अच्छा रहेगा; उसके शरीर में जितना ही खून बनेगा, बच्चे का विकास उतना ही अच्छा होगा।

किन्तु इसके साथ ही यह आश्चर्य की बात है कि बहुत सी हृष्ट-पुष्ट और बलवान स्त्रियों को दुर्बल सन्तान उत्पन्न होती देखी जाती है और बहुत सी कमज़ोर स्त्रियों को खूब हृष्ट-पुष्ट और बलवान सन्तान उत्पन्न होती है। कहीं-कहीं यह भी देखने में आता है कि माता-पिता दोनों सबल और स्वस्थ हैं; गर्भावस्था में स्त्री ने भोजन भी पुष्टिकर किया, फिर भी निर्बल सन्तान उत्पन्न हुई। असल बात यह है कि बच्चे का सबल होना मुख्य रूप से गर्भिणी के संयम, गर्भ-स्थिति के समय की मनोवृत्ति, संस्कार और भोजनादि पर निर्भर है।

गर्भस्थिति से बच्चा पैदा होने तक प्रायः २८० दिन या नौ महीने दस दिन लगते हैं। कभी इससे ज्यादा दिन भी लग जाते हैं। सुश्रुत के मत से ग्यारहवें महीने भी बच्चा पैदा हो सकता है।

प्रसव

प्रसव-काल अर्थात् बच्चा पैदा होने का समय गर्भिणी के लिए बड़ा

कठिन होता है। कितनी ही स्त्रियाँ पानी से निकाल ली हुई मछली के समान बेहाल होकर तड़पती हैं। उस पीड़ा का ठीक-ठीक वर्णन शब्दों में हो नहीं सकता। प्राचीन कवियों ने भी इसका वर्णन किया है। तुलसीदासजी कहते हैं—'बाँझ कि जान प्रसव की पीरा।' बाँझ स्त्री प्रसव की पीड़ा क्या जान सकती है? किन्तु जहाँ बहुत-सी स्त्रियों को प्रसव-काल में असह्य वेदना होती है वहाँ गाँवों की छोटी जातियों की स्वस्थ स्त्रियों को बच्चा पैदा होने के घंटे-आध घंटे पहले तक खेतों में काम करते देखा गया है। उनके लिए प्रसव में इतनी कठिनाई नहीं होती, न दाइयों की ज़रूरत पड़ती है, न वे इतना हाय-तोबा मचाती हैं। इससे यह प्रकट होता है कि यद्यपि प्रसव की पीड़ा कठिन होती है फिर भी इसकी कमी-ज्यादती गर्भिणी के स्वास्थ्य और स्वभाव पर निर्भर है। कमज़ोर या कोमल स्त्रियों को निश्चय ही गहरी वेदना सहनी पड़ती है, आलसी और आरामतलब स्त्रियों का भी बुरा हाल होता है पर जो स्त्रियाँ आलसी नहीं हैं और सदा काम-काज में लगी रहती हैं, धीरज से काम लेती हैं उन्हें उतना कष्ट नहीं होता। इसलिए जो बहिनें स्वस्थ और उत्तम सन्तान के साथ ही यह चाहती हैं कि प्रसव-काल में उन्हें अधिक पीड़ा न हो तो उन्हें सदा आलस्य से दूर रहना और परिश्रमपूर्वक घर-गृहस्थी के काम-काज करना चाहिए। जो स्त्रियाँ रोज मील आधा मील टहलती हैं, उन्हें बहुत कम कष्ट होता है, गर्भिणी को उछलना-कूदना, पेट दबनेवाले काम, दौड़ने, भारी बोझ उठाने इत्यादि से और अन्तिम दो-तीन महीनों में, यदि सम्भव हो, आग से दूर रहना चाहिए। अन्य कार्यों को खूब मन लगाकर धीरे-धीरे पर उत्साह के साथ करना चाहिए।

प्रसव-पीड़ा

बच्चा पैदा होने का समय ज्यों-ज्यों नज़दीक आता है, गर्भिणी का शरीर और मुँह सूखता और कुम्हलाता जाता है। मुँह और आँखों में शिथिलता मालूम पड़ती है; अन्न से अरुचि हो जाती है। एक प्रकार का जल गिरता है। बच्चा पैदा होने के ८-१० दिन पहले से ही पेट हलका मालूम पड़ता है, पेशाब जल्दी

आसन्न-प्रसूता के लक्षण

जल्दी उतरता है, टट्टी साफ़ नहीं होती और उसमें तकलीफ़ भी होती है। इन लक्षणों से अनुमान किया जा सकता है कि बच्चा पैदा होने का समय आ गया है। ये लक्षण उन स्त्रियों में विशेषकर होते हैं जो पहली बार गर्भवती होती हैं।

प्रसव के समय से १२-१४ घण्टे पहले प्रायः पेट के पिछले हिस्से में दर्द बढ़ने लगता है। इसका कारण यह है कि बालक धीरे-धीरे खिसकता है।

झूलें

झिल्ली की जिस पतली थैली में बच्चा रहता है वह फैलती और आगे आती जाती है। इस समय ज्यादा पीड़ा होती है क्योंकि बच्चा पैदा होने के कुछ पहले पतली झिल्ली फट जाती है और बच्चे के साथ पेट की खेड़ी भी खिंचती आती है। इस समय स्त्रियाँ बड़ी असावधानी करती हैं, व्याकुल होकर बार-बार उठती-बैठती हैं, चलती फिरती हैं। कई उकड़ूँ बैठकर काँखती और ज़ोर लगाती हैं। बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ पेट मसलती हैं। लोग समझते हैं कि इससे बच्चा जल्दी होगा। यद्यपि इससे बच्चे के जनने के समय में घण्टे-आध घण्टे की कमी हो सकती है पर इन कामों से कभी-कभी बहुत ज्यादा नुकसान हो जाने की भी सम्भावना बनी रहती है। इन बातों से बच्चा कभी-कभी टेढ़ा हो जाता है और उसके अङ्ग बेडौल हो जाते हैं। इसलिए अंग्रेज़ों के यहाँ प्रायः गर्भिणी को पलङ्ग पर लिटाकर ही बच्चा जनवाते हैं। वैद्यक ग्रन्थों का भी यही आदेश है। इससे बच्चा सुडौल रहता है।

प्रकृति का साधारण नियम यह है कि बच्चा सिर के बल पैदा होता है। पर कभी-कभी कूदने-फाँदने, चोट लग जाने या गर्भिणी के रोगी होने की अवस्था में बालक उलटा या टेढ़ा भी हो जाता है। उस

भयङ्कर अवस्था

अवस्था में पहले क्रमशः पाँव और हाथ नीचे दिखते हैं। चतुर दाइयों का कर्त्तव्य है कि ऐसी अवस्था में बड़े धीरज, सावधानी और शान्ति से काम लें और बच्चे के सिर को धीरे-धीरे नीचे लावें। कभी-कभी सिर और हाथ, सिर और पाँव या चारों हाथ-पाँव साथ निकलते हैं। यह बड़ी भयङ्कर अवस्था है, इसमें बच्चे और माता दोनों की

मृत्यु तक हो सकती है इसलिए कई वार आपरेशन करके तब बच्चे को पेट से निकालते हैं।

जब बच्चा गर्भ से बाहर आता है, उस समय दाई या घर की चतुर स्त्रियों को बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। जब बच्चे का सिर निकले तो उसके साथ ही यह देख लेना चाहिए कि सिर के साथ कुछ और तो नहीं लिपटा है। कभी-कभी सिर के साथ नाल भी लिपटा हुआ बाहर निकलने लगता है। यदि ऐसा हो तो बच्चे के सिर से नाल निकाल देना चाहिए। सिर को दाहिने हाथ से सम्हालना और बायें हाथ से पेट को धीरे धीरे दबाना चाहिए। इससे बच्चा सरलता से पेट के बाहर आ जायगा। यदि इस समय देर लगे तो समझना चाहिए कि बच्चे का सिर ज्यादा बड़ा है या कोई विकार है। *बहुत-सी दाइयाँ बच्चे को खींचकर निकालती हैं पर यह बुरी बात है, इससे हाथ-पाँव खराब और टेढ़े हो जाने का भय रहता है।

सौरी-घर

गर्भिणी स्त्री के लिए बच्चा जनने का जो कमरा होता है उसे सौरी-घर या प्रसूति-गृह कहते हैं। हमारे देश में, अज्ञानवश, इसके लिए प्रायः सबसे खराब और गन्दी एवं प्रकाश-हीन कोठरी चुनी जाती है और उसमें हवा आने के सारे रास्ते, सूराख़ इत्यादि तक, बन्द कर दिये जाते हैं। बच्चों की बढ़ती हुई मृत्यु-संख्या का एक बड़ा कारण यह मूर्खता भी है। यदि बुद्धि से काम लिया जाय और स्वास्थ्यकर नियमों पर ध्यान दिया जाय तो बहुत-सी कठिनाइयों और अनेक प्रकार की दुर्दशा से हमारी रक्षा हो सकती है।

सबसे पहली बात, जिस पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है, यह है कि सौरी-घर खूब साफ़-सुथरा, प्रकाशमय और हवादार होना चाहिए। तङ्ग और अँधेरी कोठरी में गर्भिणी को रखने से अनेक रोग हो जाते हैं। यह ज़रूरी नहीं है कि बड़ा भारी और शानदार कमरा हो, भले ही वह कच्चा, मिट्टी का, हो

स्थान

---

*'सन्ततिशास्त्र' (श्री अयोध्याप्रसाद) काशी, १९२३।

पर कुशादा हो, उसमें प्रकाश आने की गुंजाइश हो, आस-पास बदबूदार नालियाँ या पाखाना इत्यादि न हो। *ऐसे कमरे को अपनी हैसियत और सुविधा के अनुसार गोबर, मिट्टी या चूने से लीप-पोत एवं धोकर साफ रखना चाहिए और खूब सूख जाने पर घण्टे आधा घण्टे अँगीठी जलाकर कमरे को बन्द रखना चाहिए। इससे फ़ायदा यह होगा कि धुएँ के कारण विषैले कीड़े और मच्छर आदि मर जायँगे। इसके बाद दशांग, लोबान या अगरबत्ती इत्यादि सुगंधित चीजें जलाकर उसे शुद्ध कर लेना चाहिए।

इसके बाद गर्भिणी को स्वच्छ धुले हुए वस्त्र पहनाकर उसके अन्दर ले जाना चाहिए। आजकल स्त्रियाँ बहुत साधारण, पुराने और कभी-कभी मैले वस्त्र पहनकर अन्दर जाती हैं क्योंकि बहुत जगह ऐसा कायदा है कि प्रसूता या जच्चा के काम में आने वाले वस्त्र फिर आगे के काम में नहीं आते और चमारिन या दाई ले जाती है। थोड़े से कपड़ों के लोभ से ऐसा करना बड़ी खराब बात है क्योंकि पुराने और गन्दे कपड़ों में कीड़े होते हैं जो शरीर की कमजोरी के कारण बहुत जल्द गर्भिणी के स्वास्थ्य को नष्ट करनेवाले स्थायी रोग उत्पन्न कर जाते हैं। बच्चा पैदा होने के पहले या सौरीघर में भेजते समय गर्भिणी को बहुत ही हल्के और ढीले वस्त्र पहनाना चाहिए। साड़ी बहुत छोटी और पतली हो, जिससे पेट कस न जाय। पिन से बाँध देना सबसे अच्छा उपाय है। पेट के ऊपर एक पतली पट्टी बाँधने से पेट में बच्चे का बोझ कम मालूम पड़ता है।

गर्भिणी के लिए भीतर जो पलङ्ग या चारपाई हो वह खूब मजबूत, कसी और खटमल इत्यादि जन्तुओं से रहित होनी चाहिए। पलङ्ग बहुत ऊँचा न

---

*वैद्यक के प्रसिद्ध प्राचीन आचार्य वाग्भट्ट तक ने लिखा है—

प्राक्चैव नवमान्मासात् सूतिकागृह माश्रयेत।
देशे प्रशस्ते सम्भारे सम्पन्न साधकेऽहति॥

इसका मतलब यह है कि नवें महीने में लम्बे-चौड़े हवादार स्थान में बने एवं सब आवश्यक सामग्री से युक्त घर को सूतिकागृह बनाना चाहिए।

हो। लकड़ी की बड़ी चौकी इस काम के लिए अधिक उपयुक्त है। उसपर एक गद्दा, फिर ऊपर एक या दो कम्बल, फिर दरी, उसपर एक किरमिच या मोमजामा

ओढ़ना-बिछौना

बिछाना चाहिए और सबके ऊपर धुली हुई साफ सफेद चादर होनी चाहिए ओढ़ने के लिए भी धूप में सुखाये हुए ऋतु के अनुकूल काफ़ी कपड़े होने चाहिएँ। गर्भिणी के उपयोग—बिछौने-ओढ़ने या अन्य कामों—के लिए जो कपड़े हों उन्हें पहले से ही खौलते हुए गर्म पानी में देर तक रखकर, निचोड़कर, सुखा रखना चाहिए। पानी में थोड़ा पारा डाल देने से कपड़ों के अन्दर के सब जहरीले कीड़े मर जाते हैं।

बच्चा होने के पहले से सब सामान तैयार रखना चाहिए। प्रायः किसी चीज़ की ज़रूरत पड़ने पर स्त्रियाँ घबराई-सी इधर-उधर दौड़ती फिरती हैं; उस समय जो चीज़ें घर में होती हैं वे भी नहीं मिलतीं।

आवश्यक सामग्री

इसलिए अच्छा यह है कि प्रसूतिगृह में गर्भिणी को भेजने के पहले से ही निम्नलिखित सामान वहाँ लाकर क़ायदे से सजाकर एक तरफ़ रख दिया जाय :

१—खूब अच्छा लम्बा-चौड़ा कसा पलंग या लकड़ी की चौकी।

२—एक साफ गद्दा, दो-तीन कम्बल (बिछाने के लिए), एक दरी, मोमजामा या किरमिच के दो बड़े टुकड़े, चार साफ धुली सफेद चादरें (बिछाने के लिए), ओढ़ने के लिए ऋतु के अनुकूल कपड़े, पतली बारीक मलमल-जैसी खादी या स्वदेशी वस्त्र के आध-आध गज़ के चार टुकड़े। थोड़ा साफ पुराना वस्त्र। डेढ़ गज़ लम्बी दो-तीन गिरह चौड़ी कपड़े की साफ़ धुली पट्टी। दो तौलिये।*

३—अंगीठी, कड़ाई, दो-तीन पानी गरम करने के बर्तन।

४—गर्म पानी, सरसों का तेल, अच्छा साबुन (कार्बोलिक हास्पिटल सोप), तेज चाकू, तेज बड़ी कैंची, नये रेशमी सूत की लच्छी, मोमबत्ती, दिया-

---

* सब कपड़े खौलते गर्म पानी में उबालकर सुखाये हुए होने चाहिएँ।

सलाई, बोरिक पाउडर, बेसन, शहद, सोंठ, अजवाइन, चम्मच, उपले की छनी हुई राख, अण्डी का तेल, फिनायल, स्पंज।

हमारे यहाँ हवा को लोग, अज्ञानवश, भयानक समझने लगे हैं। वे यह भूल गये हैं कि हवा का दूसरा नाम हमारे यहाँ प्राण है। स्वच्छ और ताज़ी हवा से बढ़कर स्वास्थ्यकर वस्तु दुनिया में दूसरी नहीं है।

हवा से न डरो

इसलिए ताज़ी हवा कभी नुकसान नहीं करती। हाँ जब तेज़ हवा चलती हो तो उसके झोंकों से गर्भिणी या बीमार को बचाना चाहिए। गर्भिणी के सामने वाले दर्वाजे या खिड़कियाँ बन्द रखनी चाहिएँ जिससे हवा सीधे उसके ऊपर न आवे; बग़ल की खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिएँ। यह याद रक्खो गर्भिणी के लिए भी और बच्चा पैदा होने के बाद बच्चे के लिए भी शुद्ध वायु बड़ी ज़रूरी है।

साफ़-सुथरे कपड़ों का इस्तेमाल दूसरी बात है जिसकी तरफ़ ध्यान देना चाहिए। आश्चर्य की बात तो यह है कि बच्चा पैदा होने की खुशी में जहाँ बहुत-सा रुपया दान-दक्षिणा और उत्सव में ख़र्च कर दिया जाता है वहाँ प्रसूता (जच्चा) को दस दिन फटे-पुराने गूदड़ों में ही काटने पड़ते हैं। इससे बड़ी हानि होने की सम्भावना है। इसलिए चाहे और ख़र्चों में कमी कर दी जाय पर इन बातों में कमी न करनी चाहिए।

तीसरी बात यह है कि सौरी घर या प्रसूति-गृह में आग जलाने और धुँआ करने की बड़ी बुरी रीति प्रचलित है। एक ओर आग जलाई जाती है, दूसरी ओर हवा आने के सारे रास्ते बन्द कर दिये जाते हैं। यह

धुआँ मत करो

याद रखने की बात है कि आग में एक तरह की विषैली गैस रहती है जो बहुत जल्द हवा को ख़राब कर देती है। इसलिए आग उसी हालत में जलानी चाहिए जब खूब सरदी पड़ रही हो या पानी बरसने से नमी बढ़ गई हो या शीत लग जाने का डर हो। गर्मी के दिनों में या दिन को जब हवा में सर्दी न हो सौरी-घर में आग हर्गिज न जलानी चाहिए और ठण्ड के दिनों में भी सिगड़ी या अँगीठी में कोयले इत्यादि बाहर ही जलाकर धुआँ बन्द हो जाने पर ही, कमरे के अन्दर ले जाना चाहिए।

चाहे खूब सर्दी ही पड़ रही हो, कमरे के अन्दर धुआँ हर्गिज़ न होने देना चाहिए। इससे साँस लेने में तकलीफ़ होती है और फेफड़ों पर बहुत ज़ोर पड़ता है तथा हवा विषैली हो जाती है। गर्भिणी को गर्मी पहुँचाने की सबसे अच्छी तरकीब तो यह है कि गर्म पानी की बोतलें भरकर पलंग पर, उसके पास दोनों तरफ़ रख दी जायँ।

प्रसव के बाद

दाई कैसी हो?

बच्चा जनाने के लिए आजकल जो दाइयाँ, चमारिनें या नाइनें आती हैं वे अत्यन्त मूर्ख होती हैं। उनको बच्चे और माता की सुविधा और सेवा का उतना ध्यान नहीं रहता जितना भरपूर टके वसूल करने का रहता है। इसलिए जहाँ मिल सकें होशयार और पासशुदा दाई को बुलाना चाहिए। दाई मधुरभाषिणी और साफ़ सुथरा रहने वाली हो। जिनको ये सुविधाएँ प्राप्त न हो सकें वे भी इन बातों पर जरूर ध्यान दें :

१—अच्छी से अच्छी और सबसे होशयार दाई को बुलाना चाहिए।

२—सौरी-घर में प्रवेश करने के पूर्व गरम या ताजा पानी से अच्छी तरह उसके हाथ-पैर, मुँह धुलवा देना चाहिए और उसे साफ़ कपड़े पहनाना चाहिए। दोनों *हाथों के नाखून अवश्य कटवा देने चाहिएँ*।

हत्या मत करो

३—बच्चा होने के बाद उसकी नाभि में लगा हुआ नाल भी बाहर आ जाता है। यह वही नाल है जिसके द्वारा माता के शरीर से खून एवं अन्य आवश्यक सामग्री, गर्भावस्था में बच्चे के शरीर में पहुँचती रहती है। बच्चा होने के कुछ देर बाद इस नाल को काटा जाता है। इस नाल को काटने में हमारे यहाँ बड़ी मूर्खता और असावधानी से काम लिया जाता है। सच पूछिए तो बच्चों के शरीर के भविष्य का इतिहास बहुत-कुछ प्रसव के समय की सावधानी और नाल के ठीक-ठीक काटने पर निर्भर है। गाँवों में या साधारण लोगों के यहाँ जो चमारिनें नाल काटने आती हैं, वे अपने साथ एक हँसिया या भोथरी छुरी लाती हैं। इस हँसिये या छुरी से न जाने कितने बच्चों के नाल कटे होते हैं,

इसमें अनेक रोगों के ज़हरीले कीड़े भरे रहते हैं। इसे वे सब धोती भी नहीं। इसलिए ऐसे औज़ार से नाल काटने में बच्चों को अनेक रोग जन्म से ही हो जाते हैं। इस समय बच्चा बड़ा कोमल होता है और दुनिया की बाहरी कठिनाइयों को सहने की शक्ति उसके अन्दर बिल्कुल नहीं होती, इससे स्वभावतः बाहरी कीटाणुओं का असर उसके शरीर पर बहुत जल्द होता है। ऐसे गन्दे औज़ार से नाल काटने पर एक खास तरह का रोग (जिसे 'टिटनेस', धनुस्तम्भ, या 'जमोगा' कहते हैं) हो जाता है। इस रोग में बच्चा रोता, छटपटाता, शरीर ऐंठता और प्रायः दुनिया से चल बसता है। बहुत जगह ऐसा भी रिवाज है कि प्रत्येक कुटुम्ब में इसके लिए अलग एक छुरी रहती है। बाप-दादों के समय से चली आती हुई, जंग लगी, इस भोथरी छुरी से कुटुम्ब के सब बच्चों के नाल काटे जाते हैं। यह रिवाज भी बड़ा ख़तरनाक है। क्योंकि बहुत दिनों के रक्खे और नित्य उपयोग में न आने वाले धातु में छोटे-छोटे ज़हरीले कीड़े पैदा हो जाते हैं जो बच्चे के खून में मिल जाते और तरह-तरह के कठिन रोग पैदा कर देते हैं। दूसरी बात यह है कि इस भोथरे औज़ार से काटने पर नाल खिंच जाती है, उससे ज्यादा खून निकलने के कारण बच्चा या तो मर जाता है या बहुत कमज़ोर हो जाता है। यदि भगवान की दया से इन दोनों बातों से रक्षा हो गई तो भी नाल पक कर घाव हो जाता है और बच्चे को बड़ा कष्ट देता है। मैंने सुना है कि कहीं-कहीं इससे भी बुरे ढंग से नाल काटने का काम किया जाता है। कहीं पतली लकड़ी से भी नाल काटते हैं। इससे बच्चे को बड़ा-कष्ट होता है। नाल काटने में हमेशा जल्दी करनी चाहिए क्योंकि जब तक नाल नहीं कटता बच्चे को साँस लेने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। नाल कटते ही बच्चा साँस लेने लगता है।

नाल काटने की विधि

नाल काटने की सबसे अच्छी, सुविधाजनक और स्वास्थ्यकर रीति यह है कि बच्चा पैदा होने के पहले ही एक नई और खूब तेज़ बड़ी कैंची खौलते हुए पानी में डाल रखनी चाहिए और बच्चा पैदा होने पर उसको नाल काटने के काम में लाना चाहिए। *इसकी तरकीब यह है कि नाभि से चार अंगुल*

छोड़कर नाल पर एक रेशमी या साधारण साफ़ तागे से मज़बूत गाँठ बाँधे और फिर पहली गाँठ से दो इंच या लगभग चार अंगुल पर वैसी ही दूसरी गाँठ बाँधे। फिर दोनों गाँठों के बीच से नाल को उसी तेज़ कैंची से झटपट काट दे। इस तरकीब से खून बहुत थोड़ा गिरता है और बच्चे को कष्ट भी नहीं होता।

इस तरह काटने के बाद नाल का जो हिस्सा बच्चे की नाभि से लगा रहता है, उसके भी पक जाने का डर बना रहता है। इसलिए इसमें भी एक धागे से गाँठ बाँधकर उस धागे को बच्चे के गले में माला की तरह पहना देना चाहिए। नाल के कटे हुए ऊपरी हिस्से में थोड़ा-सा बोरिक पाउडर भरकर उस पर एक साफ़ मलमल-जैसी खादी का टुकड़ा रखकर उसे एक हलकी पट्टी से बाँध देना चाहिए। बोरिक पाउडर के ऊपर कपड़े का जो टुकड़ा रक्खा जाय वह खौलते पानी में दो मिनट तक भिगोकर रक्खा जाय जिससे उसके ज़हरीले कीड़े नष्ट हो जायँ। नाल को सदा धूल या और तरह की मैल से बचाना चाहिए, नहीं तो उसके पक जाने का बड़ा डर रहता है।

बहुत-से लोग कटे हुए नाल में गरम राख या कई चीज़ें लगाते हैं। "बच्चे की नाल में एक कण कस्तूरी और ज़रा सी राय सेंदुर भरकर सेंक देने से सदा के लिए बालक पित्त-प्रधान प्रकृति का हो जाता है और कफ़ या बादी उसे जीवन में कम सताते हैं।"*

बच्चा पैदा हो जाने के कुछ देर बाद माता को कठिन पीड़ा होती है। कभी-कभी ज़्यादा दर्द के कारण वह बिल्कुल बेहोश हो जाती है। इस समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। दाई को बालक की ओर ध्यान देना चाहिए, साथ ही उसे चाहिए कि माँ के पेट को हाथों से दबा रक्खे। इससे भीतर की थैली (जरायु) फैलती नहीं। अनजान दाइयाँ कभी-कभी माँ को उठाकर खड़ा कर देती हैं कि खून गिर जाय, ऐसा करना ठीक नहीं है।

ध्यान देने की बातें

---

*'सफल माता', पृष्ठ ६६-६७, चाँद कार्यालय, प्रयाग।

बच्चा पैदा होने के साथ या थोड़ी देर बाद खेड़ी, आमर या आँवल गिरती है, इसमें खून मल इत्यादि लगे रहते हैं। जब तक यह न गिरे पेट दबाये रहना चाहिए, इससे यह जल्द निकल आती है। इस आमर का थोड़ी भी मात्रा पेट में रह जाना बड़ा हानिकारक होता है। जिनके पेट में इसका एक भी टुकड़ा रह जाता है वे प्रसव के अनेक रोगों में फँस जाती हैं। बच्चा पैदा होने के बाद गर्भाशय धीरे धीरे सिकुड़ कर अपनी पहले जैसी अवस्था में आ जाता है परन्तु खेड़ी रह जाने से भलीभाँति सिकुड़ने नहीं पाता, खून बहुत निकल जाता है। भीतर जो टुकड़ा रह जाता है, वह सड़ जाता है। प्रसूतिज्वर इत्यादि भयङ्कर रोग, जिनसे बचना कठिन है, इसी से उत्पन्न होते हैं।

विश्राम की ज़रूरत

जो भी खेड़ी, आमर इत्यादि निकले उसे तुरन्त दूर मैदान में गड़वा देना चाहिए; थोड़ी देर भी पड़े रहने से उसमें कीड़े पैदा हो जाते हैं और हवा विषैली हो जाती है जिससे अनेक बीमारियाँ फैलती हैं। आमर—मल और रक्त—इत्यादि निकल जाने के बाद प्रसूता को साफ़ करके डेढ़ गज़ लम्बी और आध गज़ चौड़ी मुलायम कपड़े की एक पट्टी से साफ़ उसका पेट कसकर बाँध देना चाहिए। खून इत्यादि निकलने का डर रहता है इसलिए साफ़ एवं मुलायम कपड़ों की एक गद्दी और उस पर एक लँगोटी बाँध देनी चाहिए। इससे पेट और गर्भाशय दोनों ठीक रहते हैं। इसके बाद धीरे-धीरे उसकी साड़ी निकाल कर हलकी छोटी साड़ी लपेट देना चाहिए, पर ज्यादा हिलाना डुलाना या खड़ा करना ठीक नहीं है। प्रसूता को अधिक से अधिक देर तक चुपचाप आराम करने देना चाहिए, बहुत सी स्त्रियाँ बार बार आकर उसे टोकती और जगाती हैं, यह ठीक नहीं है। पर हाँ, सोते समय उसकी नाड़ी और चेहरे पर ध्यान रखना चाहिए। यदि चेहरा या नाखून ज्यादा पीले पड़ जायँ तो समझना चाहिए कि खून अधिक गिर गया है। कभी-कभी खून गर्भाशय में ही जम जाता है जिससे हाथ-पाँव के नाखून पीले पड़ जाते हैं। यह भय की बात है। ऐसी अवस्था में योग्य डाक्टर से तुरन्त सलाह लेनी चाहिए।

इसके बाद कम-से-कम दस दिन तक तो माता को चुपचाप चारपाई पर ही चित लेटे रहना चाहिए। टट्टी-पेशाब के लिए भी चारपाई पर पड़े-पड़े ही इन्तज़ाम हो जाय तो बहुत ठीक। क्योंकि इन दिनों माता के शरीर में जो कमी हो जाती है वह पूरी होती है; ज़रा धक्का या चोट लगने से बड़ी हानि हो सकती है। हम लोगों के यहां छः दिन बाद—छठी को—उठाकर स्नान इत्यादि कराते हैं। पर यह अच्छी बात नहीं है। पहले छः दिनों में तो ठसे, यथासम्भव, चारपाई पर भी उठकर न बैठना चाहिए।

दस दिन की हिफ़ाजत

माता के शरीर के भीतरी अवयवों को पहले की अवस्था में लौटने में कम-से-कम दो महीने लगते हैं। इसलिए दो महीनों तक माता को बहुत कम उठना-बैठना चाहिए और ज्यादा समय लेटे रहना और विश्राम करना चाहिए।

जिस दिन बच्चा हो उस दिन माता को पेशाब आना अच्छा है; टट्टी न आवे तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं है।

माता को बच्चा होने के दिन तो कुछ खाने को नहीं देना चाहिए क्योंकि इन्द्रियां एक दम निर्बल पड़ जाती हैं और भोजन पचाने की शक्ति पेट में नहीं रहती। इसके बाद चार दिनों तक गाय का उबाला हुआ थोड़ा कुनकुना दूध देना चाहिए; अन्न कुछ भी न दिया जाय तो बहुत अच्छा। इसके बाद पांच दिन तक दूध-साबूदाना दें और फिर क्रमशः दाल का पानी, दलिया, मूँग की पतली खिचड़ी इत्यादि देना चाहिए। जिस स्त्री का स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो उसे दूसरे दिन गरम घी और पुराने गुड़ को घोलकर तथा उसमें सोंठ, पीपल का चूर्ण या अजवायन का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए। पीने के लिए अजवायन का हुआ पानी देना चाहिए। अजवायन बड़ी अच्छी चीज़ है। यह बुखार को रोकती, पाचन-शक्ति बढ़ाती और अधिक पेशाब लाकर पेट एवं गर्भाशय के सब विकारों को दूर करती है। पीने के लिए साधारण पानी हर्गिज़ न दिया जाय। प्यास लगे तो दूध देना चाहिए।

खाने को क्या दे ?

इस बात का हमेशा ख्याल रक्खा जाय कि देर से हज़म होने वाला भोजन माता को कभी न देना चाहिए। कम-से-कम दो महीने तक उसे बिल्कुल हलका भोजन करना चाहिए, जो जल्द हजम हो जाय और पेट साफ़ रहे। बहुत-सी स्त्रियाँ माता की शारीरिक कमजोरी दूर करने के लिए उसे बादाम का हलवा इत्यादि खिलाती हैं। यह बुरी बात है। इससे उलटे हानि होती है। दो महीनों तक दूध, फल, चावलों का माँड़, पुराने चावलों का थोड़ा भात, मूँग की खिचड़ी, पतली रोटी खाना अच्छा है। दूध में सोंठ का चूर्ण या मुनक्के डालना चाहिए। भोजन में हल्दी का चूर्ण मिलाकर खाना भी अच्छा है। हल्दी से शरीर की हड्डी मज़बूत होती है और दर्द दूर होता है।

यदि गर्मी के दिन न हों तो जच्चा या प्रसूता को दशमूल का काढ़ा या दशमूलासव १५-२० दिनों तक दिया जा सकता है।

: ४ :

नवजात शिशु

अहा! कैसा कोमल बच्चा है! भोलेपन की मूर्ति ही है! सचमुच कलेजे का टुकड़ा है। दुनिया के इस ईर्षा-द्वेष के उपवन में मानों एक निर्दोष फूल एकाएक खिल गया हो या विधाता ने आँगन में मानों एक गुलाब का फूल फेंक दिया हो! अहा, जन्म के समय यह बच्चा कैसा निर्दोष और पवित्र दीख पड़ता है पर बड़ा होकर, दुनियादारी के झकोरों में क्या इसकी यही निर्दोषता क़ायम रहेगी? रहेगी या नहीं, सो तो भगवान जानें पर यदि माता-पिता आरम्भ से चाहें और कोशिश करें तो इसकी दिव्य विभूति बड़ा होने पर भी क़ायम रह सकती है।

बच्चे के लिए यह दुनिया बिल्कुल नई चीज़ है इसलिए पेट से बाहर

आते ही वह घबड़ा-सा जाता है और रोने लगता है। पैदा होने के बाद बच्चे का रोना ज़रूरी है; रोना उसके नीरोग और सजीव होने का चिह्न है; यदि न रोये तो समझना चाहिए कि उसमें कोई ख़राबी है जिसके कारण रोने में बाधा उपस्थित हो रही है। प्रायः उसका साँस लेना रुक जाता है। इसलिए ऐसे उपाय करना चाहिए जिससे वह ठीक-ठीक साँस लेने लगे। यदि बालक बाहर आते ही न रोये तो उसके मुँह में फूँक मारना चाहिए। फूँक मारने के पहले मुँह को खूब साफ़ कर लेना चाहिए। यह उपचार सफल न हो तो पैर फैलाकर बच्चे को उस पर चित लेटा देना और बच्चे की बाहों को थोड़ा ऊपर उठाकर मुँह में फूँक मारना चाहिए। फिर दोनों हाथों को उसकी छाती पर मोड़कर धीरे से दबाना चाहिए। एक दो मिनट तक ऐसा करने से बच्चा साँस लेने लगेगा।

बच्चे के मुँह, आंख, कान, नाक को साफ़ एवं मुलायम कपड़े से अच्छी तरह साफ़ कर देना चाहिए और मुँह में अँगुली डालकर अन्दर का झाग राल इत्यादि निकाल देना चाहिए।

नाल पर जरा-सी आंच दिखाने, ठण्डे पानी के छींटे देने और थाली बजाने से घबड़ाकर बालक रोने लगता है। पेट से बाहर आते ही बच्चा रोने लगता है पर यदि मुँह, नाक इत्यादि साफ़ करने के बाद भी बच्चा न रोये तो, स्वस्थ अवस्था में, तब तक उसका नाल न काटना चाहिए जब तक वह रोने न लगे।

रोने के बाद सब अंग साफ़ करके बच्चे को नहलाना चाहिए। हमारे देश में नहलाने का नाम भर होता है; जरा-सा पानी डालकर पोंछ-पोंछकर स्त्रियाँ छुट्टी पा जाती हैं पर इस तरह नहलाने से कोई लाभ नहीं।

शरीर की सफ़ाई

नवजात शिशु के सारे शरीर पर मैल चढ़ी रहती है और यह मैल ऐसी चिपकी होती है कि मुश्किल से निकलती है। यदि बच्चे के शरीर की यह मैल ठीक तरह से निकाली न जाय तो उसे आगे फुंसियाँ हो जाने का डर रहता है इसलिए बच्चे को इस तरह नहलाना

चाहिए कि उसके शरीर से सब मैल निकल जाय। कहीं-कहीं बेसन या कपड़-छन की हुई राख पोतकर स्नान कराते हैं और कहीं बच्चे के सारे शरीर में शहद पोतकर थोड़ी देर तक यों ही पड़ा रहने देते हैं। शहद के कारण मैल फूल जाती है; तब उसे नहलाते हैं, इससे मैल निकल जाती है।

बच्चे को नहलाने के लिए साधारण पानी काम में लाना ठीक नहीं है। तपाई हुई चाँदी या सोने को पानी में बुझाकर उसको नहलाना चाहिए। पीपल या वट वृक्ष की छाल को पानी में उबालकर तब उस पानी से भी नहलाते हैं। नहलाने के बाद साफ़ कपड़े से बच्चे का शरीर अच्छी तरह पोंछ देना चाहिए जिससे पानी बिल्कुल सूख जाय। फिर उसे मुलायम और साफ़ बिछावन पर सुलाकर कपड़ा ओढ़ा देना और सिर पर अच्छे शुद्ध तेल में भीगा हुआ एक फाहा भी रख देना चाहिए। नहलाते समय बच्चे की आँखों को त्रिफला या बोरिक पाउडर के पानी से धो देना चाहिए। बच्चे को आँखों के सामने लालटेन इत्यादि न ले जाना चाहिए, पीछे से ही उस पर धीमी रोशनी पड़े अन्यथा आरम्भ में उसकी आँखें ख़राब हो जाने का डर बना रहता है।

गर्भ में बच्चे के पेट के अन्दर बहुत दिनों से मल सञ्चित होता रहता है। इसलिए पैदा होने के बाद किसी तरह पेट से यह मल निकल जाना हितकर है। इसके लिए शहद में तीन-चार बूँद एरण्डी का साफ तेल या स्वच्छ किया केस्टर आयल मिलाकर चटा देना चाहिए। इससे एक दो दस्त आयेंगे और उसका पेट साफ़ हो जायगा।

पेट की सफाई

नवजात शिशु को, जन्मघुटी के नाम पर, बहुत-सी चीजें चटाई या पिलाई जाती हैं पर इस विषय में बड़ी सावधानी की जरूरत है।

इस विषय में एक अनुभवी लेखिका* का मत है कि निम्नलिखित नुस्ख़ों में से कोई एक चटाना चाहिए—

---

*देखिए 'सफल माता', (श्रीमती सुशीलादेवी); पृष्ठ ६६-१००

१—घी में थोड़ा-सा सेंधा नमक डाल कर दो।

२—बच, ब्राह्मी और इलायची का चूर्ण कपड़छन कर एक या दो चावल भर घी और शहद में चटाओ। इससे बहुत लाभ होता है।

३—शहद में सोना घिसकर दो;

४—चावल भर कपड़छन किये हुए आँवले के चूर्ण में आधा चावल स्वर्ण-भस्म, घी और शहद मिलाकर चटाओ।

इनमें से किसी एक को, विशेषतः दूसरे को, माता के स्तनों में दूध न आने तक (दूध आने में प्रायः तीन दिन लगते हैं) दिन में दो बार चटाने से बालक स्वस्थ, बलवान और बुद्धिमान होगा।

: ५ :

पालन-पोषण

बच्चों के पालन-पोषण में आजकल बड़ी असावधानी की जाती है। कहीं तो उसे इतना दूध पिला दिया जाता है कि बदहज़मी हो जाती है, हरे-पीले दस्त आने लगते हैं, बच्चा मुँह से दूध उगलने लगता है और कहीं इतना कम दूध पिलाया जाता है कि उसकी बाढ़ रुक जाती है। इसी प्रकार नहलाने-धुलाने, सुलाने और कपड़ा पहनाने में भी बहुतेरी ग़लतियाँ की जाती हैं, फलस्वरूप दिन पर दिन उसका स्वास्थ्य गिरता जाता है और वह रोगी और दुर्बल हो जाता है।

नवजात शिशु के लिए माँ के दूध से उत्तम और लाभकारी कोई आहार नहीं है। कोई अन्य वस्तु माँ के दूध का स्थान नहीं ले सकती। गाय का दूध भी माँ के दूध के सामने निकम्मा है। इसलिए जो माताएँ रोगी न हों, उन्हें भरसक अपना ही दूध पिलाना चाहिए। रोगी होने की अवस्था में गाय या बकरी का दूध पानी मिलाकर पिलाना अच्छा होगा। किसी दूसरी स्त्री का दूध, बिना उसे जाने-बूझे, पिलाना ठीक नहीं।

बच्चा माँ का दूध स्वाभाविक रीति से पीता है। उसे गरम करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। यही हाल सब दुधारू पशुओं के बच्चों का है। वस्तुतः दूध को गरम करने से उसके पोषक तत्वों में एक ओर तो कमी आ जाती है; दूसरी ओर वह भारी—गरिष्ठ—देर से हज़म होनेवाला हो जाता है। तुरन्त का दुहा दूध सबसे उत्तम है। पर इसमें कठिनाई यह है कि समय पर ताजा दूध नहीं मिल सकता, और देर तक रखे हुए दूध में कीटाणु उत्पन्न होने का भय रहता है। इसलिए दूध को औटाना तो कभी न चाहिए। मामूली गरम होते ही दूध को गरम पानी से अच्छी तरह साफ किये हुए थर्मास या वैकूम बाटल में रख देना चाहिए। इस तरह के बोतल कई साइज़ और वजन के शहरों में मिलते हैं।

दूध में हवा का लगना ख़तरनाक है। इसीसे उसमें विकार उत्पन्न होता है। जो दूध जितनी ही देर तक खुला रहेगा और जिसमें जितनी ही हवा लगेगी वह उतना ही भारी, दुष्पच और विकार पैदा करने वाला होगा। माँ का दूध बच्चे के लिए इसी कारण ज्यादा लाभदायक होता है कि स्तन से निकलनेवाले दूध में हवा नहीं लगती। बच्चा स्तन से मुँह लगाकर दूध चूसता रहता है। थोड़ा-थोड़ा दूध, मुँह के लार के साथ, पेट में जाता है जिससे पाचन-क्रिया ठीक रहती है।

मतलब यह है कि यदि बच्चे को बाहर का दूध देना अनिवार्य ही हो तो :—

१—मिल सके तो उसे हर बार ताजा दुहा हुआ दूध देना चाहिए।

२—न मिल सके तो मामूली गरम करके थर्मास में रखा हुआ दूध देना चाहिए।

३—यदि गाय का दूध बच्चे को न पचता हो तो गरम दूध में थोड़ा खौलता हुआ साफ़ पानी मिलाना चाहिए। और बच्चे को पिलाते समय खाने का सोडा चुटकी भर चम्मच में मिलाकर दे देना चाहिए।

जब बच्चा पैदा होता है तो उसके पेट में बहुत थोड़ी जगह रहती है; उस समय प्रायः तीन तोले से अधिक दूध उसके पेट में अँट ही नहीं सकता।

बच्चे को दूध पिलाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

जिन्हें प्रथम सन्तान होती है उन माताओं को बच्चा होने के प्रायः तीन दिन बाद दूध आता है। इन तीन दिनों तक पिछले अध्याय में बताये नुस्खों के सिवा कुछ देने की जरूरत नहीं। हाँ, माँ का स्तन बच्चे के मुँह में दिन में चार-पाँच बार देना चाहिए। दूध आने पर बच्चे को गोद में लेकर, एक हाथ से उसका सिर और दूसरे से स्तन पकड़कर दूध पिलाना चाहिए और एक बार आठ-दस मिनट से अधिक दूध नहीं पिलाना चाहिए। एक ही स्तन से दूध पिलाना ठीक नहीं; चार-चार मिनट में बदल देना चाहिए। लेटे-लेटे कभी दूध न पिलाना चाहिए और सदा दूध पिलाने से पहले स्तनों को साफ पानी से धो लेना चाहिए।

बच्चे को रात में, दस से पाँच बजे तक, यथासम्भव, दूध न पिलाना चाहिए। यदि रोये तो और तरह से बहला देना चाहिए; जब किसी तरह न माने तभी एकाध बार दूध पिलाना चाहिए। निम्नलिखित अवस्थाओं में माता को दूध नहीं पिलाना चाहिए—

१—आग के पास से उठने के बाद।

२—बच्चे को उबटन लगाने या सेंकने के बाद।

३—नहलाने के पहले या बाद।

(तीनों हालतों में आध घण्टे पहले या बाद पिला सकती हैं)

४—जब माँ को ज्यादा जुकाम हो अथवा पेट में पीड़ा, बदहजमी या बुखार हो।

५—पेट में कोई फोड़ा हो जाय।

यदि माँ ज्यादा बीमार हो जाय और अधिक दिनों तक उसके दूध पिलाने की सम्भावना न हो तो उचित परिमाण में पानी और शक्कर मिलाकर गाय या बकरी का दूध पिलाना चाहिए। पहले ४-५ महीनों तक गाय और बकरी के दूध में आधा पानी मिलाना चाहिए।

दूध सदा गरम करके पिलाना चाहिए। क्योंकि असावधानी से रखे हुए सिर्फ एक चम्मच दूध में पैंतीस करोड़ कीटाणु रहते हैं।

गाय के दूध में थोड़ा चूने का पानी मिलाने से यह शीघ्र पच जाता है। इसके बनाने की तरकीब यह है कि एक सेर पानी में एक तोला पत्थर का अनबुझा चूना घोलकर रख दिया जाय और जब वह सब चूना नीचे बैठ जाय तो ऊपर का पानी निकालकर बोतल में भर लिया जाय और उसमें से छः माशे से एक तोला तक पानी कभी-कभी दूध में मिला लिया जाय। यदि पानी तैयार करने में कठिनाई हो तो एक-दो रत्ती खाने का सोडा मिला सकते हैं।

जन्म के बाद, पहले महीने में, बच्चा बीस-बाईस घण्टे और फिर छः महीने तक सतरह-अठारह घण्टे और सात वर्ष के अन्त तक पन्द्रह-सोलह घण्टे सोता है। फिर ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जाती है, सोने के इस समय में कमी आती जाती है। स्वस्थ बच्चा खूब शान्ति से सोता है और रोगी बच्चे सोते कम और रोते बहुत हैं। बच्चे के स्वास्थ्य और समुचित विकास के लिए उसका इतने समय तक सोना जरूरी है। इसलिए दिन हो या रात दूध पिलाते ही बच्चे को सुला देना चाहिए। रात को बच्चे को अलग एक छोटे पलंग पर सुलाना चाहिए। क्योंकि एक ही पलंग पर सोने से माँ को बच्चे के दब जाने का खटका लगा रहता है और उसे ठीक-ठीक नींद आती। दिन में पलंग की अपेक्षा पालने में सुलाना ज्यादा अच्छा है। आरम्भिक दो महीनों तक बारह-तेरह घण्टा और उसके बाद चार-पाँच महीनों तक नौ-दस घण्टे माँ को जरूर सोना चाहिए। अन्यथा उसकी पाचन शक्ति नष्ट होगी; दूध गाढ़ा और दूषित हो जायगा; बच्चे का स्वास्थ्य भी खराब हो जायगा।

डेढ़ वर्ष के बाद माँ को दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिए। किन्तु इसके बाद भी तीन वर्ष तक उसे दूध ही अधिक देना चाहिए।

एक वर्ष के बाद बच्चे को पाचनशक्ति के अनुसार चावल का माँड या गेहूँ अथवा जव के दलिये का पतला माँड़ दिया जा सकता है। थोड़े से दलिये को काफ़ी पानी में एक घण्टे तक पकाना चाहिए। बाद में ऊपर का माँड़ छान कर या अन्य रीति से निकाल लेना चाहिए और बच्चे को देना चाहिए। दूध में मिलाकर भी इसे दे सकते हैं। यह पौष्टिक और गुणकारी

होता है।

बच्चा यदि बहुत कमज़ोर न हो तो प्रथम सप्ताह के बाद उसे दोपहर को कुनकुने पानी से धूप में (जहाँ हवा न चलती हो) नहलाना चाहिए।

हफ़्ते में दो-तीन दिन तो जरूर नहलाना चाहिए। बच्चे को पाँवों पर सुलाकर धीरे-धीरे नहलाना और चुमकारते जाना चाहिए; एकाएक ज्यादा पानी डालने से वह घबड़ा जाता है। दूध पिलाने के घण्टे-डेढ़ घण्टे बाद नहलाना चाहिए। नहलाने का मतलब सिर्फ पानी डाल देना नहीं है। अच्छी तरह बच्चे के शरीर को पोंछकर सारी मैल निकाल देनी चाहिए। स्नान कराने के पहले तेल की मालिश करना बहुत लाभदायक है। जो माताएँ रोज़ बच्चों को तेल-उबटन लगाती हैं; उनके बच्चे नीरोग रहते हैं। इससे चमड़ी मुलायम होती तथा फोड़े-फुंसियों से रक्षा होती और बदन सुडौल होता है। सिर में तेल की मालिश करने से दिमाग मजबूत होता है।

जब बच्चा पैदा होता है तो उसके शरीर पर बहुत-से छोटे-छोटे रोयें रहते हैं। इनको निकालने के लिए बहुत जगह स्त्रियाँ लोई फेरती हैं। लोई फेरने का मतलब यह है कि बालक के शरीर पर खूब तेल चुपड़ कर गुँधे हुए मुलायम आटे की एक लोई सब जगह फेरते हैं। इससे शरीर की मैल तो दूर हो ही जाती है; ये रोयें भी दूर हो जाते हैं और चमड़ी साफ हो जाती है।

चार-पाँच महीने तक बच्चे को कोई कपड़ा पहनाने की जरूरत नहीं। गहने तो कतई तौर पर न पहनाने चाहिएँ। हाँ, ठंड, मक्खियों-मच्छरों से बचाने के लिए कपड़ा ज़रूर ओढ़ा देना चाहिए।

बच्चे सोते में टट्टी-पेशाब कर देते हैं, इसलिए नीचे मोमजामा या किर-मिच का टुकड़ा बिछा देना अच्छा है। बहुत-सी माताएँ इधर ध्यान नहीं देतीं; उनके बच्चे घंटों पेशाब-पाखाने के अन्दर सने पड़े रहते हैं। इससे न केवल स्वास्थ्य बरं उनकी आदत भी बिगड़ती है; वे बचपन से ही गन्दा रहना सीख जाते हैं। बच्चों की आदत ऐसी डालनी चाहिए कि बचपन से उन्हें गन्दगी असह्य हो जाय और यह तभी हो सकता है जब माँ खुद ही

इसका ध्यान रक्खे और बच्चे तथा उसके बिछौने को साफ रखने के साथ ही खुद भी साफ रहे।

बच्चों को गोद में ज्यादा हर्गिज़ न रखना चाहिए और न उसके रोने पर उनकी बातें मान लेनी चाहिएँ। इन दोनों बातों से बालक सुस्त, रोने और हठी हो जाते हैं।

बच्चे की बाढ

स्वस्थ और नीरोग माँ का बच्चा, जो दसवें महीने होता है, पैदायश के समय कम से कम तीन सेर का होता है। साधारणतः स्वस्थ बच्चे का वज़न सात पौण्ड या साढ़े तीन सेर होना चाहिए। असाधारण स्वस्थ बच्चे पाँच सेर तक के देखे गये हैं। पैदा होने के बाद पाँच-छ दिन तक वज़न घट जाता है पर फिर एक सप्ताह के अन्दर पूरा हो जाता और बाद में बराबर बढ़ता जाता है। यदि माँ के दूध में कोई खराबी न हो और बच्चे को बराबर यथेष्ठ दूध पीने को मिले और वह बीमार न पड़े तो छः महीने तक वह दो-ढाई तोला रोज़ बढ़ता है। और फिर सातवें महीने से वर्ष के अन्त तक डेढ़-दो तोला रोज बढ़ता है। इस तरह साल के अन्त में बच्चा जन्म के समय से प्रायः तिगुना हो जाता है।

माँ को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा नाक से साँस ले, यदि वह मुँह से साँस ले तो सोते समय उसका मुँह थोड़ी देर बन्द करने से वह स्वतः नाक से साँस लेने लगेगा। आरम्भ में बच्चा प्रति मिनट चवालीस बार साँस लेता है जब कि मनुष्य केवल अट्ठाईस बार। धीरे-धीरे यह संख्या घटती जाती है और चौथा वर्ष लगते-लगते अट्ठाईस तक आ जाती है। इसी प्रकार शुरू में बच्चे की नाड़ी प्रति मिनट एक सौ तीस बार चलती है पर धीरे-धीरे घट कर चौथे वर्ष में अस्सी तक आ जाती है।

स्वस्थ बच्चों के प्रायः छः-सात महीने बाद दाँत निकलने लगते हैं। किसी किसी के देर से निकलते हैं। सब से पहले नीचे के दो दाँत निकलते हैं;

दाँत निकलना

फिर ऊपर के चार और फिर क्रमशः नीचे के जबड़े के दो दाँत एवं नीचे और ऊपर की दो दो दाढ़ें निकलती हैं। ढाई तीन वर्ष की अवस्था तक बीस दाँत निकल जाते हैं। इन्हें दूध के दाँत कहते हैं।

दाँत निकलने के समय बच्चों को बड़ा कष्ट होता है। वे चिड़चिड़े हो जाते हैं, काटते हैं, मुँह से लार टपकने लगती है, हरा खुरदुरा, फटा हुआ दस्त आने लगता है, मुँह लाल हो जाता है, वे रोते हैं, नींद नहीं आती, कभी-कभी कै भी होने लगती है; बच्चा बार-बार मुँह में अँगुली डालता है, आँखें आ जाती हैं, दर्द के कारण बुखार भी हो जाता है। ऐसे समय बच्चे को बड़ी सावधानी से रखना चाहिए। हाज़मा प्रायः खराब हो जाता है, इसलिए चूने का पानी या खाने का सोडा ज़रा सा मिलाकर दूध पिलाना चाहिए। यदि दस्त रुक जाय तो अरण्डी के तेल की चार छः बूँद डालकर चटानी चाहिए। मसूड़े निकलने के समय ज्यादा बेचैनी होती है। उस समय छः माशा पिसा हुआ सोहागा या सेंधा नमक साफ शहद में मिला कर दिन में तीन-चार बार मसूड़ों पर मलना चाहिए। इससे दर्द कम होता है और बच्चे को आराम मिलता है। दाँत के दिनों में बच्चों को 'आइप वाटर' या 'डिल वाटर' दिन में दो-तीन बार एक-एक बड़े चम्मच की मात्रा में देना चाहिए। इससे कष्ट कम हो जाता है। छः-सात वर्ष की उम्र में दूध के दाँत टूटने लगते हैं। प्रायः हर साल चार दाँत टटते और उनकी जगह नये निकलते हैं। बारह वर्ष तक अट्ठाईस दाँत हो जाते हैं और फिर सोलह-सत्रह वर्ष के बाद अन्त की चार डाढ़ें निकलती हैं। यों कुल बत्तीस दाँत हो जाते हैं।

स्वास्थ्य के लिए दाँतों की सफ़ाई पहली बात है। दूध पिलाकर या कुछ खिलाकर सदा बच्चों के दाँत और मुँह धो देना चाहिए। बदहज़मी, सिरदर्द, दाँतों से खून निकलना इत्यादि रोग दाँतों की गन्दगी से ही पैदा होते हैं।

: ६ :

बच्चे का भविष्य

बच्चे को इच्छानुकूल बनाना माता पर ही निर्भर है। इसलिए न केवल गर्भावस्था में बल्कि बच्चा होने के बाद भी माता को अपना जीवन सावधानी से बिताना चाहिए। क्रोध की अवस्था में या बिगड़कर कभी बच्चे को दूध नहीं पिलाना चाहिए; हमेशा प्रसन्नचित्त से, ममता के साथ दूध पिलाने से बच्चे का विकास शीघ्र होता है।

दूसरी बात यह कि प्रायः माताएँ बच्चों को रोने से चुप कराने के लिए डरावनी चीज़ों के नाम लिया करती हैं। कभी पिता का डर दिखाती हैं। यह बड़ी बुरी बात है। पहली अवस्था में बच्चे डरपोक हो जाते हैं, उनकी इच्छा-शक्ति घट जाती है और निर्भयता चली जाती है और दूसरी अवस्था में वे पिता को भयप्रद समझकर उससे दूर हटते जाते हैं। डराकर बच्चों की मानसिक शक्ति को कुण्ठित कर देना बड़ा अनुचित है।

तीसरी बात यह कि बच्चे जैसा देखते हैं, उसकी नक़ल करने लगते है। एक बड़े अँग्रेज़ विद्वान् बेकन का कहना है कि माता की देखा-देखी नक़ल उतारने की जो मनोवृत्ति बच्चों में होती है वही दुनिया की सारी शिक्षाओं की जड़ है। इसलिए बच्चों के सामने कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिए जिनसे आगे जाकर उनका भविष्य बिगड़ने की सम्भावना हो।

बच्चों के सामने किसी की उपेक्षा, अपमान और अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, इससे बड़े होकर वे अविनयी और ढीठ हो जाते हैं।

जब बच्चा एक या दो वर्ष का हो जाय तो सदा उसके सामने अच्छी बातें करनी चाहिए; उसे महात्माओं के नाम याद कराने चाहिएँ। यदि वह कोई अनुचित बात कह देता है तो भी सारे लाड़ के स्त्रियाँ हँस पड़ती हैं। ऐसे समय हँसना हर्गिज़ न चाहिए; न क्रोध करना चाहिए बल्कि किसी प्रकार उसकी ग़लती बतानी चाहिए।

: ७ :

मातृत्व का गौरव !

माता !-अहा, इस शब्द में कितनी मिठास है ! इसमें कितनी पवित्र स्मृतियाँ छिपी हैं ! इसमें कितना गौरव भरा है ! इसलिए हमारे धर्म में स्त्री का रमणी रूप महान् नहीं माना गया, माता-रूप में ही स्त्री पूजनीया मानी गई है। मातृत्व में ही स्त्री का गौरव है और इसी में उसका आदर्श पूरा होता है।

पर माता का सच्चा अर्थ बच्चों की माँ बन जाना नहीं है वरं अपने अन्दर उस अनादि शक्ति का अनुभव करना है—अपनी उस महानता को जानना है, जिसने आरम्भ की जंगली दुनिया को सभ्य बनाया है; जिसने मनुष्य को पशु से मनुष्य बनाकर आज उसे इतना ऊँचा उठा दिया है। माता का सच्चा अर्थ वैसी माताएँ बनना है जिनके लिए नेपोलियन-सा दुनिया को विजय करने का साहस रखने वाला महावीर तरस कर कह गया—"*मुझे सुमाताएँ दे सको तो मैं तुमको एक महान् जाति बना दूँ !*" माता का अर्थ अपने अन्दर उस पवित्र तेज को उत्पन्न करना है जिसे देखकर पुरुष सच्चे पुरुष और स्त्रियाँ सच्ची स्त्रियाँ बनें। आज की माताएँ, जो लाड़-प्यार में बच्चों को बिगाड़ देती हैं; जो उन्हें चोरी करना, झूठ बोलना सिखाती हैं; जो जीवन की सबसे कोमल और प्रभाव-योग्य अवस्था में उनका स्वास्थ्य नष्ट कर देती हैं सच्ची माताएँ नहीं हैं। माता वह है जो कभी अपने हित और सुख का ध्यान न करके बच्चों के हित की कामना में दृढ़ रहे। आज-कल के माता पिता १७-१८ वर्ष के लड़कों को अपने पास से जुदा करना नहीं चाहते, चाहे उनका भविष्य चौपट हो जाय। देखते हैं कि लड़का चौपट हो रहा है पर झूठा मोह और दुलार उन्हें दूर करने नहीं देता। यह मातृत्व नहीं है; यह पिता की मर्यादा नहीं है। वे यह भूलते हैं कि वे सदा न रहेंगे और यदि वे अपनी सन्तान को योग्य न बना गये तो अपना, अपने कुल, अपनी जाति और मनुष्यता की भी हानि करेंगे और उस लाड़-

प्यार में पलकर नष्ट होते हुए बच्चे के लिए भी दुनिया में केवल कष्ट, अपमान, दुःख और कठिनाइयाँ छोड़ जायँगे।

नहीं, माताओ! तुम्हें यह झूठा मोह, यह विनाशक दुलार छोड़ना पड़ेगा। तुम उन राजपूतनियों की ओर देखो, जो अपने तुच्छ प्राण बचाने के लिए युद्ध-भूमि से भागने वाले पुत्रों के कलेजे में कटार भोंक देती थीं। तुम उन माताओं की ओर देखो जो धर्म के लिए अपने पुत्रों की बलि देने में अपने दूध का गौरव समझती थीं। तुम उन जननियों की ओर देखो जिन्होंने दुनिया को सच्चे मनुष्यों का, सच्ची देवियों का दान दिया है। तुम उन मंगलमूर्त्तियों को देखो जिन्होंने जगत् को सच्चा आत्मज्ञान सिखाया है; तुम अनुसूया, मैत्रेयी, अरुन्धती, गार्गी को देखो। तुम उस सीता की ओर देखो जिसके हृदय में सच्ची जननी का आत्माभिमान चमक रहा था। तुम आज सच्चे मातृत्व की मंगलमयी उषा की तरह दुनिया को जीवन का सन्देश दो और सूर्य की भाँति तुम्हारा आशीर्वाद दुनिया को जीवन एवं प्रकाश दे।

माता आत्म-विसर्जन की प्रतिमा है! माता दया की मूर्ति है! माता कल्याण की उषा है! माता जीवन की पवित्र स्मृतियों का जीवित स्मारक है! माता करुणा का भण्डार है। माता अपने शरीर एवं मन का सारा सत्व विकसित करके, मनुष्यता को सदा दान देनेवाली अन्नपूर्णा है। माता त्याग की आभा है! माता जीवन-द्वीप का स्नेह है जो छिपकर, गुप्त रहकर, जलकर, मिटकर सब को प्रकाश देता है।

माताओ! तुम ऐसी माताएँ बनो। तुम महान् हो; कोई तुमसे बड़ा नहीं है, यह अनुभव कर लेने से तुममें मातृत्व के सच्चे गौरव का वह प्रकाश जग जायगा, जो हम मनुष्य नाम-धारी पशुओं को मनुष्यता के, देवत्व के, अमरता के सच्चे मार्ग पर चलायेगा!

माताओ!

मृत्योर्माऽमृतं गमय!

खण्ड ४ : कुछ सच्चे पत्र

"प्रेम को लेकर आत्म-समर्पण करने में जो सुख है, वह कोरी बराबरी के बाहरी अधिकार में नहीं है। मेरा विश्वास है कि प्रेम से सब-कुछ सम्भव है।"

—पत्र संख्या ५

कुछ सच्चे पत्र

[कुछ समय पूर्व एक बहिन से स्त्री-पुरुष-समस्या के विषय में मेरा जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसके आवश्यक अंश यहाँ दिये गये हैं। यह बहिन बिहार प्रान्त के एक प्रतिष्ठित परिवार की कन्या है और बिहार के परदा-बहिष्कार आन्दोलन में पूज्य महात्माजी की अनुमति से काम भी करती रही हैं। आजकल अधिकार एवं बराबरी के झगड़े को लेकर पढ़ी-लिखी स्त्रियों में जिस कच्ची भावना का प्रचार हो रहा है, उनके आरम्भिक पत्र इस बात के उदाहरण हैं। आरम्भिक पत्रों में अधीरता की मात्रा अत्यधिक है पर बाद में उनके विचार बहुत बदल गये हैं। अब इनका विवाह भी एक प्रतिष्ठित कुटुम्ब में हो गया है। ससुराल जाने तथा गृहस्थी की जिमेदारी आ पड़ने पर स्त्री जिस नये संसार में आ जाती है वह भी उनमें आ गई है, और उनका जो पत्र विवाह के बाद आया उसमें-उन्होंने मेरे ६-११-२६ के पत्र का समर्थन करते हुए लिखा है कि अब मैं सचमुच परिस्थिति की गुरुता का अनुभव कर रही हूँ और आप की सूचना एवं शिक्षा का भरसक पालन करने की चेष्टा करूँगी।

ये पत्र यहाँ इसलिए दिये जा रहे हैं कि इनसे इस समस्या पर रोशनी पड़ती है। ये व्यक्तिगत हैं और जब ये लिखे गये, इन्हें प्रकाशित करने की कल्पना भी मन में न आई थी इसलिए इनमें दोनों ओर के सच्चे मनोभाव प्रकट हुए है। आशा है इन पत्रों में प्रकट किये हुए सद्विचारों से बहिनें लाभ उठायेंगी।

—सुमन]

[१]

अजमेर
६-२-२६

प्रिय श्री—

"स्त्रियाँ और पुरुषों की ज्यादतियाँ" नामक एक लेख कुछ दिन पूर्व मिला था। × × × । आप में प्रतिभा है, मानव-जाति की सेवा की भावना है, उत्साह है, इसलिए उपर्युक्त लेख में प्रकट की हुई भावनाओं के सम्बन्ध में आपको कुछ लिखने को बाध्य हुआ हूँ। आपसे मेरा परिचय नहीं है, इसलिए आपको यह विश्वास दिला देना कठिन है कि मेरे हृदय में आपसे अधिक क्षोभ और आग है। कितनी ही बार मैंने अंधेरी रात में बैठकर अपनी अनेक बहिनों की दुर्दशा और रोमाञ्चकारी दयनीय स्थिति पर आँसू बहाये हैं—; अपने उन मित्रों से, जो सुधार के समर्थक होने पर भी बहुत ज्यादा आगे बढ़ने से डरते हैं, लड़ता रहा हूँ। फिर भी आपको ये चन्द बातें लिखने को बाध्य हुआ हूँ।

आपने पुरुषों के अत्याचार की जो कहानियाँ लिखी हैं, वे ठीक हैं। मैंने तो उनसे भी घृणित अत्याचार देखे हैं और कलेजा थामकर रह गया हूँ। जहाँ तक मुझसे बन पड़ा है सदैव मैंने मातृजाति को सहारा देने की चेष्टा की है। परन्तु हमारी माताओं और बहिनों को सामाजिक आन्दोलन करते समय व्यक्तिगत उदाहरणों का ध्यान न रख समाज के सामूहिक हित का ध्यान रखना चाहिए। मैंने तो इसे ऐसा ही सोचा है। मैं स्वयं देश, काल, जाति सबका भेद तोड़कर विवाह करने का पक्षपाती हूँ, फिर भी इसके लिए सामाजिक आन्दोलन करना उचित नहीं समझता। आप यदि व्यक्तिगत उदाहरणों की तह में पैठकर समाज में क्या दोष आ गया है, यह देखें तो आपको मालूम होगा कि ये अभागे पुरुष क्रोध की अपेक्षा दया के ही पात्र अधिक हैं। जिसको अंग्रेजी में 'सेंस ऑव प्रपोरशन' (सन्तुलन और सामञ्जस्य की भावना) कहते हैं, वह नष्ट हो गया है। सारे समाज की रचना ही दूषित हो रही है; इसमें पुरुषों और

स्त्रियों—दोनों का भाग होते हुए भी, इसकी प्रधान ज़िम्मेदारी अलग-अलग नहीं डाली जा सकती। जैसे उदाहरण आपने पुरुषों की ज़बर्दस्ती के दिये हैं वैसे तो स्त्रियों की ज़बर्दस्ती के भी मैंने अपनी आँखों देखे हैं। फिर भी मुझे कभी उन स्त्रियों पर क्रोध नहीं आया। मैं जानता हूँ कि यह *परिस्थिति का, वातावरण का दोष है, न पुरुष का, न स्त्री का।* हमें एक-दूसरे की निन्दा और भर्त्सना की जगह समाज की रचना ही नये सिरे से करने का प्रयत्न करना चाहिए; उसे ही बदलना चाहिए। जब समाज के मूल में घुसे हुए दोष दूर हो जायँगे तो उसमें उत्पन्न होने वाले स्त्री-पुरुष स्वतः ठीक हो जायँगे। हमारा समाज तो उस भूमि के समान हो गया है जिसमें उपज की शक्ति ही नाममात्र को रह गई है और उसमें भी जो अधमरे, अशक्त पौधे उगते हैं उनको भूमि के कीड़े भीतर ही भीतर चाव डालते, खोखला और तत्त्वहीन कर देते हैं। उनका रूप—ढाँचा—मात्र क़ायम है। इन पौधों का अन्न खाकर, इनकी अपौष्टिकता और सारहीनता पर इन्हें गाली देना व्यर्थ है—इससे क्या लाभ होगा? हमें तो खेत को ही नये सिरे से तैयार करना होगा।

हमारी माताएँ और बहिनें आज कैसी मर्मान्तक वेदना का जीवन बिता रही हैं, यह क्या कहने की बात है? मैं तो जब-जब सोचता हूँ अपने को अन्धकार में पाता हूँ। कभी-कभी क्रोध उमड़ पड़ता है! मनमें आता है, सचमुच ऐसे पुरुष नष्ट हो जाते तो अच्छा होता। पर जब शान्त होकर सोचता हूँ तो देखता हूँ कि इसमें उनका भी बहुत दोष नहीं है। वे निरुपाय हैं, अज्ञान हैं; परिस्थिति ने उनकी बुद्धि निकम्मी कर दी है; वे दया के पात्र हैं, क्रोध के नहीं। सन्तोष होता है जब मैं देखता हूँ कि हमारी बहिनें, इस हीनावस्था में भी, त्याग और तपस्या की साधना की भाँति, अन्धकार में चिनगारी की तरह चमक रही हैं। उनकी दया, उनकी करुणा, उनकी तपस्या, उनकी ममता और उनके स्नेह एवं प्रेम से ही समाज के अभागे पुरुषों का उद्धार होगा। उनके स्नेह और आशीर्वाद, उनकी लगन और मंगल-कामना पर मुझे बड़ा भरोसा है। इसलिए जब उन्हें विचलित होते देखता हूँ तो ऐसा जान पड़ता है कि हमारी धरोहर में जो कुछ बचा था वह भी नष्ट होता जा रहा है। पुरुषों ने

अपना पुरुषत्व खो दिया है. अब स्त्रियाँ अपना स्त्रीत्व खो दें तो हम रास्ते के भिखारी भी न रह सकेंगे। मैंने स्वयं कई विधवा बहिनों की मौन तपस्या देखी है; उनके दुःख में रोया हूँ। जब ऐसी बहिनों का मुँह देखता हूँ तो अपने को कितना तुच्छ बोध करता हूँ। कितना ये सहती हैं! यह तो मैं चाहूँगा कि उनका वह दुःख दूर हो जाय पर यह कभी न चाहूँगा कि उनमें दुःख सहने की, नीरव तपस्या और साधना की जो विभूति है, जो शक्ति है वही नष्ट हो जाय। आस्कर वाइल्ड* के इन शब्दों में मुझे विश्वास है—

"जहाँ दुःख है वहाँ पवित्रता है, किसी दिन मनुष्य इसे समझेगा।"

इसलिए मैं तो यही चाहूँगा कि आप जो-कुछ लिखें, प्रतिद्वन्द्विता और बदले के भाव से नहीं वरन् शान्त होकर लिखें। हमारे जीवन में ऐसे वेदना-पूर्ण अवसर आते हैं जब भीतर का दुःख, अन्दर की आग हमें चञ्चल, अशान्त और अस्थिर बना देती है। हमें उस आग को जलाये रखकर भी संयम से, आत्मदमन से, दृढ़ता पर शान्ति से काम लेना चाहिए। मैं युवक हूँ, यौवन के उत्साह का उपासक हूँ; विद्रोह को अपना धर्म मानता हूँ। मैं चाहूँगा कि हमारी बहिनें भी विद्रोह करें, पर वह विद्रोह उस दल के प्रति न हो, जिसके साथ उनको मार्ग काटना है, वरन् समाज की दूषित रचना के प्रति हो, जड़ ठीक हो जाय, मिट्टी उपजाऊ हो जाय तो सुन्दर पौधे अपने आप लहलहाने लगेंगे। आपका.....

२ : उत्तर

१४-२-२६

सादर प्रणाम। कृपापत्र के लिए कोटिशः धन्यवाद। आपने जो-कुछ लिखा है वह यथार्थ है—सत्य है। पर मैं कहती हूँ कि क्या पुरुषों के अत्याचारों के प्रति दया दर्शाना उनके भावों को उत्तेजन देना नहीं है? मान लीजिए यदि उनके अत्याचारों का ख़याल न किया जाय, दया दिखलाई जाय

---

*अँग्रेजी भाषा का एक सुन्दर लेखक।

तो क्या इससे उन्हें दुगना उत्साह प्राप्त न होगा ? वे क्या इस तरह स्त्रियों को और भी कुचल देने की चेष्टा न करेंगे ? पुरुष समर्थ हैं, वे यदि चाहें तो बात की बात में सारे समाज की रचना नये सिरे से कर डालें। इसलिए मैं समझती हूँ कि सारी सामाजिक बुराइयों के लिए पुरुष ही दोषी हैं। लेकिन मेरा यह कहना भी नहीं है कि सब-की-सब स्त्रियाँ साक्षात् देवियाँ ही हैं। स्त्रियों में भी जहाँ आप एक ओर करुणा और वात्सल्य की स्नेह-सरिता बहती पायँगे वहाँ दूसरी ओर कठोरता तथा पैशाचिकता का ताण्डव-नृत्य होता हुआ पायँगे। शिव और शैतान का कैसा विचित्र सम्मिश्रण है !

पुरुष में भी यही बात पाई जाती है। एक तरफ़ जहाँ उदाराशय महानुभाव हैं तहाँ दूसरी तरफ़ पैशाचिक कांड मचानेवाले आदमियों की भी कमी नहीं है। पर ऐसा होने पर भी मैं स्त्रियों को दोषी नहीं मानती। आप कहिएगा, यह मेरा अन्ध विश्वास है। एक स्त्री होने के नाते अन्य स्त्रियों के प्रति मेरा प्रेम होना स्वाभाविक ही है। पर आप भी ज़रा ग़ौर करके सोचेंगे तो हमारी बातों से सहमत होंगे। स्त्रियाँ वास्तव में हतज्ञान हैं। वे पराधीन हैं; कहीं भी उनका अधिकार नहीं है। उनकी सारी मर्ज़ी पुरुषों के ऊपर निर्भर है। वे कुछ करने को उत्साहित होकर भी पुरुषों के नादिरशाही हुक्म के आगे झुक जाती हैं।

आज कायस्थ जाति भारत में जितनी उन्नत है उतनी ही सदियों की बढ़ती हुई कुप्रथाओं की दास है। भले ही मेरी यह बात सारी कायस्थ जाति पर लागू न हो, पर मैंने अब तक जहाँ-जहाँ देखा है, अनुभव किया है सब मेरे विचारों को पुष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए आप जस्टिस सर..... हाईकोर्ट को लीजिए। आप सुधारक हैं; तिलक-दहेज आदि कुप्रथाओं के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द कर चुके हैं; कायस्थ-पाठशाला के माननीय सदस्य हैं। पर उन्होंने अपने लड़के की शादी एक ऐसी जगह की है जहाँ उन्हें दहेज में ३५०००) मिले। दूसरी तरफ़ उनके घर की स्त्रियों की वहाँ शादी करने को ख्वाहिश न थी; उन्होंने इस गहरी रक़म को लेने का विरोध भी किया पर नक्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है ? इसके विपरीत

यदि × × × × स्त्रियों की जगह पुरुषों ने इसका विरोध किया होता तो क्या यह दहेज की भारी रकम जबरदस्ती ली जाती ? इसलिए मैं फिर कहूँगी कि सारे दोषों के ज़िम्मेदार हमारे पुरुष ही हैं।

मैं यह नहीं चाहती कि पुरुष-समाज ही नष्ट हो जाय; पर यह तो ज़रूर चाहूँगी कि उनके दूषित कार्यों के लिए उनकी भर्त्सना की जाय, उन्हें लांछित किया जाय। जब तक वे ज़लील न होंगे, उन्हें चेत न होगा, वे अपनी वास्तविक दशा से परिचित नहीं होंगे। आपके कथन को थोड़ा बदल कर मैं कहती हूँ कि मिट्टी खराब नहीं है पर पौधे लगाने पर उन्हें बाहर के कीड़े चट कर जाते हैं; अच्छे-अच्छे पौधों की जड़ में कुप्रथाओं के कीड़े घुसकर उन्हें भीतर ही भीतर ख़ुलनी कर डालते हैं। इसलिए डालों को—कठोरतापूर्वक ही सही—काटकर कीड़ों को दूर किया जाना चाहिए।

मैं समझती हूँ कि आप बड़े भारी आशावादी होंगे। आपने जो कुछ लिखा है, उसे पढ़कर मैंने यही अटकल लगाई है। इसलिए आपने जो कुछ लिखा है वह आपके ही योग्य है। पर मैंने तो अधीर हृदय पाया है, ज़रा भी देर मेरे लिए असह्य है।............हाँ, इतना मैं ज़रूर मानूँगी कि विवेक को कहीं न जाने देना चाहिए। हो सकता है कि मेरी यह अधैर्यवादिता कई जगहों पर मेरे लिए अनिष्ट-कारक सिद्ध हो; पर मैं विवश हूँ; लाचार हूँ। इच्छाओं का दमन करने पर भी भाव उमड़ पड़ते हैं; जिन्हें रोकने पर भी मैं नहीं रोक सकती। आपकी आज्ञा हमें मान्य है। मैं चेष्टा करूँगी कि जो कुछ लिखूँ, शान्त होकर लिखूँ—पर सम्भव है उस समय भी मैं अपने हृद्गत भावों से लाचार हो जाऊँ। मैंने जो लेख भेजा, उसे लिखते समय मेरा हृदय अस्थिर था पर यथासम्भव मैंने रोकने की चेष्टा की थी, इसलिए आप उस लेख में कहीं-कहीं भारी अस्वाभाविक शिथिलता पायेंगे। आपकी इस बात को यथार्थ समझकर मैं यहाँ दोहराती हूँ—"हमारे जीवन में वेदना-पूर्ण ऐसे अवसर आते हैं जब भीतर का दुःख, अन्तर की आग हमें चञ्चल, अशान्त और अस्थिर बना देती है!" पर मुझे यही मुश्किल मालूम पड़ रहा है कि उस आग को जगाये रखकर भी संयम से, आत्म-दमन से, दृढ़ता पर

शान्ति से कैसे काम लिया जाय ? हाँ, यह बात ज़रूर ठीक है कि "हम विद्रोह करें, पर यह विद्रोह उस दल के प्रति न हो जिसके साथ हमें जीवन का मार्ग काटना है, वरन् समाज की दूषित रचना के प्रति हो।" लेकिन हमें यहाँ भी एक मुश्किल सता रही है कि अगर हम उस रचना के प्रति विद्रोह करेंगी तो आख़िर वह रचना किस पर लागू होगी ? जो दोषी होगा उसी पर तो ?.....

आपकी बहिन

३ : प्रत्युत्तर

१६-२-२६

मैंने जो कुछ आपको लिखा था वह आपके विचारों के प्रति द्वेष या पक्षपात से उद्बुद्ध होकर नहीं लिखा था, केवल मेरा व्यक्तिगत मत था। सामाजिक रूप से आन्दोलन करने के किसी वर्ग के अधिकार को मैं अस्वीकार नहीं करता पर बहुत कष्ट सहकर भी मैंने तो यही सीखा है कि—*प्रेम का अधिकार ही सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट अधिकार है। यही नहीं जब-जब प्रेम और अधिकार की प्रतिद्वन्द्विता का मौका दुनिया में आया है, प्रेम ही विजयी होता रहा है। मेरा मत है कि अधिकार मिल जाने से स्त्रियों की समस्या हल नहीं हो सकती। स्त्री हृदय की प्रतिनिधि है; जगत् में जो कुछ रहस्यपूर्ण, पवित्र, कोमल और अत्यन्त मानवतामय (human) है, उसकी प्रतिनिधि है। अधिकार से उसकी तृषा, उसकी भूख शान्त नहीं हो सकती। वह प्रेम से ही विजय करती है और प्रेम से ही जीती जा सकती है। यहाँ प्रेम शब्द को मैं वर्तमान दूषित अर्थ में प्रयुक्त नहीं कर रहा हूँ; वरं उसके उस सच्चे अर्थ में प्रयुक्त कर रहा हूँ जिससे मनुष्य मनुष्य है।*

आप का यह समझना बिलकुल भ्रमपूर्ण है कि पुरुषों के चाहने से ही वर्तमान सब बुराइयाँ दूर हो जायँगी। पहले का किसी का दोष रहा हो पर इस समय सामाजिक सुधार में स्त्रियाँ पुरुषों से कहीं पीछे हैं और अधिक बाधक हो रही हैं। स्त्रियों का सम्पूर्ण वर्तमान आन्दोलन पुरुषों का ही आरम्भ किया

हुआ है। और आज भी पुरुष ही उसका बहुत कुछ संचालन कर रहे हैं। अभी तक बहुत कम शिक्षित पुरुषों ने इसका विरोध किया है। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर कह सकता हूँ कि किसी घर में सुधार का आरम्भ होने पर स्त्रियों की ओर से ही तूफ़ान खड़ा किया जाता है। स्त्रियाँ स्वभावतः पुराणप्रिय होती हैं। मेरे कई सुधारक मित्रों को घर में सुधारों का प्रवेश कराने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। यहाँ तक कि एक का तो जीवन ही नष्ट हो गया।

ख़ैर, इन सब बातों के बाद भी मेरा हृदय स्त्रियों के प्रति भक्ति और उपासना के भावों से पूर्ण है। पुरुष और स्त्री का तो प्रश्न ही व्यर्थ है; दोष परिस्थिति का, हमारी मानसिक गुलामी और असहाय अवस्था का है। स्त्रियों की पीड़ाएँ, उनके त्याग महान् हैं पर अपना पक्ष उपस्थित करते समय विपक्ष का भी ध्यान रखना चाहिए। पुरुषों के कष्ट भी कम नहीं हैं। आजकल जीवन की सब से गम्भीर समस्या आर्थिक है और आप जानती हैं कि घर के पीछे पुरुषों को कितने अपमान सहने पड़ते हैं; कितने मालिकों की ठोकरें खानी पड़ती हैं। कितनी बार घर की सुख-सुविधा के लिए आत्म-सम्मान बेचकर, ख़ून के घूँट पीकर नौकरियां करनी पड़ती हैं। पुरुष यह पीड़ा क्यों झेले? उसे अपने भरण-पोषण के लिए बहुत थोड़े की आवश्यकता है; वह मौज से निर्द्वन्द्वतापूर्वक घूम सकता है पर इस आत्म-सुख का वह गार्हस्थ्य जीवन में बलिदान करता है। गार्हस्थ्य जीवन अन्योन्याश्रय (Inter-dependence) अर्थात् परस्परावलम्बन का जीवन है। इसमें पुरुष की पीड़ा स्त्री को और स्त्री की पीड़ा पुरुष को समझनी पड़ेगी। दोनों एक दूसरे के-पूरक हैं। जब तक ऐसा न होगा, न स्त्री सुखी हो सकती है, न पुरुष सफल हो सकता है।

आप ज़रा शान्त होकर अपने हृदय को सँभालें। जो आँधी में उड़ नहीं जाता, जो तूफ़ान में भी स्थिर रहता है, वही महान् है। मैं यदि अपने अनुभव इस सम्बन्ध में सुनाऊँ तो मैं भी स्त्रियों के प्रति विरोध-भाव जाग्रत कर सकता हूँ पर अत्यन्त कटु अनुभवों के बाद भी इस पूज्य मातृजाति में

मेरा विश्वास अटल है। मुझे अपने विचारों को आप पर लादने का, आपके विचारों को दबाने का कोई अधिकार नहीं। आज पश्चिम में जो कुछ हो रहा है, उसके प्रति भी मेरी भावना ख़राब नहीं है। मैं तो स्त्रियों को अपने आप अपना आन्दोलन चलाते और अपना सञ्चालन करते देखना चाहता हूँ। दूसरे को जबर्दस्ती अपने मार्ग पर चलाने का अधिकार किसी को नहीं है परन्तु कहीं ऐसा न हो कि ग़लत-फ़हमियां बढ़ती जायँ और अन्त में स्त्रियों को पुरुष-विरोधी संघ और पुरुषों को स्त्री बहिष्कार-मण्डल खोलने की ज़रूरत महसूस हो। यूरोप में ऐसा एकाध जगह हो भी रहा है। हमारे लिए वह दिन एक दुर्भाग्य का दिन होगा जब ऐसी घटना घटित होगी। इसका उपाय यही है कि पुरुष-स्त्री दोनों एक दूसरे के प्रति जो कुछ कहें सुनें, अपनापन का भाव रखते हुए कहें-सुनें। एक दूसरे को समझने और समझाने की, ग़लतफहमियों को दूर करने, परस्पर सहायता, सहयोग और सहानुभूति की नीति धारण करें।

सम्भव है, पुरुष होने के कारण, आप मुझे भी पक्षपात से दूषित समझ लें। इसे मैं अपना दुर्भाग्य ही कहूँगा पर इस लाञ्छन को वर्दाश्त करके भी मैं तो अन्त तक यही कहता रहूँगा कि आप जो लिखें सोच-समझकर, शान्त होकर लिखें। लेखनी बहुत महत्वपूर्ण वस्तु है। यह याद रक्खें कि जो कुछ आप लिखेंगी, उसका असर समाज पर पड़ेगा।

आपने स्वयं अपने मन की अशान्ति की बात स्वीकार की है। आप उस अशान्ति को रोकिए; धारा के साथ बह जाने में आनन्द और आत्मोल्लास नहीं है; धारा के वेग को पराजित कर अपने को ऊँचा उठाने में आनन्द है। सुख हृदय की विशालता का नाम है और वह त्याग एवं तपश्चर्या, संयम एवं बलिदान के बिना प्राप्त नहीं होता। मुझे दुःख होता है, जब मैं देखता हूँ कि स्त्री होकर भी, स्त्री का हृदय पाकर भी आप लोग यह भूल जाती हैं कि सुख का केन्द्र ग्रहण नहीं, दान है; अधिकार नहीं, आत्म-समर्पण है। स्त्री जगत् की माता है और इसलिए वह महान् है। उसमें माता का हृदय होना चाहिए। उसे साधना से स्खलित

होते—गिरते देखकर उसकी अपेक्षा कहीं अधिक दुःख होता है जितना एक पुरुष को गिरते देखकर होता है।

४ : तीसरे पत्र का जवाब

२६-२-२६

मैंने यह कभी नहीं लिखा या समझा कि आपने जो कुछ लिखा है वह मेरे विचारों से उद्बुद्ध होकर। यदि आपने मेरे पत्र के किसी अंश से ऐसा ख्याल किया है तो मैं उस अंश को लिखने के लिए लज्जित हूँ और क्षमाप्रार्थी हूँ पर मुझे जहां तक ख्याल है वहां तक कह सकती हूँ कि मैंने अपने पत्र में किसी ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं किया है जिससे आप ऐसा ख्याल कर सकें।

आपने जो कुछ लिखा है उसे मैं मानती हूँ। यह तो ध्रुव सत्य है कि प्रेम का अधिकार ही सर्वोत्तम—सर्वोत्कृष्ट है। पर यहाँ पर मैं जो कुछ लिखूँ उसके लिए क्षमा-प्रार्थना करते हुए मैं पूछना चाहती हूँ कि आजकल जैसी धांधली मची है उसे देखते हुए क्या यह माना जा सकता है कि इसे हम प्रेम से जीत लेंगे? यदि ऐसा भी माना जा सके तो इसके लिए बहुत बड़े धैर्य की आवश्यकता है और जैसा कि मैं लिख चुकी हूँ कि दुर्भाग्य या सौभाग्य से इतने धैर्य की क्षमता मुझमें नहीं है पर तो भी मुझे भान हो रहा है—मेरा हृदय स्वीकार कर रहा है कि आप जो कुछ कह रहे हैं, उसे मानना मेरा धर्म है—मेरा कर्तव्य है—और चाहे जैसे हो मुझे धैर्य रखना ही पड़ेगा।

हो सकता है कि मेरी यह धारणा (पुरुषों के चाहने से सामाजिक बुराइयों का दूर होना) ग़लत हो पर जहाँ तक मैं समझती हूँ सामाजिक बुराइयों को दूर करने में पुरुषों का बहुत बड़ा हाथ है। अधिकांशतः इसकी ज़िम्मेदारी उन्हीं पर है। यह तो मैं क्या, दूसरी कोई भी निर्विवाद मानेगी कि इस समय जो कुछ भी सामाजिक सुधार हुआ है उसमें पुरुषों का बहुत बड़ा हाथ है और इसीसे तो मैं कहती हूँ कि वर्तमान सामाजिक बुराइयाँ पुरुष बहुत शीघ्र ही कोशिश करके दूर कर सकते हैं।

बेशक, सामाजिक सुधारों में स्त्रियाँ बाधक हो रही हैं क्योंकि वे दुर्बल

विश्वास की हैं, समझने की शक्ति नहीं है, इसलिए वे पुराण-प्रिय भी हैं। पर मैं तो यह कहना चाहती हूँ कि वे पुरुष, जो विद्वान होने का दावा करते हैं, इन रूढ़ियों, कुप्रथाओं को क्यों मानें ? यहाँ मैं प्रसंगवश एक प्रसिद्ध घराने की बात लिखती हूँ जो कि बड़े अमीर, इज्जतवाले हैं—कुप्रथाओं को नहीं माननेवाले हैं। दुर्भाग्य से उनकी पत्नी महाशया ऐसी मिलीं जो रूढ़ियों में प्रबल विश्वास रखनेवाली थीं। पति महाशय को पत्नी के इन गुणों पर एतराज था। उन्होंने इसके लिए उन्हें कई प्रकार समझाया; अन्त में छोड़ देने की धमकी दी (यह एक ऐसा रामबाण उपाय है जिससे हरेक स्त्री काबू में आ सकती है) तब कहीं पत्नी उनकी आज्ञानुसार चलने लगी; और आज वे ही एक सुप्रसिद्ध और भद्र महिला मानी जा रही हैं। तो क्या इससे हम यह नहीं मानें कि पुरुष सब कुछ कर सकते हैं ?

मुझे मालूम होता है कि आप मुझमें पुरुषों के प्रति श्रद्धा के भाव की बहुत कमी समझते हैं। यदि सचमुच ही आप ऐसा समझते हों तो यह मेरा दुर्भाग्य है। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। हाँ, आप ऐसा समझें भी तो आश्चर्य नहीं क्योंकि मैंने अब तक आपके सम्मुख अपने जिन विचारों को रक्खा है उनमें पुरुषों के प्रति विद्वेष ही दिखाया गया है। पर पुरुषों के प्रति श्रद्धा के भावों की मुझसे कमी नहीं है; हाँ, मेरा अशान्त हृदय जब कुछ भी देखता है तो एकबारगी भड़क उठता है। मैंने अब तक पुरुषों की जो ज्यादतियाँ देखी हैं उनसे मेरा हृदय दहल उठा है। कुछ पुरुषों से तो मुझे खूँख्वार शेर से भी ज्यादा डर लगता है। इसलिए मेरी लेखनी से बरबस ही पुरुषों के प्रति विद्रोह की बातें निकल पड़ती हैं। यह मेरा दुर्भाग्य है कि अब तक जितने पुरुषों का परिचय मैं पा सकी हूँ, किसी के हृदय को विशाल, निर्भीक तथा स्त्रियों के प्रति स्नेह के भावों से भरा हुआ नहीं पाया। इसलिए यदि पुरुषों के प्रति मेरे मन में विद्रोह की बातें उठें तो वह स्वाभाविक ही कहा जा सकता है। हाँ, दो-चार पुरुष मेरे देखने में ऐसे आये हैं जिन्हें मैं आदर-भक्ति की दृष्टि से देखती हूँ तथा उनका गुण-गान करने से भी नहीं चूकती।

एक बात आपने अवश्य मार्के की लिखी अर्थात् जितने अपमान, जितनी

ठोकरें पुरुषों को सहनी पड़ती हैं वे सिर्फ 'घर' अर्थात् स्त्रियों के लिए। पर मैं इसे नहीं मान सकती। पुरुषों ने ही तो उन्हें पंगु बना दिया। अच्छा, विद्रोह की बातें छोड़ हम सरसरी निगाह से देखें तो हमें मालूम होगा कि स्त्री का पालन करना पुरुषों का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है क्योंकि गृहस्थी में भीतर दो ही कर्णधार होते हैं—एक पुरुष, दूसरी स्त्री। हमारे पूर्वजों ने बहुत दूर तक का ध्यान रखकर गृहस्थी के भीतरी सञ्चालन का भार स्त्रियों को दिया और बाहरी पुरुषों को। पुरुष का काम हुआ द्रव्यादि लावें और स्त्रियाँ इसका उचित उपयोग करके घर भर के व्यक्तियों को सुख-सुविधा पहुँचावें पर इससे यह अर्थ नहीं निकला कि पुरुष स्त्री के ही लिए आत्म-सम्मान बेचकर द्रव्य पैदा करता है—इसे वह अपना कर्तव्य समझकर करता है; अपना गार्हस्थ्य जीवन सुखी बनाने के लिए करता है। यदि उसकी आवश्यकता बहुत थोड़े से पूर्ण हो सकती है और उससे वह निर्द्वन्द्व काल-यापन कर सकता है तो वह स्त्री को छोड़ दे, उससे कोई सम्पर्क न रक्खे, फिर देखिए स्त्रियाँ अपने लिए कुछ करती हैं कि नहीं। आज भी नीची श्रेणी के लोगों में पुरुषों के रहते हुए भी स्त्रियाँ मेहनत-मजूरी करके पेट पालती हैं तो क्या भविष्य में पुरुषों के छोड़ देने पर नहीं कर सकतीं? क्या उन्हें इसका भरोसा नहीं।

पर ईश्वर न करे इन आँखों से वह दिन देखना पड़े! यहाँ की स्त्रियाँ सब कुछ चाहेंगी पर इतनी भीषण कल्पना नहीं कर सकतीं। आपका समर्थन करते हुए मैं भी दोहराती हूँ *"पुरुष की पीड़ा स्त्री को और स्त्री की पीड़ा पुरुष को समझनी चाहिए। इसी में दोनों का कल्याण है न कि परस्पर विद्रोह में।"*

मैं नहीं समझती कि एक भाई को अपनी बहिन को समझाने या अपने विचारों को उससे मनवाने का अधिकार क्यों नहीं है? जब कि वह समझता हो कि मेरी एक बहिन ग़लत रास्ते पर चली जा रही है।

यूरोप की बात दूसरी है। आज स्त्रियों की स्वाधीनता का वहाँ कैसा दुरुपयोग किया जा रहा है! वह स्वाधीनता किस काम की जिसमें धर्म को कोई स्थान नहीं। *वहाँ की स्त्रियाँ जैसी उच्छृङ्खल हो रही हैं*, उसे

देखते हुए मैं अपने परवशतामय, परतन्त्र जीवन को लक्ष रखकर भी कह सकती हूँ कि वहाँ की स्वाधीनता से यहां की परतन्त्रता लाख दर्ज़े अच्छी है, जहाँ अब भी सीता-सावित्री जैसी कुल-ललनाएँ पाई जा रही हैं; जहाँ अब भी गार्हस्थ्य धर्म सर्वश्रेष्ठ माना जा रहा है और सर्वसाधारण उसका पालन कर रहे हैं। आज यूरोप में ऐसे घराने विरले ही होंगे जहाँ गार्हस्थ्य धर्म के नियमों का यथोचित पालन किया जा रहा हो। वहाँ की स्त्रियों के मन में सब कुछ पाकर भी न जाने कैसी ज्वाला धधक रही है कि वे नीचे से नीचे गिरती जा रही हैं पर इसका भान नहीं होता है। वहाँ पुरुष और स्त्री दोनों का यही हाल है। इसलिए वहाँ पर 'स्त्री-बहिष्कार मण्डल' और 'पुरुष-विरोधी-संघ' की आवश्यकता जान पड़ी है पर हम लोग तो यह नहीं चाहतीं। हम तो चाहती हैं कि हम भी मनुष्य मानी जायँ, हमारा भी कुछ अधिकार माना जाय;.....हम लोगों की पुकार भी सुनी जाय; एकतरफ़ा डिग्री न हो। ऐसा क्यों हो कि पुरुष जन्म भर व्यभिचारी रहकर भी समाज के मुखिया माने जायँ और स्त्रियाँ अनजाने में भी कुछ ऊँच-नीच कार्य करने से समाज के बाहर कर दी जायँ! आख़िर हम भी तो मनुष्य ही हैं। कबतक इतनी अवहेलना बर्दाश्त कर सकेंगी? ज़रा-ज़रा-सी बातों के लिए लाञ्छित होना, कुत्तों के समान दुतकारा जाना हमारा हृदय कबतक बर्दाश्त कर सकता है? आप लोग यह न समझें कि आज की हालत में रहने वाली स्त्रियाँ प्रसन्न हैं। नहीं, हमारा तो यह हाल है कि पर्वत के भीतर ज्वालामुखी धाँय-धाँय जल रहा है और ऊपर पेड़-पत्ते-तृण सभी हरे हैं।.....आपकी बहिन।

५: पिछले पत्र का उत्तर

अजमेर ४-३-२६

मेरे पास कोई नई बात लिखने को नहीं है। मुझे तो अपने इस विचार पर पूरा विश्वास है कि प्रेम जीवन का वसन्त है; उसको लेकर आत्म-समर्पण करने में जो सुख है वह कोरी बाहरी बराबरी के अधिकार में नहीं है। मेरा विश्वास है कि प्रेम से सब कुछ सम्भव है।

धैर्य की जरूरत होती है पर धैर्य कोई बुरी चीज़ नहीं है। तपस्या और त्याग से सब कुछ सम्भव है।.....अपने को दूसरों के सुख के लिए, दुःख की वेदी पर बलिदान कर देने में जो सुख, जो आत्मोल्लास होता है उसकी समता केवल बराबरी के अधिकार का बाह्य सामाजिक आवरण कभी नहीं कर सकता। × × × जीवन में ऐसा अवसर आता है जब मनुष्य का हृदय किसी के चरणों पर सब कुछ चढ़ा देने—आत्म-समर्पण करने—को उत्कण्ठित हो उठता है। यही विवाह का, यही प्रेम का, यही मैत्री का, यही समाज-रचना का आदि प्रेरक कारण है। इस कारण की उपेक्षा सम्भव नहीं है। उपेक्षा करने से पतन और निम्न कोटि के दुःखों का आगमन अनिवार्य है। यदि आप लोग संयम से काम लेंगी तो अपना उद्धार तो करेंगी ही, पुरुषों को भी अपने त्याग और तपस्या के बल पर, ऊँचा उठाने में समर्थ होंगी। मैं यह सब न तो पुरुष की ओर से लिख रहा हूँ, न स्त्री की। मेरे भीतर इसके बारे में जो वेदना है उसे स्पष्ट कर देना था। थोड़ा-सा कवि का हृदय मैंने पाया है अतएव उसमें स्वाभावतः पुरुष (वीरता, साहसिकता) की अपेक्षा स्त्री (कोमलता, स्नेह, पवित्रता, त्याग) के लिए अधिक ऊँचा स्थान है और चूंकि मेरे हृदय में स्त्रियों के लिए पुरुषों से अधिक आदर है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि स्त्रियाँ सदैव 'स्त्रीत्व' की रक्षा में तत्पर दिखाई दें! पुरुषों ने अपना पौरुष छोड़ दिया है। अपने गुणों की रक्षा-द्वारा स्त्रियाँ उन्हें रास्ता दिखायेंगी।

आपकी पुरुषों के द्वारा ही सारे सुधार हो जाने की बात ठीक नहीं। गृहस्थाश्रम में पुरुष की प्रेरक शक्ति स्त्री है, न कि स्त्री की प्रेरक शक्ति पुरुष। आज जो इतना शोर-गुल होने पर भी काम बहुत थोड़ा हो रहा है उसका कारण यही है कि हमारी माताएँ, हमारी बहिनें, हमारी पत्नियाँ और हमारी बेटियाँ, जीवन की दौड़ में हमसे पीछे हैं। उन्हें तो रास्ता दिखाना चाहिए; आदर्श उपस्थित करना चाहिए, और कम से कम पुरुषों के साथ-साथ तो होना ही चाहिए। स्त्रियाँ विद्रोह करें; स्त्रियाँ आगे बढ़कर परिस्थिति को सँभालें, मैं भी यही चाहता हूँ पर ऐसा करते समय वे

अपना वह सत्य, वह 'ग्रेस' (ओज) न खो दें, जिसके बिना वे कुछ नहीं हैं। × × × मुझे दुःख है कि जीवन में कभी आपने किसी पुरुष को स्त्री के लिए सम्मान और भक्ति से पूर्ण नहीं पाया पर इससे आपको यह अनुमान नहीं कर लेना चाहिए कि सभी पुरुष ऐसे होते हैं.. .....

मैं तो एक ओर पुरुषों से कहूँगा कि अपनी कलुषित भावनाएँ छोड़ो और स्त्रियों के लिए मन में आदर उत्पन्न करो और दूसरी ओर स्त्रियों से कहूँगा कि तुम लोग हमें मातृत्व के वात्सल्य, भगिनीत्व के स्नेह एवं पत्नीत्व के सौख्य से सुसंस्कृत करो अन्यथा तुम भी नष्ट हो जाओगी !

६: बीच के दो पत्र गायब हो गये

४-४ २६

.....साधनामय जीवन, तपस्या और त्याग को मैं अपना ध्येय मानती हूँ। लौकिक सुखों की अपेक्षा सदा ही मैंने इन बातों को श्रेष्ठ समझा और इनके अनुकूल बनने की चेष्टा की है। बड़े-से-बड़े स्वार्थ को दूसरे के हितार्थ मैंने बिना किसी हिचकिचाहट के छोड़ दिया है। अब रही विद्रोह की बात, सो भी मैंने स्वार्थमय भावनाओं से प्रेरित होकर विद्रोह को नहीं अपनाया है। मैंने अपनी उन बहिनों की दुर्दशा देखी जो घर की चाहारदीवारी के अन्दर बन्द रहकर दिन-रात आत्मीयों एवं स्वजनों की झिड़कियाँ, लाञ्छनाएँ एवं डाट-डपट सह रही हैं। मनुष्य हो कर भी वे क्यों इतनी यातनाएँ सहें ? यही सोचकर मैंने पुरुषों की ज्यादतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है।

मैं मानती हूँ कि *'अपने सुख को, दूसरे के सुख के लिए, दुःख की वेदी पर बलिदान कर देने में जो आत्मोल्लास होता है, उसकी समता केवल बराबरी के अधिकार का, बाह्य सामाजिक आवरण कभी नहीं कर सकता।'* पर एक बात है। आप सोचें तो सही कि सभी महान् नहीं बन सकते। संसार स्वार्थों के लिए आकाश-पाताल एक कर रहा है। फिर यदि उसे आप त्याग का पाठ पढ़ायेंगे तो वह उस पर अमल नहीं

करेगा। स्वार्थ छोड़ना आसान बात नहीं। इसलिए ऐसे बहुत कम मनुष्य पाये जायँगे जो अपने स्वार्थों की अवहेलना हँसते-हँसते कर सकें। स्त्रियाँ भी किसी दूसरी सृष्टि की जीव नहीं, इसी से मनुष्योचित अधिकार के लिए वे भी लालायित हैं। एक स्त्री होने की हैसियत से मैं उनके जितना निकट पहुँच सकती हूँ उतना पुरुष होकर आप लोग नहीं। बहुत कम सत्य बातें आपके सुनने में आई होंगी और जो कुछ आपने सुना या समझा है वह केवल अपने अनुभव अथवा अन्य लोगों के द्वारा, जो या तो अतिरञ्जित होंगी या संक्षिप्त।

जब कुछ स्त्रियाँ इकट्ठी होकर आपस में अपने दुःख की बातें करने लगती हैं तो उन्हें सुनकर कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति होगा जो उनकी दुर्दशा पर दो बूँद आँसू न गिरा दे? ऐसी अभागिनी बहिनों के बीच पहुँचने का मुझे अवसर आया है जिन्हें पहले तो मैं बड़ा सुखी समझती थी पर जब उनसे घनिष्टता बढ़ी तब मुझे मालूम हुआ कि वे कैसी विपदा में हैं। बाहरी या एक-दो दिनों तक देखने वाला व्यक्ति उनके दुःखों को नहीं जान सकता। वे अपने सारे दुःखों को अपने हृदय में दबाये रखती हैं। उनसे बातचीत करने पर मालूम होता है कि उनके जीवन का कुछ मूल्य नहीं; उनका जीना और न जीना दोनों बराबर हैं। इसीसे मैंने यह अनुभव किया है कि यदि उन्हें बराबरी का अधिकार दिया जाय तो सर्वांश में नहीं तो कुछ अंशों में तो अवश्य ही उनकी तकलीफें दूर हो सकती हैं।

मैं नहीं चाहती कि स्त्रियाँ अपना स्त्रीत्व खो दें। मैं इसके पक्ष में नहीं हूँ। हमारे लिए वह दुर्भाग्य का दिन होगा जिस दिन स्त्रियाँ अपना स्त्रीत्व खो देंगी। पर पूछना चाहती हूँ कि क्या बराबरी का अधिकार मिल जाने से ही उनके स्त्रीत्व में धब्बा लग जायगा अथवा वे अपनी कोमलता एवं स्त्री-सुलभ गुणों को त्याग देंगी?

हाँ, किसी-किसी के जीवन में ऐसा समय आता है जब किसी के चरणों पर सब कुछ चढ़ा देने, आत्म-समर्पण करने को वह उत्कण्ठित हो उठता है। उस समय अधिकार-अनधिकार की बातें नहीं रह जातीं। इसी का नाम 'प्रेम' है पर हम यदि आजकल अधिकांश व्यक्तियों का जीवन देखें तो उनमें 'प्रेम'

नाम की कोई चीज़ नहीं पायेंगे। केवल स्वार्थ-भावना से ही प्रेरित होकर वे परस्पर सम्बन्ध बनाये हुए हैं और इस सम्बन्ध में भी एक को सारे अधिकार प्राप्त हैं और एक को कुछ नहीं। एक, दूसरे पर अत्याचार करता है पर उसका कुछ प्रतीकार नहीं है। इसीलिए मैं 'अधिकार' के लिए लड़ रही हूँ। इसी विषय पर एक महाशयजी से मेरी बात-चीत हुई थी। उन्होंने कहा—"स्त्रियाँ सब कुछ करें, उन्हें रोकता कौन है जी? वे स्वयं दब्बू बनी हैं।" पर जब उनकी स्त्री ने साधारणतः अपने आराम की बातें कहीं तब आप लगे गरजने-तरजने। यहाँ तक कि उसका बुरा हाल है; कठिन बीमारी है पर उसकी कुछ पूछ नहीं; मरे या जिये उन्हें मतलब? आपकी बहिन.....

७ : पिछले पत्र का उत्तर

१५-४-२६

× × आपका यह दावा तो मैं मानता हूँ कि एक स्त्री होने की हैसियत से आप स्त्रियों को अधिक समझ सकती हैं पर इस समझने के कारण ही मैं यह आशा रखने का अधिकारी हूँ कि आप अपनी दुखिया बहिनों, और साथ ही अज्ञान भाइयों, के लिए अपने हृदय में स्नेह, ममता, करुणा और सहानुभूति धारण करेंगी—क्रोध, अभिमान, द्वेष और अधिकार के कटु भाव नहीं। दुनिया की ओर से, उसकी गति से उदासीन होना तो ठीक नहीं परन्तु केवल दुनिया की ओर देखकर, उसकी गति का अन्धानुसरण करके मानव-हृदय की पवित्रता और सरलता कायम न रह सकेगी।

स्त्रियों के एकत्र होकर बातें करते समय तो मैं उनके बीच नहीं रहा हूँ क्योंकि वर्तमान सामाजिक अवस्था में यह सम्भव नहीं है पर अनेक बहिनों के हृदय में जलने वाली वेदना की उस शिखा को मैंने बहुत नज़दीक से देखा है जो *भीतर ही भीतर जलती है और बाहर लज्जा और पवित्रता के आवरण को चीरकर निकल नहीं पाती*। ऐसी बहिनों को जब-जब मैंने देखा है, अपने को उनके आगे बहुत ही तुच्छ अनुभव किया है। उनको सिर झुकाकर मन ही मन प्रणाम करता हूँ और हृदय उनके चरण धोने को उमड़ता भी रहा है। *पर उनका वह पवित्र तेज, वह दूसरों को भी पवित्र कर*

देने वाली वेदना मुझे इतनी अमूल्य, इतनी महान् मालूम होती है कि कभी मैंने अधिकार जैसी तुच्छ चीज़ के लिए उस महान् मातृत्व के प्रकाश को नष्ट करने की क्षमता अपने में न पाई। मन ही मन रोया हूँ; उनकी अवस्था पर कलेजा मसोस कर रह गया है। ऐसी देवियों को कष्ट देने वाले समाज पर घृणा के भाव भी जाग्रत हुए हैं परन्तु उन तपस्विनी बहिनों की तपस्या देखने में भी मुझे सन्तोष रहा है। उन्हें देखकर गर्व से—गौरव से छाती फूल उटती है। यदि उनका दुःख दूर करने में सारा जर्जर समाज नष्ट हो जाय तो भी मुझे उतना दुःख न होगा; उसकी मुझे इतनी चिन्ता नहीं है पर कहीं ऐसा न हो कि इन बहिनों की तपस्या नष्ट हो जाय; कहीं वे विलास और भोग की धारा में बह न जावें। आप लोग तो हम अभागे पुरुषों की ओर न देखिए; आप लोग तो अपने भगिनीत्व, अपने पत्नीत्व और अपने मातृत्व की ओर देखिए। यद्यपि यूरोपीय बहिनों की तेजस्विता, साहस, वीरता और सामाजिक निर्भीकता का मैं अनन्य प्रशंसक हूँ फिर भी कोमलता, मातृत्व: क्षमा, दया. स्नेह और करुणा को उन पर श्रेष्ठता देनी ही पड़ेगी। हमारी माँओं और बहिनों में दोनों का समन्वय होना चाहिए; एक को खोकर दूसरे को ग्रहण करना उचित न होगा। मैं कहूँगा कि स्त्री-पुरुषों की वर्तमान कटुता बहुत कुछ गलतफहमी से ही उत्पन्न हुई है। इसमें पुरुषों और स्त्रियों का उतना दोष नहीं है जितना परिस्थिति और हमारी गुलाम मनोवृत्ति का है।

मैंने यह कभी नहीं लिखा कि बराबरी का अधिकार मिल जाने से स्त्रियाँ 'स्त्रीत्व' खो देंगी। पर मैं यह नहीं समझता कि बराबरी का निश्चित रूप क्या है? कानून में संशोधन होना चाहिए: सामाजिक मामलों एवं उत्तराधिकार के प्रश्न में स्त्री का हाथ होना चाहिए, इसे तो सभी विचारवान मानते हैं। इसके लिए प्रयत्न भी हो रहा है पर अधिकार का रोग कहीं इतना न बढ़ जाय कि घरेलू जीवन की नींव उखड़ जाय। कुटुम्ब समाज की आरम्भिक श्रेणी है। यदि कौटुम्बिक जीवन सुखी, शान्त न रहा तो समाज ही नष्ट हो

जायगा। इसके लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि पुरुष स्त्रियों को गाली न देकर उन्हें समझें और स्त्रियाँ पुरुषों को गाली न देकर उन्हें समझें। *प्रेम और सहानुभूति से ही यह समस्या हल हो सकती है।*

८ : पिछले पत्र का उत्तर

२०-४-२६

.....हाँ मैं तो जरूर ही त्याग और बलिदान के भावों को श्रेष्ठ समझती हूँ पर मैंने तो इसलिए लिखा था कि सभी स्त्रियाँ साधनामय जीवन बिताने को तैयार नहीं; इसलिए अपनी इच्छा के विरुद्ध जीवन होने से वे दुखी हैं और उस दुःख को दूर करने के लिए ही उन्हें 'अधिकार' की आवश्यकता जान पड़ी है। इसलिए उन्हें 'अधिकार' मिलना चाहिए। इससे घरेलू जीवन की नींव नहीं उखड़ेगी और न गृहस्थ की सुख-शान्ति चौपट होगी वरन् दोनों का जीवन अधिकाधिक सुखी होगा। आजकल जैसा दाम्पत्य जीवन पाया जाता है, उनका दाम्पत्य जीवन उससे कहीं ज्यादा सुखी होगा। आजकल से ज्यादा वे एक दूसरे के दुःख को समझेंगे; परस्पर प्रेम में अधिक श्री-वृद्धि होगी।

आप उन अभागिनी बहिनों के दुःख को समझते हुए भी—उनके दुःख में समवेदना रखते हुए भी—डरते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि इन बहिनों की "तपस्या नष्ट हो जाय; कहीं वे विलास और भोग की धारा में न बह जाँय।" पर आप विश्वास रक्खें ऐसा डर एक दम नहीं तो बहुत अंशों में व्यर्थ हो सकता है। उदाहरण के लिए आज विधवा-विवाह इतनी कम मात्रा में क्यों हो रहा है? इसका साफ जवाब है हमारा वातावरण, हमारी महिलाओं की मनोवृत्ति! मुझे बदचलन बहिनों पर आश्चर्य होता है कि कैसे वे इस तरह के वातावरण में रहकर भी बदचलन हो जाती हैं। पर ऐसी बहिनें बहुत कम देखने में आती हैं। कई बालविधवा बहिनें—विधवा-विवाह की कट्टर समर्थक होते हुए भी—अपना ही विवाह करने को राजी नहीं। इसलिए आप डरें नहीं। वे सामान्य अधिकार माँग रही हैं अपना दुःख दूर करने के लिए;

वेजा स्वतन्त्रता के लिए नहीं। मैं स्वयं वेजा स्वतन्त्रता की विरोधिनी हूँ क्योंकि कुछ बहिनें अपनी स्वतन्त्रता का इस तरह दुरुपयोग कर रही हैं कि उनकी चाल-ढाल को देखकर भविष्य अन्धकार से आच्छादित दिखाई पड़ता है और इसमें हमारी शिक्षिता कहलाने वाली कालेजी बहिनों का बहुत बड़ा हाथ है। मुझे इन बहिनों के ऊपर बड़ा क्षोभ होता है। तारीफ तो यह कि अपनी बातों के आगे वे किसी की बातों की कद्र करना जानती नहीं। और ऐसी हालत में मेरी समझ में, उनकी विद्वत्ता का कोई मान ही नहीं रह जाता है। वे कालेज से विलासिता की साक्षात् मूर्ति ही निकलती हैं। उनसे देश, समाज या जाति क्या आशा कर सकती है? वे बहुत अंशों में पश्चिम का अन्ध अनुसरण करती हैं पर वह भी अवगुणों का ही। पाश्चात्य महिलाएँ, जीवन में विलासितापूर्ण होते हुए भी, अपने देश का कितना ध्यान रखती हैं? पर यहाँ हमारी कालेजी बहिनें इस तरफ बहुत कम ध्यान देती हैं और इसी कारण अधिकांश व्यक्ति 'अधिकार' के नाम से भड़कते हैं। हर्ष है कि ऐसी बहिनों की संख्या बहुत ही न्यून है। खैर—मुझे तो विश्वास है कि स्त्रियाँ किसी-न-किसी दिन अधिकार पायेंगी और उनके दुखों का अन्त होगा।

६ : बीच के पत्र नहीं मिल सके

१८-६-२६

.....आप इसे लिखते समय यह क्यों भूल जाते हैं कि जहाँ मनुष्य अपना जीवन न्यौछावर कर देगा वहाँ अधिकार के झगड़े का क्या प्रयोजन? वहाँ तो किसी तरह अधिकार का प्रश्न ही नहीं उठ सकता है। अधिकार का प्रश्न तो वहीं उठेगा जहाँ परस्पर प्रेम का अभाव होगा। आज स्त्रियों में 'अधिकार' का हल्ला उठ रहा है वह केवल प्रेम के अभाव में। उनका स्व कोई ऐसा प्रेमी नहीं जिसके चरणों पर वे अपना जीवन समर्पण कर दें। न स्त्रियों का पुरुषों के प्रति प्रेम है और न पुरुषों का स्त्रियों के प्रति! इसलिए इतना हल्ला-गुल्ला मचा है। गृहस्थ-धर्म का पालन कहाँ हो रहा है? सबसे ज्यादा दुःखपूर्ण तो उनका दाम्पत्य जीवन है।

नाई-ब्राह्मणों के द्वारा ब्याह होने से कितने भारतीय दम्पती सुखी हैं ? लोग कहते हैं कि भारतीय स्त्रियाँ पति के हज़ार कष्ट देने पर भी उनका कुछ अमंगल कतई नहीं चाहती। यह एकदम फ़िज़ूल बात है। मैंने इसे कभी सच नहीं माना कि प्रेम के कारण ही वे उनका अमंगल नहीं चाहतीं। वे क्यों उनका अमंगल नहीं चाहतीं इसका सबसे बड़ा कारण तो उनका संस्कार है और दूसरा उनका स्वार्थ। वे खूब अच्छी तरह जानती हैं कि पति के मंगल और अमंगल से उनकी दीन-दुनिया बनने-बिगड़ने वाली है। इसी लिए हजार कष्ट पाने पर भी कुछ बुरा नहीं सोच सकतीं। उनकी अज्ञानता में ही उनका जीवन-सूत्र किसी के साथ बाँध दिया जाता है तो फिर उनका साथ न करें तो क्या करें ? उनको कोई दूसरा मार्ग भी तो नहीं है। पर यहाँ पर उनकी मंगल कामना की तह में जो लोग प्रेम का स्थान पा जाते हैं वे भूल करते हैं। और यदि उनके कहने के अनुसार मान भी लिया जाय तो वहाँ प्रेम का एकदम दूसरा ही अर्थ लगाना पड़ेगा, उसका काया-पलट हो जायगा।

जब स्त्री-पुरुष में परस्पर प्रेम न हो तो गलतफहमी का बढ़ना अवश्यम्भावी है और ऐसी हालत में यदि समाज ने एक को सबल और एक को निर्बल बना दिया है तो निश्चय ही सबल का निर्बल पर अत्याचार होगा और यह अत्याचार सहते-सहते निर्बल यदि ऊब उठे और सबल के अत्याचारों के प्रति आवाज उठाये तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

आपकी बहिन.....

१० : बीच के पत्र नहीं मिल सके।

६-११-२६

.....हिन्दू कन्या तो जन्म से ही त्याग करना सीखती है। वह देवता के चरणों पर चढ़ी हुई कली के समान है। उसका सारा जीवन आत्म-समर्पण और बलिदान का जीवन है। जैसे पारिजात का वृक्ष स्वतः अपने समस्त फूलों को, एक-एक करके, पृथ्वी माता के चरणों पर चढ़ा देता है!

तुम विवाह के कारण दुखी न होना; दुखी होना तो भी तुम्हारी आँखों से आँसू न निकलें। हृदय की आग को संयम के आवरण-द्वारा हृदय में ही रख सकोगी तो तुम एक ज्योतिर्मय आदर्श बनकर दीन-हीन अशक्त बहिन-भाइयों को अपनी ओर खींच सकोगी। तुम आदर्श से गिर गई तो मेरे, तुम्हें बहिन कहने के, अभिमान को धक्का लगेगा। तुम्हारा विरोध, तुम्हारा दुःख तब तक सार्थक था, जबतक तुम्हारा जीवन तुम्हीं तक था। अब समाज के स्वीकृत बन्धन-द्वारा तुम एक प्राणी के जीवन के साथ मृत्यु तक के लिए बांध दी गई हो। अब तुम केवल अपने लिए हँस या रो नहीं सकतीं। अब तुम कुमारीत्व की सुनहली स्वतन्त्रता से नारीत्व के कठोर शासन में आ गई हो। तुम्हें अधिकार था कि अनिच्छा होने पर अपनी समस्त शक्ति से तुम उसे अस्वीकार कर देतीं पर जब तुमने (किसी भी कारण से हो) वह पथ नहीं पकड़ा तो तुम्हारी ज़िम्मेदारी बढ़ गई है। मुझे आशा है कि तुम हिन्दू नारी को समझतीं हो और उसके उच्च उत्सर्ग की गाथा में, आवश्यकता पड़ने पर वह, अध्याय लिखोगी जो मुझ-जैसे हजारों को तुम्हें बहिन कहकर पुकारने के लिए लालायित और उत्कण्ठित कर देगा।"

—तुम्हारा भाई